UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

STUDY MATERIALS

M.A. HINDI

Paper II

PROSE & DRAMA

Copyright Reserved

CUP/8647/11/500/SDE—1

INDEX

1.	ध्रुवस्वामिनी	7
2.	आषाढ़ का एक दिन	42
3.	आधुनिक निबंधावलि	95
4.	चिन्तामणि	112
5.	आपका बंटी	124
6.	स्मृति का रेखाएँ	138
7.	शेखर एक जीवनी	149
8.	गबन	167

Lessons Prepared by

ध्रुवस्वामिनी

आषाढ़ का एक दिन

Prof. P. Krishnan
Ushas
Kuttikkulam P.O.
Edakkad -670 663
Kannur.

आधुनिक निबंधावलि

चिन्तामणि

Dr. Sasidharan
Professor
Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Cohin

आपका बंटी

स्मृति का रेखाएँ

शेखर एक जीवनी

Sri. Rakesh Kalia
Department of Hindi
Mary Matha Arts & Science College
Vemom, Mananthavady

गबन

Dr. Pramod Kovvaprath
Department of Hindi
W.M.O. College
Muttil, Wynad

उद्देश्य

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक से संबंधित इस पुस्तक को पढने के पश्चात् आप जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी हासिल कर सकेंगे;

हिन्दी नाटक के उदभव और विकास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे; जयशंकर प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे;

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक की मूल समस्या का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;

नाटक कला की कसौटी पर ध्रुवस्वामिनी की समीक्षा कर सकेंगे;

अभिनेयता और रंगमंचीय दृष्टि से इस नाटक का मूल्यांकन कर सकेंगे;

"ध्रुवस्वामिनी" के साधार पर जयशंकर प्रसाद की नारी भावना का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;

चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, मंदाकिनी आदि प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण कर सकेंगे;

प्रमुख उद्धरणों की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

ध्रुवस्वामिनी

जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व और कृतित्व

आधुनिक हिन्दी - साहित्य के उन्नायकों में प्रसाद जी का नाम अग्रगण्य है। उसका जन्म काशी के गोवर्द्धन मोहल्ले में सन् **1889** में हुआ था। उनके पिता देवीप्रसाद जी तम्बाकू और सुर्ती के व्यापारी थे और सुंघनी साई के नाम से यह परिवार काशी में प्रसिद्ध था।

प्रसाद जी ने सातवीं कक्षा तक शिक्षा पायी और उसके उपरान्त पढ़ना छोड़ दिया। आप ने घर पर रहकर ही संस्कृत, फारसी, अरबी, बंगला और अंग्रोज़ी की शिक्षा पायी। जब ये सत्रह वर्ष के थे तभी सारे परिवार का भार इन पर आ गया। उन्होने तीन विवाह किये, किन्तु कोई भी पत्नी अधिक दिन तक जीवित न रह पायी।

प्रसाद जी का व्यक्तित्व बहुत ही सरल और आकर्षक था। उनका एक बडा मित्र परिवार था। प्रसाद जी को अच्छा खाने - पहनने का शौक था, उनके वस्त्र अतीव स्वच्छ और प्रायः श्वेत रंग के होने थे। वे पान खाने के शौकीन थे। उनके मुखमंडल पर मुस्कान थिरकती रहती थी। उन्हें व्यायाम करने और बागबानी का भी बडा शौक था। वे शिव के अनन्य भक्त थे। वे बडे मृदु भाषी, हँसमुख और मिलन सार थे। अपने कटु आलोचकों के प्रति भी उनके मन में ईर्ष्या - द्वेष की भावनाएँ घर नहीं कर पाती थी।

प्रसाद जी के रूप और आकार के संबंध में महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' में यों लिखा था "प्रसाद जी का चित्र उन्हें अच्छा हृष्ट - पुष्ट स्थविर बना देता है, पर स्वयं न वे उतने हृष्ट जान पडे और न उतने पुष्ट ही। न अधिक ऊँचा न नाटा - मंझोला कद, न दुर्बल न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिए काले, चौडाई लिए मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका, आँखों में उज्वल दीप्ति, ओठों पर आनेवाली स्वच्छ हँसी, सफेद खादी का धोती कुरता"। "डॉ. नगेन्द्र ने प्रसाद की समता उस सागर से की है, जो अपने अन्तस्तल की ज्वाला को छिपाये, मुक्त - शांत हँसी हँस रहा हो।"

प्रसाद जी का प्रथम कविता संग्रह 'चित्राधार' है। इसके प्रथम संस्करण में कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध आदि का संकलन था और भाषा व्रज तथा खडीबोली दोनो थी। 'चित्राधार' की स्फुट रचनाएँ प्रकृति विषयक तथा भक्ति और प्रेम संबंधिनी हैं। 'कानन कुसुम' प्रसाद की खडीबोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। 'प्रेम पथिक' में एक भाव मूलक कथा है, जिसके माध्यम से आदर्श प्रेम व्यंजना की गयी है। 'करुणालय' की रचना गीतिनाटय के आधार पर हुई है। इसका प्रथम प्रकाशन 'इन्दु' में हुआ। प्रसाद जी की काव्य कृतियाँ ये हैं - चित्रधार, कानन कुसुम, करुणालय, प्रेम राज्य, वन मिलन, अयोध्य का उद्दार, शोकोच्छवास, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, झरना, आँसू, लहर और कामायनी।

प्रसाद जी के नाटकों की संख्या लगभग बारह हैं। सज्जन, कल्याणी परिणय, प्रयश्चित्त, राज्यश्री 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', एक घूँट, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।

जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व मूलतः कवि का व्यक्तित्व था। काव्य के क्षेत्र में छायावादी रोमांटिक प्रवृत्ति के वे प्रवर्तक रहे हैं। उनकी कहानियों में भी रोमांटिक भावात्मकता दिखाई पडती

है। वस्तु - जगन की विषमताओंतथा समाजगत क्रूर वास्तविकता के परे स्वच्छन्द होकर रहनेवाले विशिष्ट पात्रों की सृष्टि प्रसाद ने की है। प्रसाद की कहानियों में स्त्री-पुरुष प्रेम के विभिन्न पहलुओं का काव्यात्मक चित्रण है जो पाठक के मन पर अमिट छाप छोड देता है। सामाजिक या वर्गगत विषमताओं का अतिक्रमण कर परस्पर मिलन का प्रयत्न, प्रेम में अवरोध, मानसिक द्वन्द्व, आदि का मार्मिक रूप इनकी कहानियों को विशिष्ट बनाता है। प्रेम के त्यागपूर्ण उच्चा आदर्श को भी इन्होंने दिखाया है। इन की कई कहानियाँ साहित्य का अमर अंग बन गयी हैं। इनमें कई ऐतिहासिक, कल्पना प्रधान तथा वास्तविक घटनाओं पर आधारित कहानियाँ भी हैं। 'पुरस्कार', 'समुद्रत्तरण', 'आकाश - दीप', 'आँधी', 'चूडीवाली', 'मधुआ', 'ममता', 'विसाती' आदि कहानियाँ विख्यात हैं। 'आँधी', 'आकाशदीप', 'प्रतिध्वनि','इन्द्रजाल' और 'छाया' नामक पाँच कहानी संग्रहों में आप की कहानियाँ संकलित हैं।

यद्यपि प्रसाद जी का मुख्य क्षेत्र नाटक है, तथापि उपन्यास और कहानियों में भी उनका विशेष स्थान है। 'कंकाल' और 'तितली' लिखकर प्रसाद जी ने उपन्यास क्षेत्र में भी अपना स्थान बना लिया है। 'कंकाल' में प्रसाद जी ने आदर्शवाद की अपेक्षा यथार्थ का अच्छा परिचय दिया है। समाज के सभी प्रकार के पतित लोगों को उन्होंनेसंयोगवश एक ही स्थान में एकत्र कर दिया है। यद्यपि समाज में बुराई और दुःख की मात्रा कम नहीं है और लोगों के बुरे कारनामों का चित्र खींचना अस्वाभाविक भी नहीं है, तथापि मानव पृदय की कमज़ोरियों को ही देखते रहते से मनुष्य जाति के प्रति अश्रद्धा - सी उत्पन्न हो जाती है। फिर भी हम यह नहीं कहते कि प्रसाद जी का मूल उद्देश्य लोगों का ध्यान बुराइयों की और आकर्षित करना था। 'कंकाल' में गोस्वामी जी के उपदेशों में इन्होंने हिन्दू - संगठन और धार्मिक एवं सामाजिक आदर्शों से संबंधित अपने विचारों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकार उसमें भी सामाज की बुराइयों के उद्घाटन के साथ समाज के निर्माण और सुधार की प्रवृत्ति है।

प्रसाद जी के 'कंकाल' की कमी 'तितली' में अपेक्षाकृत पूर्ण हो गयी है। 'तितली' में ग्रामीण दृश्यों का भी अच्छा चित्रण है, और ग्रामीण समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। किन्तु यह सुधर का प्रयत्न एसे लोगों की ओर से है जो ग्राम सुधार केलिए ऊपर से उतरकर कुछ नीचे आते हों, और फिर ऊपर से उतर कर कुछ नीचे आते हों, और फिर ऊपर को चले जाते हों। प्रसाद जी ने 'इरावती' नाम से एक ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखना शुरू किया था जो दुर्भाग्य से इनके निधन के कारण अपूर्ण ही रह गया जिसमें पुष्पमित्र के काल में भारत की सरस - सजीव झांकी प्रस्तुत की गयी है। जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होगा कि उन्होंने अपनी अनुभूति और चिन्तना को विभिन्न माध्यम से प्रस्तुत किया है। नाटकों में उनकी इतिहास और संस्कृति की दृष्टि प्रमुख है। काव्य में वे आन्तारिक अनुभूति का प्रकाशन करते हैं। कहानियों में गीतिमयता है पात्रों की द्वन्द्वात्मक स्थिति के कारण। उपन्यासों की भूमिका अधिक यथार्थवादिनी है। प्रसाद का निधन अपेक्षाकृत जलदी हो गया और उस समय हुआ जब कि वे प्रौढता के बिन्दु पर पहुँच चुके थे। यदि वे कुछ काल तक और जीवित रहते तो अन्य प्रौढ कृतियाँ भी हमारे समक्ष आतीं। अपूर्ण उपन्यास इरावती इसका प्रमाण हे।

हिन्दी नाटक : उद्‌भव विकास

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरम्भ में होता है। सन् 1850 से अब तक के युग को हम नाटक रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैं। (1) भारतेन्दु युग (2) प्रसाद युग (3) प्रसादोत्तर युग; इन में से प्रत्येक युग के प्रमुख नाटककारों का परिचय यहाँ क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतेन्दु युग - सन् 1861 ई. में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु जी का प्रथम नाटक 'विद्या सुन्दर' में किसी बंगला नाटक का छायानुवाद था। इसके बाद कई मौलिक व अनुवादित नाटक प्रकाशित हुए, जिनमें पाखंड विडंबनम्, वैदिक हिंसा - हिंसा न भवति, धनंजय - विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर हरिश्चन्द्र, प्रेम योगिनी, विषस्य - विषमौषधम, कर्पूर मंजरी, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी और सति प्रताप,आदि उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर आधारितहैं। सत्य - हरिश्चन्द्र, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी - ये चारों अनुवादित हैं। अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजित कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होनेवाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्म किया गया है। 'पाखण्ड विडंबन', 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' इसी प्रकार के नाटक हैं। 'भारत दुरदशा' में भारतेन्दु की राष्ट्र भक्ति का स्तर उद्‌घोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज़' को भारत दुर्देव के रूप मैं चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से उस युग के अनेक लेखक नाटक रचना में प्रवृत्त हुए। श्रीनिवास दास ने 'रणधीर और प्रेममोहिनी'; राधाकृष्णादास ने 'दुखिनी बाला' और 'महाराणा प्रताप' बादरीनाथ चौधरी 'प्रेमधन' ने 'भारत - सौभाग्य' सीताराम वर्मा ने विवाह 'विडम्बन', प्रताप नारायण मिश्र ने 'भारत दर्दशा रूपक' और राधाचरण गोस्वामी ने 'तन-मन धन श्रीगोसाई के अर्पण' आदि नाटक लिखे। वस्तुतः भारतेन्दु का नाटक - साहित्य जनता के बहुत समीप था तथा वह 'लोक रंजन' एवं लोक रक्षण दोनों के तत्वों से युक्त रहा है।

प्रसाद युगः-

जयशंकर प्रसाद - साहित्यिक दृष्टि से बाबू जयशंकर प्रसाद का कार्य सब से सराहनीय है। अजात शत्रु, जनमेजय का नागायज्ञ, स्कंन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, विशाख, कामना, एक घूँट, ध्रुवस्वामिनी आदि इनके कई उच्चकोटि के नाटक हैं, जिनमें इन्होंने अपनी गवेषणा - शक्ति और सूक्ष्मदृश्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनके नाटक अधिकतर ऐतिहासिक हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक है। प्रसाद जी भारतीय गौरव - गाथा - गान में विशेष समर्थ हुए हैं। उन्होंने विशेष रूप से बौद्धकालीन भारत के इतिहास को अपनाया है। उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं को अपने समय के साथ जौडा है, अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिम्ब इन रचनाओं में दिखलाया है। प्रसाद जी के नाटकों में तो वौज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा में है, और कहीं - कहीं बडे सुन्दर अन्तर्द्वन्द्व दिखलाये गये हैं। उनके नाटकों में प्रसंगवश आये हुए गीत साहित्य की निधि है। उनके नाटक कलामय होते हुए भी क्लिष्ट हैं। वे साधारण रंगमंच के योग्य नहीं हैं उनके लिए विशेष रंगमंच चाहिए। प्रसाद के नाटकों में प्रसाद गुण की कमी है। उनके साधारण पात्र भी संस्कृत - गर्भित भाषा बोलते हैं और दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हैं।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटकों में पूर्वी और पश्चिमी तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है जहाँ उनके नाटकों में कथावस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, सत्य और न्याय के विषय में भारतीय नाट्य साहित्य की परम्पराओं का पालन हुऐ है, वहाँ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में हुआ है। भारतीय नाटकों की रसात्मकता इनमें भरपूर मिलती है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों की कार्य-व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है।

प्रसाद-युग के अन्य नाटककारों में माखन लाल चतुर्वेदी (कृष्णार्जुन युद्ध), पंडित गोविन्दवल्लम पंत (वरमाला, राजमुकुट आदि) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (महात्मा ईसा), मुंशी प्रेमचन्द (कर्बला, संग्राम) आदि उल्लेखनीय हैं। यह ध्यान रहे कि विषय एवं शैली की दृष्टि से इन नाटककारों में परस्पर थोडा - बहुत अन्तर है, तथा ये सभी नाटकों के अतिरिक्त साहित्य के अन्य अंगों की भी पूर्ति करते रहे; अतः नाटककार के रूप में इनको विशष्टता नहीं मिली।

प्रसादोत्तर नाटक साहित्य :-

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक घटनाओं की परम्परा का पर्याप्त विकास हुआ। इस क्षेत्र में हरिकृष्णा प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द वल्लभपंत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविन्द दास, उदय शंकर भट्ट तथा अन्य कतिपय नाटककारों नें महत्वपूर्ण योग दिया। हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबन्धन, शिव - साधना, प्रतिशोध, स्वप्न भंग, आहुति, उद्धार, शपथ, भग्न प्राचीर, प्रकाश स्तंभ, कीर्ति स्तंभ, संरक्षक, विदा आदि को लिया जा सकता है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में अतिप्राचीन या सुदूर पूर्व के इतिहास को न लेकर प्रायः मुस्लिम कालीन भारतीय इतिहास को लेते हुए उसके सन्दर्भ में आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते का सफल प्रयास किया है। उनके विभिन्न नाटकों में राष्ट्र भक्ति, आत्म त्याग, बलिदान, हिन्दू -मुस्लिम एकता आदि भावों एवं प्रवृत्तियों की पुष्टि होती है।

वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास के विषेषज्ञ हैं। उनकी यह विशेषज्ञता उपन्यास और नाटक - दोनों के माध्यम से व्यक्त हुई है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'झांसी की रानी', 'पूर्व की ओर', 'वीरबल', 'ललित विक्रम' आदि उल्लेखनीय हैं। गोविन्द वल्लभ पन्त ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उनके राजमुकुट और अन्तःपुर का छिद्र आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। पहले नाटक में मेवाड की पन्ना धाय का पुत्र बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तपुर कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रूप में किया गया है।

इस युग के काल्पनिक नाटकों को भी उनकी मूलवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। समस्या-प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यतः इब्सन, बर्नाड शा आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या - प्रधान नाटकों में सन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिन्दूर की होली, आधी रात आदि उल्लेखनीय हैं। मिश्र जी ने इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यथार्थवाद एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, हरिकृष्णप्रेमी आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सेठगोविन्ददास ने ऐतिहासिक पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अपने नाटकों में किया है, जिनमें से कुलीनता, सेवा-पथ, दुख क्यों, सिन्द्धांत-स्वातंत्र्य, त्याग का ग्रहण, सन्तोष कहाँ, पाकिस्तान, महत्व किसे आदि उल्लेखनीय हैं। सेठ जी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण

सफलतापूर्वक किया है। इसके सिवा उपेन्द्रनाथ अश्क, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा आदि ने भी ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक लिखे हैं।

व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित नाटक लिखनेवालों में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस प्रभृति नाटककारों की रचनाएँ आती हैं। मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों के द्वारा ही हिन्दी नाटक में बहुत ऊँचा स्थान बना लिया है। उनके नाटकों - आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे - में व्यक्ति एवं समाज के द्वन्द्व से उत्पन्न कतिपय स्थितियों का चित्रण विभिन्न कथानकों के माध्यम से किया गया है।

नवें दशक की महिला नाटक कारो में डॉ. कुसुम कुमार, मृणाल पांडे, त्रिपुरारी शर्मा शांति मेहरोत्रा, मन्नू भंडारी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें डॉ. कुसुम कुमार के कई नाटक प्रकाशित हुए हैं, जिन्हें रंगमंच पर भी सफलतापूर्वक अभिनीत किया गया है। इनमें दिल्ली ऊँचा सुनती है, संस्कार को नमस्कार, रावण लीला आदि महत्वपूर्ण हैं। मृणाल पांडेय ने 'आदमी जो मछुआरा नहीं था', 'चोर निकल भागा', 'मुक्ति पथ', 'मौजूदा हालत को देखते हुए', त्रिपुरारि शर्मा के 'बहू', 'काठ की गाडी', 'बाँझ घाटी', 'रेशमी रूमाल', 'शांति मेह राजा के एक और रिल लघु' मन्नू भंशरी का 'महाभोज' आदि महत्वपूर्ण हैं।

हिन्दी में 'नयी कविता' 'नयी कहानी' की भांति 'नया नाटक' नहीं आया फिर भी यह कहा जा सकता है कि अपने युग और समाज की नवीनतम स्थितियों, परिस्थितियों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यंजित करते की दृष्टि से हिन्दी का नाटक अन्य सभी विधाओं की अपेक्षा सर्वाधिक नवीन एवं अधुनातन है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त परिचय।

जयशंकर प्रसाद लब्ध प्रतिष्ठ कवि ही नहीं एक श्रेष्ठ नाटककार एवं गल्पकार भी थे। यद्यपि प्रसाद जी का मुख्य क्षेत्र नाटक एवं कविता है, तथापि उपन्यास और कहानियों में भी अपना स्थान बना लिया है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थी। अब हम प्रसाद के नाटकों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

सज्जन - 'सज्जन' एक एकांकी नाटक है। उसका कथ्य महाभारत से उद्धृत है। जुए में पराजित होने पर पाडवों को बारह वर्ष जंगल में रहना पडा। उसके पश्चात् वे एक वर्ष तक अज्ञात वास कर रहे थे। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के साथ द्वैत सरोवर के समीपवर्ती वन में मृगया खेलने आ पहुँचे। चित्रसेन उस प्रदेश के अधीश्वर थे। उन्होंने दुर्योधन को समझ - बुझाया कि इस प्रदेश में मृगया न खेलें। मगर दुर्योधन ने उनकी बात न मानी। दोनों में युद्ध छिड गया। दुर्योधन युद्ध में पराजित हो गया। चित्रसेन उसको बन्दी बनाकर ले गया। इसी कानन में पाँडव अज्ञातवास कर रहे थे। युधिष्ठिर को इस बात की सूचना मिली। उन्होंने दुर्योधन को चित्रसेन की कैद से मुक्त कराने का सुझाव अनुजों को दिया। अर्जुन और गन्धर्वसेन में युद्ध छिड गया। थोडी देर के बाद चित्रसेन को ज्ञात हुआ कि युद्ध करनेवाले अर्जुन है। वह तो उसका परम मित्र है। अतः युद्ध बन्द करा दिया गया। सब लोग युधिष्ठिर के सामने प्रस्तुत हुए। युधिष्ठिर ने कौरव वीरों को चित्रसेन के बन्धन से मुक्ति दिला दी। सब लोगों ने युधिष्ठिर की प्रशंसा की। दुर्योधन ने भी सिर झुकाकर उनकी चारित्रिक महिमा स्वीकार की। प्रसाद ने इस रचना में नान्दी और प्रस्तावना को स्थान दिया है तथा परिसमाप्ति में भरत - वाक्य की भी योजना की है। इस रचना में प्रौढता कम है, मगर है आंशिक शिथिलता भी।

कल्याणी परिय - आज यह कृति स्वतंत्र रूप में अनुपलब्ध है। इस रचना को ही प्रसाद ने बाद में चन्द्रगुप्त के चतुर्थ अंक के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इस रचना में चन्द्रगुप्त चाणक्य की सहायता से नंद वंश का विनाश करता है और सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस को पराजित करके उसकी पुत्री कार्नेलिया से विवाह-सूत्र में आबाद्धहोता है। यह रचना भी एकांकी है। इसमें बदला लेने की चाणाक्य की तीव्र इच्छा की पूर्ति हो जाती है। इस रचना का नामकरण सार्थक है क्यों कि कार्नेलया से चन्द्रगुप्त का विवाह उसके क्लयाण का मार्ग प्रशस्त करता है। इस रचना में भी प्रसाद ने नान्दी और भरत वाक्य की योजना की है।

करुणालय - यह एक गीति नाट्य है। इसे पाँच दृश्यों में विभक्त है। इस की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है। महाराज हरिश्चन्द्र अपने सेनापति ज्योतिष्मान के साथ नौका विहार कर रहे थे। उस समय आकाशवाणी हुई कि महाराज हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र की बलि चढाने की प्रतिज्ञा का पालन अभी तक नहीं किया है। हरिश्चन्द्र अपने प्रण के पालन करने का वादा करके वापस आये। द्वितीय दृश्य में राजकुमार रोहित के इस अन्दर्द्वन्द्व का चित्रण मिलता है कि पिताजी की आज्ञा मानकर मृत्यु का आलिंगन करना कहाँ तक युक्तिसंगत है। वह पिता की आज्ञा को गौरव देना चाहता है, मगर अपने प्राणों के मूल्य को आज्ञा पालन से भी बढकर मानता है। एतदर्थ वह अपनी असहमति व्यक्य करता है। अपने प्राण बचाने के वास्ते वह घर छोडकर भाग जाता है। वन प्रान्तर में उसे आकाशवाणी सुनायी देती है, जिसमें रोहित को इन्द्र से आशीर्वाद मिलता है। आखिर किंकर्तव्य विभूढ हो वह घूमते हुए ऋषि अजीर्गत के दुर्भिक्ष - पीडित आश्रम में जा पहुँचता है। रोहित ऋषि से सौ गायों बदले उनके पुत्र शुनः शोफ को नरमेध केलिए खरीदता है। वह अपने पिता के समीप लौट आता है चतुर्थ दृश्य में पिता पुत्र में इस बातपर बहस होती है कि रोहित का घर छोडकर भागना कहाँ तक समुचित है। आखिर वशिष्ठ इस बात में हस्तक्षेप करते हैं। उनके सुझाव के अनुसार यज्ञ का आयोजन करके उसमें शुनः शेफ को यश यूथ में बाँध दिया जाता है। शक्ति नामक व्यक्ति उसका वध करने को आगे बढता है, मगर करुणाद्र होकर उसकी बलि चढाने में वह अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। इस पर स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय अजीगर्त स्वयं ही पुत्र का वध करने केलिए उद्यत हो जाता है। शुनः शोफ ईश्वर से स्व-रक्षा की विनती करता है, जिसके फलस्वरूप आकाश में गर्जन होता है और विश्वामित्र अपने सौ पुत्रों साहित यज्ञस्थल पर आ उपस्थित होते हैं। वे इस नरमेध के क्रूर कृत्य केलिए वशिष्ठ की भत्सना करने लगते हैं। तभी एक राजकीय दासी जिसने विश्वामित्र की पत्नी के रूप में शुनः शेफ को जन्म दिया था, यज्ञ भूमि में आ पहुचती है और अजीगर्च को बधिक और चांडाल कहकर निन्दा करती है। विश्वामित्र उसे पहचात कर अपना लेते हैं, जिससे उसे दासी - कर्म से मुक्ति मिल जाती है। शुनः शेफ के बन्धन स्वयं ही खुल जाते हैं, और सब की मंगल कामना करते हुए नाटक का अन्त हो जाता है।

करुणालय हिन्दी का प्रथम गीति नाट्य है। डा. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में "करुणालय" से तत्कालीन देश-काल का यह परिचय मिलता है कि धर्म - भावना और प्रतिज्ञा प्रालन में लोग दृढ होते थे। उस समय यज्ञों में नर बलि तक विहित थी। धर्म - शासन में भी कहीं कहीं दरिद्रता का आधिपत्य ऐसा प्रबल हो जाता था कि पुत्रों को बेचकर जीवन निर्वाह की व्यवस्था करनी पडती थी। इन सब बातों से चरित्र-विषयक विशेषताएँ भी यथाक्रम लक्षित दुई हैं। एक प्रकार से इस रचना में नाटकीय अंश की न्यूनता और कहानी तत्व की प्रधानता है। इसे कथोपकथन के द्वारा पद्य में लिखी हुई कहानी ही समझना चाहिए।" [1]

1. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन

राज्यश्री :- इस का कथानक महाराज हर्षवर्धन की बहिन राज्यश्री के वैधव्य की घटना से संबंधित है। इसमें चार अंक हैं। शान्तिदेव और सुरमा के प्रेमालापों से ही प्रथम अंक का प्रारंभ होता है। छद्म वेश में मालव-नरेश देवगुप्त कन्नौज के राजा गृहवर्मा (राज्यश्री के पति) के राज्य पर आधिपत्य जमाने की इच्छा से आता है और सुरमा से उंसे कुछ दिन केलिए अपने उपवन में ठहरा लेने की प्रार्थना करता है। थोडे दिनों के पश्चात् सुरमा उंसके प्रेम पाश में आबद्ध हो जाती है। देवगुप्त षडचंत्र रचकर गृहवर्मा की वीरसेन द्वारा हत्या करा लेता है और राज्यश्री को बन्दिनी बना लेता है। शान्ति भिक्षु, राज्यश्री के भाई राज्यवर्धन की सेना में दूषित मनोभावों से जा मिलता हैं; जिसका अभिप्राय उसके इन प्रयासों को विफल करना हे कि राज्यवर्धन, दैवगुप्त को परास्त करके राज्यश्री को उसकी कैद से मुक्त न करा सके। गौडेश्वर नरेन्द्र गुप्त भी राज्यवर्धन से मिल जाता है और उसके साथ - साथ कन्नौज पर आक्रमण करता है। शान्ति देव (विकर घोष) इस दृष्टि से बडा दुखी है कि न तो वह प्रेयसी के रूप में राज्यश्री को प्राप्त कर पाया और न सुरमा को ही, क्योंकि एक देवगुप्त की बंदिनी है, जब कि दूसरी उसकी प्रणयिनी। वह इस स्थल पर जा पहूँचता है, जहाँ देवगुप्त और सुरमा विलास मग्न है, और जब रण-कोलाहल सुनकर देवगुप्त वहाँ पर सुरमा को छोडकर चला जाता है तो वह सुरमा के प्रति रोष-भाव व्यक्त करता है, जो उससे क्षमा - याचना कर लेती है। वह एक षडयंत्र यह रचता है कि राज्यवर्धन का कल्पित दूत बनकर राज्यश्री से जाकर मिलता है, और उसे अपने सहकर दस्युओं के साथ गुप्त मार्ग से किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर भेज देता है। युद्ध में देवगुप्त की मृत्यु हो जाती है। गौडेश्वर कन्नौज के राज्य को स्वयं ही हडपने को आतुर हो उठता है, जिससे वह राज्यवर्धन की हत्या का षडचंत्र रचता है। शान्तिदेव भी सुरमा के साथ गौडेश्वर से आ मिलता है, और इस षडचंत्र में सम्मिलित हो जाता है, और राज्यवर्धन की हत्य कर देता है।

राज्यश्री शान्ति देव के सहयोगी दस्युओं के चंगुल से, दिवाकर मित्र की सहायता से मुक्त हो जाती है। हर्षवर्धन अपने भाई के हत्यारे गौडेश्वर को दण्डित करते और अपनी बहिन राज्यश्री की खोज केलिए दल साहित निकल पडते हैं। उनकी पुलकेशिन से सन्धि हो जाती है, और यह सूचना मिलती है कि राज्यश्री अभी जीवित है। राज्यश्री जब दिवाकर मित्र द्वारा प्रबोधित करने पर भी प्रज्वलित चिता में प्रवेश करने के निश्चय पर दृढ थी, तभी हर्ष वहाँ जा पहुचते हैं और वे अपने निश्चय से विरत करने हैं। दोनों भाई - बहिन प्रेमपूर्वक लोक सेवा करते हुए बौद्ध धर्म के अनुयायी होकर जीवन यापन करने लगते हैं। अंतिम दृश्य में महाराज हर्ष द्वारा सर्वस्व दान करने तथा राज्यश्री द्वारा राज्यवर्धन के हत्यारे विकरघोष को, उनसे क्षमा दान कराने की घटनाओं का चित्रण है तथा विश्व के चराचर प्राणियों की कल्याण कामना में भरतवाक्य के साथ नाटक की परिसमाप्ति हो जाती है।

विशाख :- विशाख की समीक्षा करते हुए डा. रूपनारायण पांडेय ने अपनी राय यों प्रकट की है "प्रसाद की नाट्य कला की व्यवस्थित भूमिका 'विशाख' की रचना से आरंभ होती है। 'राज्यश्री' को प्रसाद जी हिन्दी का पहला ऐतिहासिक रूपक स्वीकार करते हैं, जिसका कथानक अंकों में विभक्त हुआ है। इस काल तक वे कोई सिद्धांत स्थिर नहीं कर सके थे, जिस पर उनकी नाट्य-कला का विकास हो। इस नाटक में पहले की अपेक्षा चरित्र चित्रण के सिद्धांत अधिक स्पष्ट हुए हैं। हास्य का रूप भी पूर्वापक्षया अधिक विकसित एवं परिष्कृत है। तीन अंकों में विभक्त यह प्रसाद काप्रथम सफल नाटक है।" *

* 'प्रसाद की नाट्यकला'

अजातशत्रुः- 'अजातशत्रु' का कथानक मगध, कौशल और कौशाम्बी राजघरानों से सम्बन्धित है। अतः कथावस्तु पेचीदा हो गयी है। ये तीनों राज्य आपस में विवाह सम्बन्ध - सूत्रों में निबद्ध हैं। इसके प्रमुख पात्र इतिहास प्रसिद्ध हैं। गौतम बुद्ध, बिम्बसार, अजात शत्रु, प्रसेनजित, उदयन, देवदत्त और पद्मावती इस ऐतिहासिक नाटक के प्रमुख पात्र हैं। संघर्ष इस नाटक के प्राण हैं। मगध सम्राट बिम्बसार की दो रानियों में से बडी रानी वासवी मृदु हृदया एवं पति परायणा है जब कि छोटी रानी छलना छलनामयी एवं स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय है। राजकुमार अजातशत्रु अपनी माता छलना की प्रेरणा पाकर राज्य का अधिकार प्राप्त करना चाहता है और महाराज बिम्बसार गौतम बुद्ध की सलाह मानकर राजसत्ता अजातशत्रु के हाथों में सौंप देते हैं। गौतम बुद्ध का प्रतिद्धन्द्धी राजमाता छलता का कृपा पात्र है और एक प्रकार से वही राजकाज चलाने लगता है। रानी वासवी अपने भाई कौशल-नरेश से मिले राज्य का राजस्व स्वयं प्राप्त करना चाहती है। उधर कौशल का राजकुमार विरुद्धक भी राज्याधिकार पाने को उत्सुक है। उसको देश से निकाल दिया जाता है। वह अजातशत्रु के सहयोग की माँग करता है, जिसे देवदत्त की प्रेरणा से स्वीकार कर लिया जाता है और अजातशथ्रु कौशल पर धावा बोलता है। कौशल की राजकन्या वासवी और महाराज बिम्बसार को कडी निगरानी में रखा जाने लगता है, जिससे वे कौशल राज्य की सहायता न कर सकें। विरुद्धक काशी की प्रसिद्धा वेश्या श्यामा के सम्पर्क में आता है और उसके सहयोग से कौशल के सेनापति बन्धुल की छल से हत्या कर लेता है। छलना अपनी सपली को यह समाचार बडे व्यंग्यपूर्वक सुनाती है। विरुद्धक स्वार्थी एवं लम्पट नराधम है। अतः वह अपनी मदद करनेवाली श्यामा का गला घोंटे कर हत्य करने की चेष्टा करता है और उसके आभूषण लेकर चला जाता है। कौशाम्नी नरेश की सेनाएँ कौशल नरेश की सहायतार्थ आती है, जब कि उनके विपक्ष में विरुद्धक और अजात शत्रु लडने केलिए प्रस्तुत होने हैं। मगर उनकी पराजय होती है और अजातशत्रु को बंदी बना लिया जाता है तथा। विलुद्धक भी गंभीर रूप में घायल हो जाता है। बडी रानी वासवी के प्रयत्नों के फलस्वरूप अजातशत्रु को कैद से छुटकारा मिलता है, जिससे छलना का उसके प्रति प्रेम भाव बढ जाता है। विरुद्धक की सेवा - सुश्रूषा मल्लिका करती है, जिसके परामर्श पर वह श्यामा से क्षमा-याचना कर लेता है। अजातशत्रु की आँखों चार हुई थीं कोशल राजकुमारी नाजिरा पर वासवी के प्रयत्नों से उसका वाजिरा से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। मागधी को आम्रपाली के रूप में संघ का आश्रय मिल जाता है। जब अजातशत्रु के पुत्र उत्पन्न होता है तो उसे पितृ-गौरव का ज्ञान हो जाता है और वह तथा छलना महाराज बिम्बसार से क्षमा याचना कर लेते हैं।

रचना - शिल्प एवं वर्ण्य - वस्तु की दृष्टि से यह नाटक प्रसाद जी की नाट्य कला की प्रौढता की सूचना देता है। चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्धन्द्ध की पद्धति पर विशेष बल दिया गया है, जिसका पाश्चात्र नाट्य शास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

चन्द्रगुप्त : - आकार की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में 'चन्द्रगुप्त' सब से बडा है। कुछ जटिल है इसका कथानक। कथावस्तु के प्रारंभ में ही नाटककार सिंहरण और चन्द्रगुप्त के वार्तालाप के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना के विकास पर बल देता है। तक्षशिला के राजकुमारआम्भीक देशद्रोही एवं स्वार्थी है। चन्द्रगुप्त और सिंहरण आम्भीक से बहस करते दिखाया गया है। उसके पश्चात् कुसुमपुर में नन्द के विलास कानन का दृश्य प्रस्तुत किया गया है, जहाँ विलासी नन्द 'तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग' में मग्न है। प्रजा उससे त्रस्त एवं पीडित है। मगध लौटने पर चाणक्य को ज्ञात हुआ कि उसके पिता को निर्वासित कर दिया गया

है,जब कि शकटार को भी सपरिवार कैद कर लिया गया है। चाणक्य की भत्सना से नन्दराजा विक्षुब्ध हो उठता है। वह इस तथ्य से भी स्वयं को बडा अपमानित समझता है कि पर्वतेश्वर ने उसकी पुत्री कल्याणी से विवाह करने से साफ इनकार कर दिया है। तभी यह सूचना मिलती है कि यवन भारत पर धावा बोलने की सोच रहे हैं। चन्द्रगुप्त और चाणक्य इस आक्रमण के प्रतिरोध में पर्वतेश्वर की सहायता करने का मत व्यक्त करते हैं, यह सुनते ही राजा नन्द आपे से बाहर हो जाते हैं और तुरन्त दोनों को निर्वासित कर देते हैं। चाणक्य प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक नंद वंश समूल न उखडेगा तब तक मैं शिखा न बाँधूँगा। स्वार्थी आम्भीक सिकन्दर से मिल जाता है, जब कि उसकी बहिन अलका सिंहरण के सहयोग से उसके आक्रमण के विपक्ष में पर्वतेश्वर की सहायता करने का प्रयास करती है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य सेल्यूकस के सम्पर्क में आते है और चन्द्रगुप्त का सिकन्दर से भी साक्षात्कार होता है, जिससे वह सिकन्दर की ही सेना में उसके युद्ध-कौशल के रहस्य को समझने की कामना से प्रविष्ट हो पाता है। वह यथावसर कार्नेलिया के सतीत्व की फिलिप्स से रक्षा करता है, जिससे वह उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। वह आंभीक के सिकन्दर से मिलने के तथ्य की आलोचना करता है, जिससे सिकन्दर उससे क्रुद्ध हो जाता है, किन्तु वह उसके सैनिकों को घायल करता हुआ सुरक्षित निकल आता है। पर्वतेश्वर और सिकन्दर के बीच के युद्ध में वह पर्वतेश्वर की ओर से लडते हुए, मगध की उस सैनिक टुकडी का नेतृत्व करता है, जिसे लेकर कल्याणी पर्वतेश्वर की सहायता करने आयी थी। जब सिकन्दर मालव दुर्ग पर आक्रमण करता है, तो वहाँ सिंहरण के हाथों बुरी तरह घायल होता है, किन्तु चन्द्रगुप्त अवसर होते हुए भी उसका वध न करके उसे सुरक्षित निकल जाने देता है।

आगे के घरनाक्रम में चाणक्य की कूटनीतिज्ञता का चित्रांकन है। वह राक्षस को सुवासिनी से मिलाने का प्रलोभन देकर उसकी राजकीय मुद्रा प्राप्त कर लेता है और उसके द्वारा मगध में विद्रोह करा देता है। वह नन्द के घोर शत्रु शकटार से मैत्री कर लेता है तथा राक्षस और नन्द के मध्य विद्वेष की ऐसी आग भडका देता है कि नन्द राक्षस और सुवासिनी को विवाह - वेदी से बन्दी बना लेने का आदेश देता है। पर्वतेश्वर भी मगध पर आक्रमण करने आ पहुँचता है। राक्षस और सुवासिनी को अंध कूप में डालने की आज्ञा सुनकर पर्वतेश्वर के प्रति विद्रोहाग्नि और भडका उठती है और शकटार उस का वध कर देता है, और चन्द्रगुप्त को राजा बनाने की घोषणा कर दी जाती है, किन्तु चाणक्य अपने बुद्धि कौशल का परिचय देता हुआ, चन्द्रगुप्त के पलंग पर मालविका को सुला देता है, जिससे वधिक उसी की हत्या कर देते हैं। कल्याणी स्वयं ही आत्महत्य कर लेती है। चाणक्य, सुवासिनी को ग्रीक - शिविर में भेजकर, कार्नेलिया के हृदय में चन्द्रगुप्त-विषयक प्रेम को प्रबुद्ध कराने में सफल रहते हैं, जब कि आंभीक को भी चन्द्रगुप्त के पक्ष में मिला लेते हैं। सेल्यूकरस और चन्द्रगुप्त के मध्य होनेवाले युद्ध में सेल्यूकस परास्त होने के साथ बन्दी बनता है और अपनी पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त से करने को प्रस्तुत हो जाता है। चाणक्य, राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाकर सन्यास ग्रहण कर लेते हैं।

प्रस्तुत नाटक का घटना - संयोजन बडा जरिल है, किन्तु प्रसाद ने अपनी प्रौढ लेखनी के द्वारा उसे विश्रृंखल होने से बचा लिया है। इस नाटक के नायक का प्रश्न भी जटिल है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में से किसको नायक मानना चाहिए। संक्षेप में चन्द्रगुप्त प्रसाद जी के सर्वोत्कृष्ट और प्रौढ नाटकों में से एक तो है ही, कुछ समीक्षक 'चन्द्रगुप्त' नाटक को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

स्कन्दगुप्त :- स्कन्दगुप्त प्रसाद जी के प्रौढ नाटकों में एक है। गुप्त साम्राज्य के उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त राज्याधिकार के उपयोग के प्रति उदासीन है। मगर मगध सम्राट कुमारगुप्त की छोटी रानी अनन्तदेवी इस दिशा में प्रयत्नशील हे कि राज्य का उत्तराधिकारी उसका पुत्र पुरुगुप्त बनें। उपनी इस योजना को क्रियान्वयन करने केलिए वह महाबलाधिकृत भटार्क को अपनी ओर मिला देती है और स्कन्दगुप्त और उसकी माता देवकी के विरुद्ध षडयन्त्र रचने केलिए सचेष्ट है। स्कन्दगुप्त को मालवपति के निधन और मालव पर हूणों के संभावित आक्रमण की सूचना मिलती है, जिससे वे मगध की रक्षा केलिए तैयार हो जाते हैं।भटार्क, अनन्तदेवी और प्रपंचबुद्धि षडयंत्र रचकर राज्य का संचालन - सूत्र स्वयं संभाल लेते हैं और स्कन्दगुप्त की माता देवकी को कडे पहरे में रखकर, कुमारगुप्त के निधन का किसी को पता नहीं लगने देते। भटार्क पुरुगुप्त को सिंहासनासीन करते हुए स्वयं को परम भटार्क राज्याधिराज पुरुगुप्त की जय बोलता ही है, कुमारामात्य, महादण्ड नायक और महाप्रतिहार से पुरुहुप्त को राजा स्वीकार करते हुए, उन्हें अभिवादन करने की आज्ञा देता है, किन्तु वे उसकी आज्ञा का पालन करने के स्थान पर आत्महत्या कर लेते हैं। बन्धुवर्मा की सहायता करने गए हुए, स्कन्दगुप्त के प्रति अवन्ती की श्रेष्ठि कन्या विजया और राजकुमारी, दोलों ही आकृष्ट होती हैं। भटार्क और पुरुगुप्त देवकी की हत्या केलिए शर्वनाग की सहमत कर लेते हैं, किन्तु उसकी पत्नी रामा इस षडयंत्र की गंध पाकर शर्वनाग के दृष्कृत्व का विरोध करती है। तभी स्कन्दगुप्त राजधानी आ पहुँचते है और स्वमाता के वध केषडयन्त्र को विफल कर देते हैं। इस संघर्ष में भटार्क घायल हो जाता है। स्कन्दगुप्त का अवन्ती में राज्याभिषेक किया जाता है। तीसरे अंक में भटार्क स्कन्दगुप्त से प्रतिशोध लेने को आकुल मिलता है, जब कि विजया राजकुमारी देवसेना की हत्या करना चाहती है। विजया देवसेना की बलि देने केलिए प्रपंचबुद्धि के समीप पहुँचाकर खिसक जाती है, किन्तु उसकी मातृगुप्त द्वारा प्राण-रक्षा कर ली जाती है। भटार्क और अनंतदेवी द्वारा प्रोत्साहन दिए जाने पर पुरुगुप्त, स्कन्दगुप्त के विरुद्ध हूणों की सहायता लेने का निश्चय करता है और उन्हें युद्धार्थ आमंत्रित करता है। भटार्क द्वारा कुंभा नदी का बाँध तोड देने तथा अपनी सेना लेकर हूणों से मिल जाने के कारण स्कन्दगुप्त की पराजय होती है, और कुसुमपुर पर हूणों का आधिपत्य हो जाता है। नीच एवं स्वार्थी भटार्क की अपनी माताके उपदेश से आँखें खुलती हैं और वह स्कन्दगुप्त की सहायता का निश्चय कर लेता है। स्कन्दगुप्त हूणों पर पुनः आक्रमण करके उन्हें परास्त कर देते हैं और वे पुरुगुप्त को ही राज्य सौंप देते हैं। देवसेना और स्कन्दगुप्त की विदा के भावपूर्ण दृष्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है। 'स्कन्दगुप्त' को कुछ समीक्षक प्रसाद जी की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति समझते हैं। डा. रामसेवक पाण्डेय के ये शब्द अवलोकनीय हैं - "अन्तर और बाह्य संघर्ष की भित्ति पर निर्मित स्कन्दगुप्त प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। शिल्प की दृष्टि से इसमें प्राच्य और पाश्चात्य दोनों शैलियों का समन्वित रूप के वातावरण और सामाजिक चित्रण के साथ चरित्रों का विकास सन्तुलित रूप में हुआ है।"

ध्रुवस्वामिनी की कथावस्तु

ध्रुवस्वामिनी का प्रारंभ शिविर के कोने से ध्रुवस्वामिनी के प्रवेश के साथ होता है। उसके पीछे - पीछे एक लम्बी और कुरूप स्त्री चुपचाप नंगी तलवार लिये आती है। ध्रुवस्वामिनी उस स्त्री से पूछती है कि क्या मंदाकिनी नहीं आयी। लेकिन वह स्त्री उत्तर नहीं देती है। ध्रुवस्वामिनी खीझकर कहती है कि इस राजकीय अंतःपुर में सब जैसे एक रहस्य छिपायो हुए चलते हैं, बोलते और मौन हो जाते हैं। इस राजकुल में भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा? ज़िधर देखो कुबंडे, बौने, हिजडे, गूँगे और बहरे। खड्गधारिणी फिर कहती है कि देवी प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता, कभी - कभी मौन रह जाना बुरी बात नहीं है। उसके बाद वह चन्द्रगुप्त की दयनीय दशा पर प्रकाश डालते हुए कहती है कि उनको तो स्वयं अपने भीषण भविष्य का पता नहीं। प्रत्येक क्षण उनके प्रणों पर सन्देह करता है। उन्होंने पूछा है कि मेरा क्या अपराध है। ध्रुवस्वामिनी उत्तर देती है कि भला मैं क्या कर सकूँगी? मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकी। मैं ने कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नहीं। ध्रुवस्वामिनी ने चन्द्रगुप्त के बारे में कहा कि कुमार की स्निग्ध, सरल और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से पुर्लाकत हो सकता है। किन्तु उन्हीं का भाई? आश्चर्य?

उदास भाव से दासी के साथ ध्रुवस्वामिनी चली जाती है। दूसरी ओर से खड्गधारिणी का पुनः प्रवेश और कुंज में से अपना उत्तरीय संभालता हुआ रामगुप्त निकलकर एक बार प्रतिहारी की ओर, फिर खड्गधारिणी की ओर देखता है। प्रतिहारी से रामगुप्त ने कहा कि तुम से मैं ने कह न दिया कि अभी मुझे अवकाश नहीं, ठहर कर आना। प्रतिहारी ने सूचना दी कि राजाधिराज! शकों ने किसी पहाडी राह से उतर कर नीचे का गिरि-पथ रोक लिया है। हम लोगों के शिविर का सम्बन्ध राज - पथ से छूट गया है। शकों ने दोनों ही ओर से घेर लिया है। रामगुप्त ने जवाब दिया कि दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख! चुप रह। युद्ध तो मेरे दिल में चल रहा है, देखता नहीं, जात् की अनुपम सुन्दरी मुझ से स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज!

शिखरस्वामी के आने पर रामगुप्त ने सुझाव दिया कि अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में हे कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हों। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से मिला। उस समय शिखर स्वामी भी वहाँ पहुँचा। शिखरस्वामी ने कहा कि देव, मैं इस समय एक आवश्यक कार्य से आया हूँ। रामगुप्त ने जवाब दिया कि ओह, मैं तो भूल ही गया था! वह बर्बर शकराज क्या चाहता है? मैं आक्रमण न करूँ, इतना ही तो? जाने दो, युद्ध कोई अच्छी बात तो नहीं। शिखर स्वामी ने कहा कि बर्बर शकराज महादेवी को माँगता है। साथ ही अपने सामन्तों की स्त्रीयों को माँगता है। शिविर दोनों ओर से घिर गया है। उसकी बातें मानिए, या मर कर भी अपनी कुल - मर्यादा की रक्षा कीजिए। दूसरा कोई उपाय नहीं।

ध्रुवस्वामिनी ने निडरता से रामगुप्त से कहा कि यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। तुम लोगों को आपत्ति से बचाने केलिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी। देखती हूँ कि इस राष्ट्र रक्षा - यज्ञा में रानी की बलि होगी ही।

CUP/8647/11/500/SDE—2

ध्रुवस्वामिनी ने विनम्र विनती करते हुए कहा "मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पंण लगा सके।"

रामगुप्त ने हँसी उडाकर उत्तर दिया कि तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटाट पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में छुआ नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता - तुम्हारा नारीत्व - अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित, तुम यह नहीं जानती हो। ध्रुवस्वामिनी ने कहा कि मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। कृपाणी निकालकर ध्रुवस्वामिनी ने अपना ही जीवन समाप्त करना चाहा। चन्द्रगुप्त ने ठीक समय पर आकर उसे रोका और सांत्वना दी। मन्दाकिनी उस अवसर पर आकर दृढ स्वर में बोली कि राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राजा की रक्षा होनी ही चाहिए। अमात्य, यह कैसी विवशता है! तुम मृत्यु दण्ड केलिए उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने केलिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखे। बचोगे तो राष्ट्र का सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश!

चन्द्रगुप्त ने मंदाकिनी की प्रशंसा करते हुए कहा "आह मंदा! भला तू कहाँ से यह उत्साह भरी बात कहने केलिए आ गयी? ठीक तो है अमात्य! सुनो, यह स्त्री क्या कह रही है?"

चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के मान की रक्षा करने के वास्ते स्वयं ध्रुवस्वामिनी बनकर अन्यसामन्त - कुमारों के साथ शकराज के पास जाने को तैयार हो गया। ध्रुवस्वामिनी ने जाने की अनुमति नहीं दी। आखिर रामगुप्त ने दोनों से शकराज के यहाँ जाने की आज्ञा दी। आखिर चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी जाने को तैयार हो गये। ध्रुवस्वामिनी ने अपनी मधुर लालसा प्रकट करते हुए कहा "हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु गह्वर में प्रवेश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बनकर बुझ जाने की कामना रखती हूँ।"

शकराज की दासी एवं प्रेमिका कोमा ने राजा से युद्ध से मुँह मोडने की विनम्र प्रार्थना की। उसके अलावा ध्रुवस्वामिनी को राणी बनाने के मोह से भी पीछे हटने का आग्रह प्रकट किया। कोमा के गुरुदेव मिहिरदेव ने भी राजा को उपदेश दिया कि इस भीषण संसार में एक प्रेम करनेवाले हृदय को खो देना, सब से बडी हानि है। शकराज ने मिहिरदेव की निन्दा की। इससे वे खिन्न एवं क्षुब्ध हो गये। वहाँ से जाने के पूर्व उन्होंने कोमा से आग्रह किया कि वह भी उसके साथ चले क्योंकि आकाश में नील लोहित रंग का धीमकेतु अविचल भाव से इस दुर्गा की ओर भयानक संकेत कर रहा है। कोमा भी अपने गुरुदेव के साथ चली गयी।

चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी शकराज से एकांत में मिलने आये। मगर दोनों ने अपने को ध्रुवस्वामिनी होने का दावा किया। शकराज ने दोनों को भी पत्नी बनाने का आग्रह प्रकट किया। मगर दोनों को भी उस की राय अच्छी नहीं लगी। आखिर चन्द्रगुप्त और शकराज में द्वन्द्व युद्ध हुआ। युद्ध में शकराज की मृत्यु हो गयी।

कोमा ने शकराज का शव लेने की अनुमति ध्रुवस्वामिनी से माँगी। शव लेकर बाहर आते ही रामगुप्त की आज्ञा से कोमा एवं उसके गुरुदेव मिहिरदेव की हत्या सैनिकों ने की।

रामगुप्त के जुल्म और अन्याय के विरुद्ध सामंतों ने आवाजें बुलंद कीं। रामगुप्त ने सामंतो और चन्द्रगुप्त को लौह श्रृंखला में बाँध लेने की आज्ञा दी। रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी को अपमानित करते हुए कहा "तुम्हारा पर - पुरुष में अनुरक्त हृदय अत्यन्त कलुषित हो गया है। तुम काल -

सर्पिणी सी स्त्री! शिखर इसे भी बन्दी करो।" चन्द्रगुप्त ने लौह शृखला तोड डाली। उन्होंने सामन्त कुमारों को मुक्त कराया। पुरोहित को बुलाया गया। पुरोहित् ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर ह्वेष से टूट नहीं सकते; परन्तु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन हे। और भी यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं; पर गौरव से नष्टआचारण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्कीव है। ऐसी अबस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।" परिषद के सभी सदस्यों ने इस निर्णय का स्वागत किया। रामगुप्त चन्द्रगुप्त के पीछे पहुँचकर उसे कटार निकालकर मारना चाहता है। जब तक चन्द्रगुप्त घूमता है तब तक एक सामान्त - कुमार रामगुप्त पर प्रहार करके चन्द्रगुप्त की रक्षा कर लेता है। रामगुप्त गिर पडता है।

सामन्त कुमार ने पुकार कर कहा कि राजधिराज चन्द्रगुप्त की जय

परिषद् ने भी चिल्लाकर कहा -- "महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय इसके साथ ही नाटक की परिसमाप्ति होती है।"

"ध्रुवस्वामिनी" की मूल समस्या

अथवा

"इतिहास की एक नाजुक घडी का चित्रण करनेवाला नाटक "ध्रुवस्वामिनी" वस्तुतः ऐतिहासिक होते हुए भी एक समस्या नाटक है।" समीक्षा कीजिए।

नाट्य-कला की दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी प्रसाद का एक उत्कृष्ट नाटक है। चरित्र - चित्रण और रस - सिद्धांत का अद्भुत समावेश इस नाटक में हुआ है। पूरे नाटक को एक ही दृश्य के अंदर संयोजित कर प्रसाद ने रंगमंच सम्बन्धी प्रौढ दृष्टि का परिचय दिया है।

आस्था, विश्वास के साथ शक्ति और साहस का अद्भुत प्रभाव, यह नाटक मन पर छोड़े जाता है। अन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के संघर्ष का एक अन्तर-निहित स्पष्ट संकेत नाटक की कथा - भूमिका से मिलता है।

इतिहास की एक नाजुक घडी का चित्रण करनेवाला यह नाटक वस्तुतः ऐतिहासिक होते हुए भी एक समस्या प्रधान नाटक है। पुनर्विवाह की समस्या को इसमें बडे कौशल से उठाया गया है।

भारतीय समाज में स्त्रीयों की दयनीय दशा है। नारी 'फूटे तरु की छूटी लता - सी दीन दलित है।' उन्हें पशु तुल्य समझा जाता है। विवाह के समय उनकी स्वीकृति न लेकर, उन्हें चाहे जिस पुरुष के गले में मढ़ दिया जाता है, जहाँ उनका जीवन और भी नारकीय बन जाता है। प्रसाद जी नारी को 'विश्वास रजत नग पग तल में पीयूष स्त्रोत - सी' बहनेवाली समझते हैं। अतः स्त्रियों की दशा अवश्य सुधरे, उन्हें समाज में अधिक सम्माननीय स्थान प्राप्त हो। विवाह सम्बन्ध के समय उनकी भी इच्छा - अनिच्छा का ध्यान रखा जाय और यदि किसी कारणवश उनका दांपत्यजीवन दुख और अशांति मय हो, उनके पति पतित एवं क्लीव हों, तो उन्हें तलाक की अनुमति प्रदान की जाय। नारी की इस जटिल एवं कठिन समस्या की अभिव्यक्त केलिए ही प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी की रचना की है।

ध्रुवस्वामिनी का दांपत्य जीवन एक करुण कोमल व्यंग्य है। ध्रुवस्वामिनी को उसके पिता द्वारा अपने राजनीतिक स्वार्थ केलिए महाराज स्कन्दगुप्त को सौंप दिया जाता है। ध्रुवस्वामिनी की मधुर लालसा थी कि उसका विवाह भावी गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त से होगा। पहले ही महाराज स्कन्दगुप्त ने ज्येष्ठपुत्र रामगुप्त के स्थान पर चन्द्रगुप्त को युवराज मनोनीत किया था। राजनीतिक सन्धि केलिए पुत्रियों का डोला सौंपने की यह प्रवृत्ति रचस्थ नहीं कही जा सकती। प्रस्तुत नाटक में ध्रुवस्वामिनी का विवाह उसके इच्छित वर चन्द्रगुप्त से नहीं हो पाता। चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी के डोले के साथ साथ आया था और ध्रुवस्वामिनी उसकी सुन्दर आकृति और सरल व्यवहार को देखकर उसे अपना हृदय समर्पित कर चुकी थी। वह खड्गधारिणी से कहती है - "हाँ, मैं ने इन्हें देखा था, वह निरभ्र प्राची का बाल अरुण! ..... कुमार की स्निग्ध, सरल और सुन्दर मूर्ति को देखकर कोई भी प्रेम से पुलकित हो सकता है।" किन्तु राजनीतिक षडयंत्रों की वजह रामगुप्त चन्द्रगुप्त के स्थान पर स्वयं गुप्त - साम्राज्य का अधिकारी बन बैठता है और जैसा कि मन्दाकिनी के शब्दों में स्पष्ट होता है, ध्रुवस्वामिनी से छल और बलपूर्वक विवाह कर लेता है। रामगुप्त पतित एवं क्लीव था। वह मदिरा एवं मदिराक्षियों के बीच मदोन्मत्त होता था। फिर भी ध्रुवस्वामिनी भारतीय नारियों के समान उसके प्रति पूर्णतः समर्पित हो सकती थी, यदि रामगुप्त से उसे सच्चे प्रेम का प्रतिदान मिलता। रामगुप्त को सन्देह था कि ध्रुवस्वामिनी अब भी चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है। अतः उसने ध्रुवस्वामिनी के चारों ओर जासूसों का जाल फैला दिया और स्वयं भी इसी प्रयत्न में मग्न रहने लगा कि कैसे भी हो उनके गुप्त प्रेम के रहस्य की जानकारी प्राप्त कर सके। ध्रुवस्वामिनी अपनी दर्दनाक दशा का चित्रण इस प्रकार करती है "यह तो मैं जानती हूँ कि इस राजकुल के अन्तपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीख अपमान संचित रहा, जो मुझे आते ही मिला, किन्तु क्या तुम-जैसी दासियों से भी वही मिलेगा। उस दिन राज महापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशाप था?" ध्रुवस्वामिनी आखिर विवश होकर मर्ज्जागत लज्जा तजकर रामगुप्त के समक्ष घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करती है - "मेरे पिता ने उपहार स्वरूप कन्या-दान किया था। किन्तु गुप्त सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देगे? देखिए मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारि नहीं कि अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष उसकेलिए प्राणों का बाजी लगा सके?" ध्रुवस्वामिनी की विनम्र प्रार्थना को टालते हुए उससे स्पष्ट शब्दों में रामगुप्त कह देता है - "तुम सुन्दर हो। ओह! कितनी सुन्दर किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में नहीं डुबो सकता। तुम्हारी सुन्दरता सुम्हारा नारीत्व अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित, तुम यह नहीं जानती हो।"

आखिर चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी शकराज के यहाँ स्त्री वेश पहनकर चले जाते हैं। यह समाचार पाकर कि चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी ने शकदुर्ग पर अधिकार कर लिया है, रामगुप्त आ पहुँचता है और ध्रुवस्वामिनी से मिलने की इच्छा व्यक्त करता है, किन्तु ध्रुवस्वामिनी अस्वस्थ होने का बहाना करके उससे मिलने को टाल देती है। उसके मन में चन्द्रगुप्त को प्राप्त करने की इच्छा बलवती होने लगती है।

प्रसाद जी ने पुनर्विवाह की पुष्टि केलिए नारद और पराशर की कृतियाँ तथा कौटिलीय अर्थ शास्त्र से उद्धरण देकर भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल में क्लीव, पतित, राजकिल्विषी, परदेश गये हुए और मारने को उद्यत होनेवाले पति से पत्नी को मोक्ष मिलने का प्रावधान था। इन ग्रन्थों में प्रतिपादित मत के अनुकूल ही उन्होंने ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त से तलाक का अधिकार

मिलते प्रदर्शित किया है। पुनरविवाह की समस्या ही ध्रुवस्वामिनी की प्रधान समस्या है। राजपुरोहित के कंठ में बैठकर प्रसाद जी की वाणी ही हम यहाँ सुनते हैं "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते, परन्तु यह सम्बन्ध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, पर गौरव के नष्ट, आचरण से पतित और कर्म से राज - किल्विषी है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।"

नाट्य कला की कसौटी पर "ध्रुवस्वामिनी" की समीक्षा।

अथवा

"ध्रुवस्वामिनी" में भारतीय और पश्चात्य सिद्धांत।

ध्रुवस्वामिनी नाटक की एक प्रमुख विशेषता है कि उनमें भारतीय एवं पश्चात्य नाट्य - पद्धतियों का अत्यन्त सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है। प्रसाद के नाटकों का मूल आधार भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल अतीत रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति केलिए उन्होंने पूर्वी एवं पश्चिमी नाट्य सिद्धांतों को अपनाया है। 'ध्रुवस्वामिनी' में तत्कालीन समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है, यद्यपि उनका आधार सांस्कृतिक ही रखा गया है। पश्चात्य पद्धति से प्रभावित होने पर भी प्रसाद जी के नाटकों में रस व्यंजना को पर्याप्त महत्व प्राप्त है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में एक ओर अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है, तो दूसरी ओर रस की, जिसे भारतीय आचार्यों ने काव्य की आत्मा कहा है। प्रसाद जी ने मौलिक रूप में भारतीय नाट्य - सिद्धांतों का ही प्रयोग किया है, किन्तु, जहाँ पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों का ग्रहण किया है, वहाँ भी स्वदेशीपन विद्यमान है। कहीं - कहीं तो इन दोनों नाट्य - सिद्धांतों का इतना सुन्दर सम्मिश्रण हे कि दोनों का विस्लेषण करना भी कठिन है।

भारतीय नाट्य-कला का मूल स्त्रोत भरत मुनि का 'नाट्यशात्र' और धनंजय का 'दशरूपक' है। पश्चिमी नाट्य-कला का उद्गम स्थान यूनान है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र की प्राचीनतम पुस्तक 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' हे, जिसके अनुसार काव्य और नाटक का लक्ष्य जीवन में पाये जानेवाले विचित्र पात्रों की सृष्टि करना और उनका सफल चित्रण करना है। दुसरे शब्दों में, पश्चात्य नाट्य कला में 'व्यक्ति वैचित्र्य' को प्रमुख स्थान मिला है, जब कि भारतीय नाट्यकला में 'रस' को। पश्चात्य नाटकों में त्रासदी (Tragedy) का महत्व है, किन्तु भारतीय नाटकों में कामदी (Comedy) का।

अब हम 'ध्रुवस्वामिनी' में भारतीय और पाश्चात्य शैलियों के समन्वय पर विचार करेंगे।

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रमुख तीन उपादान माने गये हैं - वस्तु, नेता और रस। किन्तु वस्तु तथा नेता रस के ही आश्रित माने गये हैं। रस परिपाक में विघ्न पडने पर कोई भी नाटक सफल नहीं माना जाता। जहाँ तक 'ध्रुवस्वामिनी' के रस - परिपाक का प्रश्न है, वह पूर्ण सफल रहा है। भरत मुनि का सूत्र - 'विभावानु'भावसंचारि संयोगात् रस निष्पत्तिः' ध्रुवस्वामिनी की रस - योजना पर पूर्णतः घटित होता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का अंगीरस वीर है, जो श्रृंगाराश्रित है। वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' एवं श्रृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' - दोनों पूर्णतः उद्बुद्ध हुए हैं। अंगीरस वीर के आलम्बन मुख्यतः चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी, शकराज आदि हैं। जहाँ तक उद्दीपन का

संबन्ध है, रामगुप्त का अत्याचार, शकराज का निन्दनीय सन्देश, मन्दाकिनी की वीर वाणी आदि को लिया जा सकता है। विभिन्न पातओं के द्वारा कही गयी वीर रस भरी उक्तियाँ तथा चन्द्रगुप्त की प्रतिज्ञा को अनुभाव के अन्तर्गत माना जा सकता है। संचारी भावों का आभास तो यत्र - तत्र लक्षित होता ही है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का पोषक रस श्रृगार है। श्रृगार रस परिपाक चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी शकराज और कोमा आदि के प्रसंगों में लक्षित होता है, किन्तु फिर भी श्रृंगार वीर रस के समान उमर नहीं पाया। क्योंकि इस नाटक में राजनीतिक घटनाएँ इतनी अधिक है कि श्रृंगार रस का प्रवाह अवरुद्ध - सा हो गया है।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का दूसरा प्रमुख उपादान नेता अथवा नायक है। नायक केलिए अनेक गुणों का विधान किया गया है। उसे धीर, वीर, प्रशस्त, शचि एवं दृढ प्रतिज्ञ होना चाहिए। उसका उच्चकुलोद्भव होना भी परमावश्यक है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का नायक चन्द्रगुप्त इन समस्त गुणों से युक्त है। प्रसाद ने उसके क्षत्रियत्व का भी प्रबल तर्कों द्वारा पोषित किया है। साथ ही उसमें प्रेम - पक्ष की शिथिलता दिखाकर प्रसाद ने आधुनिकता का स्पर्ष करते हुए उसके चरित्र को स्वाभाविकता प्रदान कर दी है।

कथावस्तु को नाटक का तीसरा प्रमुख उपादान कहा गया है। इस दृष्टि से यदि 'ध्रुवस्वामिनी' की कथावस्तु की परीक्षा करें तो विदित होगा कि 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथावस्तु के निर्माण में नाटककार ने पूर्वी और पश्चिमी दोनों नाट्यशैलियों का समाहार किया है। एक ओर उसमें भारतीय नाट्य - पद्धति के अनुकूल अर्थ - प्रकृतियों एवं सन्धियों आदि का प्रयोग किया गया है और दूसरी ओर पश्चात्य नाट्य - पद्धति के अनुसार आरम्भ (Exposition), संघर्ष का विकास (Rising) चरमसीमा (Climax) और निगति (Catastrophe) आदि का आयोजन भी किया गया है।

अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य द्वन्द्व का संतुलित सम्मिश्रण 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के कथानक का वैशिष्ट्य है। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में ही द्वन्द्व की झलक मिल जाती है।

कथानक का विकास अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों एवं सद्वृत्तियों और असद्वृत्तियों के द्वन्द्व के साथ होता है। इसे द्वन्द्व की तीव्रतम अवस्था तब आती है, जब नायक और प्रतिनायक अपने - अपने कार्यों में सचेष्ट होते हैं। अन्तिम दृश्य में असत् - पक्ष पर सत् पक्ष की जय होती है और नाटक का अन्त होता है।

भारतीय नाटक सुखान्त होते हैं, किन्तु पाश्चात्य नाटकों का अन्त प्रायः दुखमय ही होता है। कारण, पश्चात्य आचार्यों का का कथन है कि साहित्य का लक्ष्य रस - प्राप्त नहीं, वरन् भावों का परिष्कार मात्र करना है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' में भारतीय और पश्चात्य - सिद्धांतों का सुन्दर समन्वय किया गया है।

अभिनेयता की दृष्टि से ध्रुवस्वामिनी की समीक्षा

नाटक में अभिनेयता का गुण होना आवश्यक है। आचार्य विश्वनाथ ने अभिनेयता को दृश्यकाव्य का प्रधान लक्षण माना है। चूँकि रंगमंच और नाटक में अटूट संबंध है अतः नाटककार को अभिनय का ध्यान अवश्य रखना पडता है।

प्रसाद जी के नाटकों की अभिनेयता का मूल्याकन साधारण रंगमंच की दृष्टि से न होकर विशेष रंगमंच की दृष्टि से होना चाहिए। अभिनय की दृष्टि से उनके नाटकों पर जो आक्षेप होते हैं, उसके मुख्य छह कारण दृष्टिगत होते हैं -

1. नाटकों की कथावस्तु जटिल एवं लम्बाई अधिक है, जिसे तीन या चार घण्टों के अन्दर नहीं समाप्त किया जा सकता।
2. नाटकों की भाषा अत्यधिक साहित्यक एवं दुरूह है, जिसे समझने केलिए पाठक को काफी बौद्धिक व्यायाम करना पडता है।
3. नाटकों के कथोपकथन लंबे हो गये हैं। बीच - बीच में स्वगत - कथन का गठन किया गया है।
4. गीतों की संख्या अधिक है और वे लम्बे हैं, जो अभिनय में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।
5. नाटकों में कवित्व की प्रचुरता भी खटकती है।
6. रंगमंच की दृष्टि से उनके दृश्यों का विभाजन दोषपूर्ण है।

अब हम प्रसाद जी पर किये गये आक्षेपों और आवश्यक गुणों के आधार पर 'ध्रुवस्वामिनी' की समीक्षा करेंगे।

ध्रुवस्वामिनी प्रसाद जी के अन्य नाटकों की अपेक्षा छोटे आकार का है। पूरे नाटक को एक ही दृश्य के अन्दर संयोजित क्रर नाटककार ने रंगमंच सम्बन्धी प्रौढ़ दृष्टि का परिचय दिया है। चरित्र चित्रण और रस सिद्धांत का अद्भुत समावेश इस नाटक में हुआ है। आस्था, विश्वास के साथ शक्ति और साहस का अद्भुत प्रभाव, यह नाटक मन पर छोड जाता है। अन्तर और बाह्य दोनों के संघर्ष का एक अन्तर निहित स्पष्ट संकेत नाटक की कथा-भूमिका से मिलता है।

इसके प्रमुख पात्र कुछ स्थलों पर देश की वर्तमान और भावि परिस्थितियों पर चिन्तन करने लगते हैं। मिसाल के तौर पर नाटक की शुरुआत ही नायिका ध्रुवस्वामिनी के लंबे स्वगत - कथन से होती है - "सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकर कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुख शिखर। और इस क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना चाहिए न। क्यों, मन्दाकिनी नहीं आयी? बोलती क्यों नहीं? यह तो मैं जानती हूँ कि इस राजकुल के अन्तःपुर में मेरेलिए न जाने कब से निरीह अपमान संचित रहा, जो मुझे आते ही मिला; किन्तु क्या तुम - जैसी दासियों से भी वही मिलेगा? इसी शैलमाला की तरह मौन रहने का अभिनय तुम न करो, बोलो! अरे यह क्या; मेरे भाग्य विधाता! यह कैसा इन्द्रजाल? उस दिन आशीरवाद दिया था, क्या वह अभिशाप था? इस राजकीय अन्तः पुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुए चलते हैं, बोलते हैं और मौन हो जाते हैं। इस राजकुल में एक भी सम्पूर्ण मनुष्यता का निदर्शन न मिलेगा क्या? जिधर देखे कुबडे, बौने, हिजडे, गूँगे और बहरे .....!" ध्रुवस्वामिनी का स्वग्त कथन अवश्य अधिक लंबा हो गया है। फिर भी इस राजमहल की निगूढताओं का अनावरण करने और अपनी दर्दनाक दशा का चित्रण करने में यह स्वगत कथन अवश्य सहायक एवं प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ है। पाठकों की जिज्ञासा को बनाये रखने में भी यह उपादेय सिद्ध हुआ है।

इस नाटक में घटनाओं का जमघट नहीं है। प्रसाद के अन्य नाटकों के समान इस रचना में भारतीय नाट्य शास्त्र की दृष्टि से रस - परिपाक में बाधक होनेवाले दृश्य नहीं है। प्रसाद का व्यक्तित्व कवि और दार्शनिक का है और यह रूप उनके अन्य नाटकों की तरह 'ध्रुवस्वामिनी' में विभिन्न पात्रों की उक्तियों के माध्यम से साकार हो उठा है।

'ध्रुवस्वामिनी' में कार्य - व्यापार का निर्वाह आद्यन्त हुआ है। एक ही उद्देश्य पर समस्त कार्य व्यापार अग्रसर हो रहा है। इसमें एक प्रकार की सजीवता और प्राण प्रतिष्ठा है।

'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद के अन्थ नाटकों की अपेक्षा अधिक गीत नहीं हैं। इन गीतो की गेयता रंगमंच के उपर्युक्त वाद्य - यन्त्रों के अनुकूल स्थिर की गयी है। अतः इन गीतों में अभिनयोचित गुण पूर्ण से विद्यमान है। इन प्रमाणों से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ध्रुवस्वामिनी रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनय करने में सक्षम नाटक है।

"ध्रुवस्वामिनी" के आधार पर जयशंकर प्रसाद की नारी भावना

अथवा

ध्रुवस्वामिनी के नारी पात्रों का वैशिष्ट्य।

जयशंकर प्रसाद जी का भावुक कवि - हृदय नारी, प्रेम और सौन्दर्य जैसे सरस एवं मोहक विषयों में अधिक रमा है।

वस्तुतः उनकी रचनाओं की मूल चेतना सौन्दर्य और प्रेम ही है। प्रसाद जी का संवेदनशील हृदय नारी पात्रों के प्रति विशेष सहानुभूतिपूर्ण रहा है। वे अपने युग में नारी - स्वातन्त्र्य के सब से बडे समर्थक थे। नारी और प्रेम को सर्वाधिक प्राधान्य देने के कारण वे नारी जीवन की सब से बडी समस्या - प्रेम करने की स्वतन्त्रता - का समाधान अपनी रचनाओं में करते हैं।

प्रसाद जी युग - युग की बर्बर कारा से जननी सखी प्यारी को मुक्त करने के पक्ष में है। प्रसाद जी के नाटकों के अधिकांश नारी पात्र जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष -स्त्रोत - सी बहनेवाले हैं। देवसेना, मालविका, अलका, कल्याणी, ध्रुवस्वामिनी, कोमा, मन्दाकिनी आदि नारी पात्रों के उदात्त उज्वल व्यक्तित्व अपने ढंग के अनोखे हैं।

ध्रुवस्वामिनी नाटक में पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों का महत्व अधिक है। सभी स्त्री पात्रों का नाटक की कथावस्तु को विकसित करने में अपना - अपना योगदान है। उनका चरित्र अत्यन्त सजीव एवं मुखरित है। मनोवैज्ञानिक आधार प्रायः सर्वत्र अपनाया गया है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रमुख नारी पात्र तीन हैं - ध्रुवस्वामिनी, मन्दाकिनी और कोमा। डा. नगेन्द्र ने प्रसाद जी के नारीपात्रों को प्रमुखतः चार श्रेणियों में विभक्त किया है -

1. राजनीति की आग से खेलनेवाली राजमहिषियाँ।
2. जीवन - युद्ध में प्रेमी का सम्बल लेकर कूदनेवाली स्वाभिमानिती राजपुत्रियाँ।
3. जीवन के भँवर में पडी हुई मध्यवर्गीय दुर्बल नारियाँ।
4. अपने निस्पृह बलिदान में नाटक के जीवन में एक करुण गन्ध छोड जानेवाली फूल - सी सुकुमारियाँ।

यद्यापि डा. नगेन्द्र ने प्रसाद के नारी पात्रों का उपर्युक्त वर्गीकरण उनके सभी नाटकों के आधार पर किया है तथापि 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी के उपर्युक्त रूप स्पष्टतः मिल जाते हैं।

राजनीति की आग से खेलनेवाली और जीवन - युद्ध में प्रेमी का सम्बल लेकर कूदनेवाली स्वाभिमानिनी नारी है "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी। दरअसल ध्रुवस्वामिनी नायक चन्द्रगुप्त से भी अधिक तेजोमय व्यक्तित्व रखनेवाली है। ध्रुवस्वामिनी ही इस नाटक का मेरुदंड है। ध्रुवस्वामिनी के डोले के साथ चन्द्रगुप्त की बलिष्ठ काया और सौन्दर्य पर ध्रुवस्वामिनी मुग्ध थी। मगर उसका विवाह रामगुप्त से हो जाता है। रामगुप्त का पाप पंक से लिप्त व्यक्तित्व देखकर ध्रुवस्वामिनी के हृदय में रामगुप्त के इस निर्णय को, सुनकर कि तुम उपहार की वस्तु हो, और मैं भी तुम्हें किसी को उपहार में ही देना चाहता हूँ, उसमें पत्नीत्व, सतीत्व, नारीत्व, आत्मगौरव आदि के अनेक भाव जाग्रत होते हैं। अपनी मान रक्षा केलिए विनम्र प्रार्थना करने पर भी रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करना नहीं चाहता। स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी की उपेक्षा और अवहेलना करते हुए कहा "तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबो नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता - तुम्हारा नारीत्व - अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम यह नहीं जानती हो। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?" रामगुप्त के हृदय में चुभनेवाली कटूक्ति बिना प्रयास के ध्रुवस्वामिनी के मुँह से निसृत होती है - "निर्लज्ज! मद्यप !! क्लीव !!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"

अपने मान की रक्षा केलिए जान पर खेलने को भी स्वाभिमानिनी ध्रुवस्वामिनी तैयार होती है। चन्द्रगुप्त के साथ शकराज मिलकर मृत्यु के गह्वर में प्रवेश करने के समय अपने प्रेमी चन्द्रगुप्त की ज्योति बनकर वह बुझ जाने की कामना रखती है। ध्रुवस्वामिनी में वाक् पटुता एवं असीम साहस है। पुरानी रूढियों को तोड़ने की उसकी सुधुर लालसा है। ध्रुवस्वामिनी का उदात्त उज्वल व्यक्तित्व अधिक मोहक एवं प्रभावोत्पादक है।

मंदाकिनी :- 'ध्रुवस्वामिनी' का एक गौण पात्र है। फिर भी कभी - कभी बिजली की भांति उसका उदय होता है और अपने व्यक्तित्व की झलक दिखाकर पाठकों के मन में अमिट छाप छोडकर अन्तर्धन हो जाती है। देश की स्वतंत्रता को बनाए रखने केलिए अपने प्राण हथेली पर लिए घूमने केलिए वह हिचकिचाती नहीं है। महाराज से भी तर्क - वितर्क करने में उसको कोई झिझक नहीं है। उसके मुँह से निसृत बातों में सच्चाई है, स्फूर्ति है और जागरण का सन्देश कूट कूट कर भरा है। राजा और मंत्री के चेहरे में देखकर मन्दाकिनी ने यों कहा "राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राजा की रक्षा होनी ही चाहिए। अमात्य, यह कैसी विवशता है! तुम मृत्यु दण्ड केलिए उत्सुक! महादेवी आत्महत्य करने केलिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो! बचेगे तो राष्ट्र का सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वानाश!" गिरनेवाले पुरुषों को उठानेवाली मन्दाकिनी के उज्वल व्यक्तित्व ने नाटक की गुरु गरिमा को अवश्य बढा दिया है।

ध्रुवस्वामिनी के प्रति चन्द्रगुप्त के प्रेम को बढाने और अपना कर्तव्य निभाने केलिए उन्हें उचित प्रात्साहन देने की दिशा में मन्दाकिनी का प्रयत्न सराहनीय है। मन्दाकिनी ने चन्द्रगुप्त से

कहा "हृदय में नैतिक साहस - वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिए तो कुमार, कि अब आप को क्या करना चाहिए?" अन्याय और अत्याचार देखकर मन्दाकिनी से रहा न जाता। सम्राट रामगुप्त से वह खुल्लम खुल्ला कहती है "महाराज, पुरुषार्थ का इतना बडा प्रहसन! अबला पर ऐसा अत्याचार !! यह गुप्त - सम्राट केलिए शोभा नहीं देता।"

मन्दाकिनी पर अत्याचार होते देखकर उसका नारी हृदय रो उठाता है। साथ ही साथ उस अन्याय के विरुद्ध वह इसप्रकार वाग्धारा बहाती हैं "राजा का भय, मन्दा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपनी कुल - मर्यादा, नारी को शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान ने स्त्रीयों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की दस्यु वृत्ति ने उन्हें लूटा है। इस परिषद से मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड कर जिन लोगों ने राजकिल्विष किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिए।" मंत्री शिखरस्वामी की बात काटकर मन्दाकिनी ने उसका मुँह तोड जवाब दिया साथ ही साथ उसकी घृणित करतूतों पर अपनी वाणी की नोकों से प्रहार किया - "मैं तुम लोगों की नीचता की गाथा सुना रही हूँ। अनार्य! सुन नहीं सकते? तुम्हारी प्रवंचनाओं ने जिस नरक की सृष्टि की है उस का अन्त समीप है। यह साम्रज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को? जिसमें छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरुष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने केलिए आज्ञा दी है। वही रामगुप्त. जिसने कापुरुषों की तरह इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध - किये भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त साम्राज्य का सम्राट है। और यह ध्रुवस्वामिनी! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कहकर संबोधित किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं धर्मशास्त्र हो तो उसका मुँह बन्द कर दीजिए।" मन्दाकिनी के इन तर्क वितर्कों से परिषद के सदस्य ही नहीं राजपुरोहित भी काफी प्रभावित हुए। इस वजह से ही राजपुरोहित को कहना पडा "यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं; पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।"

संक्षेप में "ध्रुवस्वामिनी" में मन्दाकिनी एक दोशभक्त, अन्याय दमन में तत्पर, नारी स्वातन्त्र्य केलिए वाग्धारा बहानेवाली कर्तव्य परायणा एवं ममतामयी है।

कोमा - कोमा ध्रुवस्वामिनी का और एक स्त्री पात्र है। उसका निस्पृह बलिदान इस नाटक में करुण गंध छोड देता है।उस सुकुमारी ने चढती जवानी में प्यार किया शकराज से बदले में उसने दर्द ही पाया था। उसका निस्पृह बलिदान नाटक में करुण गांभीर्य छोड देता है। कोमा के मुँह से निसृत बातों में सूक्ति की झलक है। जैसे - "संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान के सम्मुख थोडा - सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे। अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?"

कोमा में वाक् पटुता है। जब शकराज ने कहा 'तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खडी हो, मेरे पास आओ' तब कोमा के जवाब में उसकी वाग्विदग्धता एवं भावुकता की झलक है जैसे पाषणी! हाँ राजा! "पाषणी के भीतर भी कितने मधुर स्त्रोत बहते रहते हैं। उसमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति -"

कोमा शकराज की उपेक्षा से खिन्न होती है। ध्रुवस्वामिनी पर अत्याचार और अन्याय की संभावना देखते वह चौंक उठती है। उसने शकराज से प्रार्थना करते हुए कहा "मेरे राजा! आज तुम

एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति केलिए कैसा अनर्थ कर रहे हो? क्या तुम्हारा राजनीतिक प्रतिशोध एक नारी को कुचलें बिना नहीं लिया जा सकता?" यद्यपि कोमा पितृतुल्य आचार्य के निर्देशानुसार दुर्ग छोडकर चली जाती है तथापि शकराज की मृत्यु का समाचार सुनकर वह ध्रुवस्वामिनी से मिलकर शकराज का शव माँगती है। शकराज का शव लेकर चलते समय ही उसको और उसके गुरुदेव को शहीद होना पड़ता है।

संक्षेप में ध्रुवस्वामिनी के सभी स्त्री पात्र अत्याधिक उज्वल, कर्मठ एवं अन्याय दमन में तत्पर, मृदु हृदया हैं। नाटक में संघर्ष का सूचन करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन स्त्री पात्रों के चित्रण से प्रसाद जी ने अपनी नारी भावना की सुचारु अभिव्यक्ति की है।

चन्द्रगुप्त का चरित्र चित्रण

चन्द्रगुप्त 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का नायक है। वह धीर वीर निर्भीक है। वह पिता समुद्रगुप्त की आँखों का तारा था। अतः समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कियाथा। सन्धि की शर्तों से उपहार - स्वरूप मिली ध्रुवस्वामिनी को विवाह भी चन्द्रगुप्त के साथ होना निश्चित था, जैसा कि हमें चन्द्रगुप्त के इस कथन से ज्ञात होता है - "विधान की स्याही का एक बिन्दु गिर कर भाग्य लिपि पर कालिमा चढा देता है। मैं आज यह स्वीकार करने में भी संकुचित हो रहा हूँ कि ध्रुवदेवी मेरी है। हाँ, वह मेरी है, उसे मैं ने आरंभ से ही अपनी सम्पूर्ण भावना से प्यार किया है और मेरी वाग्दत्ता पत्नी मेरे ही अनुत्साह से आज मेरी नहीं रही।"

चन्द्रगुप्त प्रेमी एवं त्यागी है। वह नहीं चाहता कि गुप्त साम्राज्य गृह कलह से जर्जरित हो। अतःअपने इन अधिकारों केलिए संघर्ष नहीं करता, उल्टे उन्हें स्वेच्छा से त्याग देता है।

अपनी परिणीता पत्नि को शकराज को सन्धि की शर्त के तौर पर देने को रामगुप्त हिचकिचाता नहीं है। मगर कुलवधु के मान की रक्षा केलिए अपने प्राण न्योछवर करने केलिए भी चन्द्रगुप्त तैयार होता है। चन्द्रगुप्त सच्चरित्र है। उसका मोहक व्यक्तित्व है।

चन्द्रगुप्त धीर साहसी है। गुप्त कुल की मर्यादा की रक्षा केलिए अपने प्राणों को हथेली पर लिए घूमने में उसको कोई संकोच नहीं है। शकराज की हत्य करके चन्द्रगुप्त ने अपने अनुपम साहस का परिचय दिया है। अन्यायी और अत्याचारी रामगुप्त को वह राजा मानने को तैयार नहीं होता है। चुपचाप दुर्ग से चले जाने का आह्वान वह देता भी है। इतना ही नहीं कि रामगुप्त के सैनिकों को डॉटकर सभी सामन्त कुमारों को बन्धन मुक्त करा देता है।

चन्द्रगुप्त कर्मवीर ही नहीं युद्ध वीर भी है। शकराज को ललकारता हुआ वह कह उठता है - "मैं हूँ चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल, मैं अकेला आया हूँ, तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने, सावधान!"

जब रामगुप्त के सैनिक ने ध्रुवस्वामिनी को बन्धन में डालना चाहा तब चन्द्रगुप्त आपे से बाहर हो गया। उसने लौह - श्रृंगला को तोड - फोड डाला।

चन्द्रगुप्त में अनेक उदात्त चारित्रिक गुण हैं। वह शांति चाहता है और देश और जनता की उन्नति को सर्वोपरि मानता है। वह राज पाट एवं अपनी प्रेयसी और वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी को भी इसलिए त्याग देता है कि राज्य में कलह नहीं हो। उसका दिल बडा उदार है। उसमें आत्मगौरव की भावना है। गुप्त कुल की मर्यादा को बनाये रखने में अपने प्राण हथेली पर लिए घूमने में भी वह तैयार होता है। संक्षेप में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक के नायक चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व मोहक एवं प्रभावोत्पादक है।

ध्रुवस्वामिनी का चरित्र चित्रण

जयशंकर प्रसाद को नारी पात्रों के सृजन में अधिक सफलता मिली थी। "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की नायिका निस्सन्देह ध्रुवस्वामिनी ही है। वह प्रेम विह्वलता एवं कोमल हृदया है। वह भाग्यहीन नारी है। वह गुप्त कुल में किसी की विवाहिता होकर नहीं आती, अपितु उसके पिता उसकाडोला सौंप देते और यह अनिर्णित रहता है कि उसका विवाह किसके साथ होगा? यद्यपि महाराज स्कन्दगुप्त ने चन्द्रगुप्त को ही अपनी युवराज मनोनीत किया था, पर जब पासे पलट जाने पर चन्द्रगुप्त के स्थान पर रामगुप्त गुप्त - साम्राज्य का राजा बन जाता है। इस वजह से अपनी अभिलाषा के विपरीत उसका विवाह रामगुप्त के साथ ही कर दिया जाता है। रामगुप्त विलासी, मद्यप एवं क्लीव है। अतः वह 'तंत्रीनाद कवित्व रस सरस राग रति रंग' में आमग्न है। नारी के तन की चमक - दमक पर उसकी आँखें डटी थीं उसके दिल की कसक - मसक पर नहीं। पत्नी होने पर भी ध्रुवस्वामिनी को पति रामगुप्त के दर्शन नहीं मिलती थी। अपनी दयनीय दशा का चित्रण वह खड्गधारिणी से इस प्रकार करती है "मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकी। मैं ने तो कभी उनका मधुर संभाषण सुना ही नहीं। विलासिनियों के साथ मदिरा में उन्मत्त, उन्हें अपने आनन्द से अवकाश कहाँ!"

राजा रामगुप्त के अन्याय और अत्याचार देखकर ध्रुवस्वामिनी क्षुब्ध होकर कहती है "आह! राज - चक्र सब को पीसता है, पिसने दो, हम निस्सहायों को और दुर्बलों को पिसने दो।" उसका राजमहल महल नहीं अपितु कारावास - सा लगता है। ध्रुवस्वामिनी के शब्दों में "चलूँगी क्यों नहीं? किन्तु मेरा नीड़ कहाँ? यह तो स्वर्ण पिंजर है।"

जब निष्ठूर, अकर्मण्य और विलासी राजा रामगुप्त ने युद्ध रोकने की शर्त के अनुसार ध्रुवदेवी को शत्रु शकराज को दान करने का निर्णय लिया तब ध्रुवस्वामिनी का मृदु हृदय रो उठा। उसने अपने मान की रक्षा की प्रार्थना की "मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष उसकेलिए प्राणों का पण लगा सके।"

पन्थर को पिघलानेवाली उसकी प्रार्थना सुनकर कापुरुष और अकर्मण्य राजा ने कहा "तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबो नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता - तुम्हारा नारीत्व - अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम यह नहीं जानती हो।"

अकर्मण्य, धूर्त एवं क्लीव रामगुप्त की बातें सुनकर ध्रुवस्वामिनी से रहा न गया। पुरुषों के अन्याय, अत्याचार और आक्रमण पर आक्रोश प्रकट करते हुए वह बोली "पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु - सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।" ध्रुवस्वामिनी धीर - वीर निर्भीक है। रामगुप्त के मुँह में देखकर जली - कडी बातें कहने में भी उसको कोई झिझक नहीं है। "तुम्हारी हत्या? तुम जिओ। भेड की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! उसे न लूँगी। मैं अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।। निर्लज्ज, मद्यप!! क्लीव!!।"

ध्रुवस्वामिनी के हृदय के अमर्ष, विरोध, लाचारी, नाराज़गी आदि को व्यंजित करने में उसकी बातें सार्थक सिद्ध हुई हैं।

ध्रुवस्वामिनी बातें करने में चतुर है। जब चन्द्रगुप्त उसको बचाने आता है तब वह यथार्थ स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहती है "कुमार! यह परिहास नहीं, राजा की आज्ञा है। शकराज को मेरी अत्यन्त आवश्यकता है। यह अवरोध बिना मेरा उपहार दिए नहीं हट सकता।"

ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त एक साथ, शकराज से मिलने चलेगये। अपने प्रेमी चन्द्रगुप्त केलिए मर - मिटने की उसकी मधुर लालसा है। ध्रुवस्वामिनी के ही शब्दों में "मृत्यु के गह्वर में प्रवेश करने के समय मैं भी तुम्हारी ज्योति बनकर बुझ जाने की कामना रखती हूँ।"

शकराज की हत्या होने के पश्चात् ध्रुवदेवी के मन में अधिक संघर्ष होने लगा। पाप - पुण्य की चिंता उसको सताने लगी। आखिर राजा रामगुप्त की हत्या के पश्चात् दोनों विवाह के पावन रिश्ते में आबद्ध हो गये।

ध्रुवस्वामिनी नाटक के आदि से अंत तक विराजमान है। सारे पात्र और घटनाएँ उसके इर्द गिर्द घूमते रहते हैं। ध्रुवस्वामिनी ही आलोच्य नाटक की रीढ कही जा सकती है।

रामगुप्त का चरित्र-चित्रण

ध्रुवस्वामिनी का खल नायक है रामगुप्त। उसका व्यक्तित्व पंक से युक्त व्यक्तित्व है। वह महाराज स्कन्दगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र है। वह तो स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय है। वह डरपोक एवं कायर है। महाराज स्कन्दगुप्त उसकी चारित्रिक बुराइयों से भली भांति परिचित था। अतः उन्होंने अपने द्वितीय पुत्र चन्द्रगुप्त को ही युवराजा के रूप में मनोनीत किया था। मगर षडयंत्र रचने में रामगुप्त दक्षहस्त था। उसने प्रधान अमात्य शिखरस्वामी की सहायता से सत्ता हथियायी थी।

रामगुप्त में लाज - शरम बिलकुल नहीं है। जब शिखर स्वामी ने कहा कि शकराज महादेवी को माँगता है साथ ही अपने सामन्तों केलिए भी मगध के सामन्तों की स्त्रियों को माँगता है तब बिना लाज शरम के वह कहता है कि ठीक ही है, जब उसके यहाँ सामन्त हैं, तब उन लोगों केलिए भी स्त्रियाँ चाहिए।

रामगुप्त डरपोक एवं अकर्मण्य है। वह मान से अधिक जान को महत्व देता है। जब ध्रुवस्वामिनी ने पूछा कि मैं जानना चाहती हूँ कि किसने सुख - दुख में मेरा साथ न छोडने की प्रतिज्ञा अग्नि वेदी के सामने की है? तब निर्ल्लज्ज होकर रामगुप्त नें पूछा कि किसने की है, कोई बोलता क्यों नहीं? इस छोटी - सी बात केलिए इतना बडा उपद्रव!

ध्रुवस्वामिनी ने मज्जागत लज्जा तजकर रामगुप्त से कहा कि देखिए, मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझनेवाला पुरुष उसकेलिए प्राणों का पण लगा सके। उजसमय निर्ल्लज्ज कायर रामगुप्त का जवाब उसके पतित व्यक्तित्व को दर्शाने में सक्षम है। रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी से कहा "तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय डुबो नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता तुम्हारा नारीत्व - अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम यह नहीं जानती हो।"

दीना, हीना, दुखिया ध्रुवस्वामिनी ने आखिर उसके पैर पकडकर गिडगिडाकर कहा - "राज्य और संपत्ति रहने पर राजा को - पुरुष को बहुत - सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं; किन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।" निष्ठूर रामगुप्त का जवाब उसके पतित व्यक्तित्व की ही झलक देने में सक्षम है "ओह, तुम्हारा यह घातक स्पर्श बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है। मैं - नहीं। तुम, मेरी रानी नहीं, नहीं। जाओ, तुम को जाना पडेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति हो।" रामगुप्त की बातें सुनकर ध्रुवस्वामिनी ने ठीक ही कहा - "निर्ल्लज्ज! क्लीव!!! तुम जिओ। भेड़ की तरह तुम्हारा क्षुद्र जीवन! उसे न लूँगी। मैं अपना ही जीवन समाप्त करूँगी।" इस नाटक के प्रमुख पात्रों के मुँह से रामगुप्त की निन्दा और अवहेलना की बातें ही हम सुनते हैं। चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त से कहा "और आप से तो आत्महत्या भी नहीं करते बनता।" मन्दाकिनी ने अपनी राय प्रकट करके कहा "राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राजा की रक्षा होनी चाहिए।"

रामगुप्त अपने स्वार्थ की सिद्धि केलिए अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी और भाई चन्द्रगुप्त को शकराज के पास भिजवाने में भी आगा पीछा नहीं करता। असल में अपने पथ से दोनों को सदा केलिए हटाना ही उसका लक्ष्य था। फिर भी चन्द्रगुप्त शकराज का वध करके देश का स्वामी बन बैठा। उस समय घमंडी और कुचक्री रामगुप्त सेना सहित वहाँ पहुँचा। मगर चन्द्रगुप्त ने उससे महल छोड जाने की आज्ञा दी। उस समय अपने अनुज चन्द्रगुप्त को छल से मरवा डालने की भी उसने कोशिश की। इस प्रयत्न में उसको सफलता नहीं मिली। आखिर रामगुप्त को अपने प्राणों से हाथ धोना पडा।

संक्षेप में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का खल नायक रामगुप्त लम्पट, भीरु, क्लीव, शंकालु, मर्यादा हीन, स्वार्थ लिप्सु है। इस नाटक में संघर्ष की सृष्टि करने में उसका योगदान अवश्य है।

मंदाकिनी का चरित्र चित्रण

मंदाकिनी "ध्रुवस्वामिनी" का एक अप्रधान पात्र है। फिर भी जब वह रंगमंच पर खडी होती है तब अपनी चरित्रिकविशिष्टताओं के कारण दर्शकों और पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है।

देशप्रेम की भावना उसमें कूट - कूट कर भरी है। काम पडने पर आज़ादी की बलिवेदी पर अपने प्राणों को न्योछावर करने केलिए भी वह तैयार होती है। बलि पथ का अंगारा होकर देश की स्वतंत्रता को बनाए रखने की तीव्र इच्छा उसके मन में है। रंगमंच पर प्रविष्ट होते ही मन्दाकिनी ने जो बातें कहीं उनमें देश की दुरवस्था एवं स्वार्थी एवं कायर राजा की करनी की हमें झलक मिलती है। जैसे "मूर्खों ने स्वार्थ केलिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल छन्द की धूल उडती है।"

मन्दाकिनी देशप्रेमियों का आदार और देशद्रोहियों की घृणा करती है। चन्द्रगुप्त की प्रशंसा एवं रामगुप्त की निन्दा करते हुए उसने खुल्लम खुल्ला कहा "कुमार चन्द्रगुप्त! कितना समर्पण का भाव है उसमें? और उसका बडा भाई रामगुप्त! कपटाचारी रामगुप्त! जी करता है इस कलुषित वातावरण से कहीं दूर, विस्मृति में अपने को छिपा लूँ। पर मन्दा! तुझे विधाता ने क्यों बनाया? नहीं। मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्तव्य करने केलिए यहाँ रुकना होगा। न्याय का दुर्बल पक्ष ग्रहण करना होगा।"

मन्दाकिनी की बातों में हृदय स्पर्शिता है, चुभती चुटकी देने में भी वह समर्थ है। सोनेवाले को जगाने की अद्‌भुत क्षमता भी है। जैसे "अमात्य यह कैसी विवशता है! तुम मृत्युदण्ड केलिए उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने केलिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र का सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश!" मन्दाकिनी की वीरवाणी सुनकर चन्द्रगुप्त रोमांचित हो गया। उसने उसकी प्रशंसा करके कहा "आहो मन्दा! भला ती कहाँ से यह उत्साहभरी बात कहने केलिए आ गयी?"

नारी की दुरवस्था का वर्णन करने में मन्दाकिनी कभी नहीं अघाती। उसके ही शब्दों में "स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजनेवाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकडती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।"

मन्दाकिनी का उपदेश सुनकर ही चन्द्रगुप्त रामगुप्त के चंगुल से ध्रुवस्वामिनी को बचाने का प्रयत्न करता है। मन्दाकिनी की इन बातों में कितनी स्फूर्ति एवं उत्तेजना है "हृदय में नैतिक साहस वास्तविका प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिए तो कुमार, कि अब आप को क्या करना चाहिए?"

अबला पर अत्याचार होते देखकर मन्दाकिनी उसके विरुद्ध आवाज़ें बुलन्द करने लगती है। "महाराज, पुरुषार्थ का इतना बडा प्रहसन! अबला पर ऐसा अत्याचार! यह गुप्त - सम्राट केलिए शोभा नहीं देता। राजा का भय, मन्दा का गला घोटं नहीं सकता। तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती, तो इस अपनी कुल - मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की दस्यु - वृत्ति ने उन्हें लूटा है। इस परिषद से मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड कर जिन लोगों ने राजकिल्विष किया हो उन्हें दण्ड मिलना चाहिए।" मन्दाकिनी की वाणी में जनता को जगाने की अद्‌भुत क्षमता है। राजा और प्रधान मंत्री के मुँह में देखकर मन्दाकिनी ने उनके पतन की भविष्यवाणी निडर होकर की "तुम्हारी प्रवंचनाओं ने जिस नरक की सृष्टि की है उसका अन्त समीप है। यह साम्राज्य किसका है? आर्य समुद्रगुप्त ने किसे युवराज बनाया था? चन्द्रगुप्त को या इस क्लीव रामगुप्त को। जिसने छल और बल से विवाह करके भी इस नारी को अन्य पुरुष की अनुरागिनी बताकर दण्ड देने केलिए आज्ञा दी है। वही रामगुप्त, जिसने कापुरुषों की तरह इस स्त्री को शत्रु के दुर्ग में बिना विरोध किये भेज दिया था, तुम्हारे गुप्त - साम्राज्य का सम्राट है। और यह ध्रुवस्वामिनी! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कहकर सम्बोधन किया है, वह क्या है? कौन है? और उसका कैसा अस्तित्व है? कहीं धर्मशास्त्र हो तो उसका मुँह खुलना चाहिए।" मन्दाकिनी की ये बातें उसके उदात्त अज्वल व्यक्तित्व की झलक देने में सक्षम है। दरअसल मन्दाकिनी की वाणी से राजपुरोहित एवं परिषद गण प्रभावित हो गये थे।

संक्षेप में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक की मन्दाकिनी का उदात्त उज्वल व्यक्तित्व है।

कोमा का चरित्र चित्रण

कोमा "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का एक अप्रधान पात्र है। वह शकराज की परिचारिका एवं प्रेमिका है। उसके दिल में प्रेम है और ओठों में गान । वह शिक्षिता है। कोमा में वाचालता एवं वक् पटुता है। द्वितीय एवं तृतीय अंक में ही कोमा रंगमंच पर आती है। जब वह रंगमंच पर आती है तब अपने उदात्त व्यक्तित्व की झलक दिखाती है।

कोमा शांति चाहती है, क्रांति नहीं। उसका विचार है कि अनावश्यक रक्तपात नीति विरुद्ध है। कोमा प्रकृति की उपासिका है। मनुष्य की स्वार्थ लिप्सा देखकर वह खिन्न हो जाती है। हिंसा पर उतारू लोगों को देखकर उसका दिल रोता है। उसके ही शब्दों में "सब जैसे रक्त के प्यासे! प्राण लेने और देने में पागल! वसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं।"

कोमा के हृदय में शकराज से सच्चा प्रेम है। वह चाहती है कि शकराज उसके दिल के भावों को पहचान लें और उससे सब कुछ खुल्लम - खुल्ला कहकर दिल का संघर्ष कम करें। दोनों के प्रेम की झलक इस बातचीत में विशेष दर्शनीय है।

कोमा - हाँ, महाराज! क्या आज्ञा है?

शकराज - आज्ञा, कोमा! तुम्हें आंज्ञा न दूँगा। तुम रूठी हुई - सी बोल रही हो?

कोमा - रूठने का सुहाब मुझे मिला कब?

शकराज - आजकल मैं जैसी भीषण परिस्थिति में हूँ, उसमें अन्यमनस्क होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह भूल न जाना चाहिए।

कोमा - तो क्या आप की दुश्चिन्ताओं में मेरा भाग नहीं? मुझे उससे अलग रखने से क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है?

कोमा सच्चरित्र है। वह उत्यन्त विनम्र है। कभी - कभी उसके मुँह से निसृत बातें सूक्ति - सी लगती हैं जैसे "अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं?"

कोमा में वाक् पटुता एवं वाग्विदग्धता है। जब शकराज ने कहा "तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहाँ खडी हो, मेरे पास आओ" तब कोमा का जवाब हृदयस्पर्शी एवं उसकी वाक् पटुता को व्यक्त करने में रक्षम है - "पाषणी! हाँ राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुरस्त्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति -"

कोमा से राजा ने एक दिन कहा था कि मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ। उसी दिन कोमा ने शकराज से कहा "मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्त कराकर अपने गर्व की तृप्ति केलिए कैसा अनर्थ कर रहे हो?" जब शकराज ने कहा कि पागल कोमा! मेरी राजनीति का प्रतिशोध है तब कोमा ने विनम्रता से कहा कि किन्तु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता?"

शकराज से मिहिरदेव ने कोमा के पक्ष में आवाज़ें बुलन्द की तब शकराजा आपे से बाहर हो गये। उसने कहा "बस, बहुत हो चुका! आप के महत्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं ही चला जाता हूँ" मिहिरदेव ने अपमानित होकर कोमा से कहा - बेटी! हृदय को संभाल। कष्ट सहन करने केलिए प्रस्तुत हो जा। कोमा, छल का बहिरंग सुन्दर होता है। इस बंधन को तोड डाल। उसके जवाब में कोमा ने जो बात कही वह उसके मृदु प्रेमी हृदय का उद्‌गार है। करुणाद्र प्रलाप है "तोड डालूँ पिताजी! मैं ने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका उसकी हरी - हरी पत्तियाँ कुचल जायँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!"

महिरदेव कोमा के पिता तुल्य गुरुदेव हैं। अतः उन्होंने सोच - समझ कर ही ऐसा कहा था। उन्होंने कोमा से कहा कि यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने केलिए न कहता। तू नहीं मानती। वह देख, नील लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कौसा भयानक संकेत कर रहा है।

शकराज से विदा माँगते समय कोमल हृदया एवं प्रेमावत्वला कोमा ने कहा कि प्रेम का नाम न लो! वह एक पीडा थी जो छूट गयी। उसकी कसम धीरेः धीरे दूर हो जायगी।

जब शकराज का वध हो गया तब उसके लहू लुहान शव लेने कोमा ने ध्रुवस्वामिनी से प्रार्थना की। ध्रुवस्वामिनी ने अनुमति दी। किन्तु निष्ठूर रामगुप्त ने कोमा और मिहिरद्ध को मरवा डाला। कोमा का बलिदान इस नाटक में करुण गांभीर्य छोड़ देता है। कुछ रेखाओं से ही नाटककार ने कोमा का चरित्रांकन किया है। कोमा का चरित्र चित्रण हृदय स्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक बन पडा है।

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक के नामकरण की सार्थकता पर विचार कीजिए।

अथवा

"ध्रुवस्वामिनी" नाटक का शीर्षक सार्थक है या नहीं। युक्त युक्त उत्तर लिखिएः-

अकसर कृति का नामकरण प्रमुख पात्र के नाम पर होता है। वह नाटक का नायक या नायिका के नाम पर कृति का नामकरण होता है। ध्रुवस्वामिनी नाटक की रीढ़ ध्रुवस्वामिनी ही है। सभी अन्य पात्र उसके इरद -गिर्द घूमते रहते हैं। इसमें रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, मंदाकिनी, शकराज, कोमा और शिखरस्वामी के चरित्रों को न्यूनाधिक महत्व दिया गया है। किन्तु सब से अधिक महत्वपूर्ण चरित्र ध्रुवस्वामिनी का ही है। नाटक की घटनाओं का मूलकेन्द्र ध्रुवस्वामिनी है और उसीं को लेकर रामगुप्त उद्विग्न और चन्द्रगुप्त कर्म में प्रवृत्त होता है। इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी की प्रधानता निर्विवाद है। नाटक की मूल समस्या 'ध्रुवस्वामिनी' से संबंधित है। अतः इस रचना को ध्रुवस्वामिनी संज्ञा प्रदान करना सर्वथा उचित है।

रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को लेकर ही चिंतित एवं शंकित रहता हैं - "आह! किन्तु ध्रुवदेवी। उसके मन में टीस हे। जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से करती है, उसमें एक गंभीर और व्यापक रस उद्धेलित रहता होगा। . . . . . वही तो . . . . . नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर - भीतर न जाने कितने कुचक्र घूमने लगेंगे। सुना न, ध्रुवदेवी से कह देना चाहिए कि वह मुझ से ही प्यार करे। केवल महादेवी बन जाना ठीक नहीं" ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त से मिलकर षडयंत्र करने की संभावना पर विचार

कर रामगुप्त बेचैन और संत्रस्त रहता है। ध्रुवस्वामिनी की दृष्टि में अपनी वीरता का सिक्का जमाने की कामना से ही रामगुप्त कोमा और मिहिरदेव की हत्या कराता है। इस घटना से रामगुप्त के पाप - पंक में लिप्त व्यक्तित्व से सब को बडी घृणा होती है। उसके शुभ चिंतक भी उसके विरुद्ध वाग्धारा बहाने लगते हैं।

चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाने के पश्चात् जब ध्रुवस्वामिनी को बन्दी बनाने की आज्ञा रामगुप्त देवा है। इससे नाराज़ होकर चन्द्रगुप्त लौह - श्रृंखलाएँ तोड डालता है और सभी बन्दियों को मुक्त करा देता है।

शकराज की मृत्यु का मूल कारण भी ध्रुवस्वामिनी ही है। इस नाटक की मुख्य् घटनाओं के आधार पर यह निस्संकोच रूप में कहा जा सकता है कि यदि शकराज ने ध्रुवस्वामिनी की अनुचित माँग न की होती, तो उसे ऐसा भयंकर परिणाम न भोगना पडता। ध्रुवस्वामिनी की प्राप्ति के मोह पर वह ऐसा कामान्ध हो जाता है कि मिहिरदेव के इस उपदेश पर भी ध्यान नहीं देता "राजनीति? राजनीति ही मनुष्यों केलिए सब कुछ नहीं है! राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व मानव के साथ व्यापक संबंध है। राजनीति की साधारण छलनाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर केलिए तुम अपने को चतुर समझने की भूल कर सकते हो। परन्तु इस भीषण संसार में एक प्रेम करनेवाले हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति का निवास है।" उस पर कोमा के इस सदुपदेश का भी प्रभाव नहीं पडता - "मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री कों अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति केलिए कैसा अनर्थ कर रहे हो।" कोमा और मिहिरसेन जैसे सच्चे हितैषियों की बातें न मानने से शकराज को अपने प्राणों से हाथ धोना पडता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के अन्य पात्र भी ध्रुवस्वामिनी के ही विशेष सम्पर्क में आते और उसके जीवन को प्रभावित करते दृष्टिगत होते हैं। मंदाकिनी की वीर वाणी से ध्रुवस्वामिनी को निडरता, आत्मविश्वास एवं साहस मिलता है। मंदाकिनी ध्रुवस्वामिनी का पक्ष लेकर राजपुरोहित से निवेदन करती है "आर्य, आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म - बन्धन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार - कोई संरक्षण नहीं रख छोडते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलम्ब माँग कर सकें? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कलपना से आप उन्हें सन्तुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्रम ले लेते हैं।"

प्रसतुत नाटक के 'ध्रुवस्वामिनी' शीर्षक के रूप में नामकरण करने का तथ्य इस बात की दृष्टि से भी युक्तिमुक्त है कि इसमें जिस समस्या को प्रस्तुत किया गया है, वह ध्रुवस्वामिनी के ही असंतुष्ट वैवाहिक जीवन से संबंधित है। ध्रुवस्वामिनी का दांपत्य जीवन एक कोमल व्यंग्य है। वह चन्द्रगुप्त की अनुरागिनी है। रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी से शंकित , जब कि ध्रुवस्वामिनी अब भी चन्द्रगुप्त को भुला नहीं सकी है। एसे विवह - संबंध से तो यही उत्तम है कि इन दोनों का संबध विच्छेद हो जाय। प्रस्तुत समस्या उस प्रसंग में भयावह रूप में हमारे सामने प्रस्तुत की गयी है, जब रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शकराज को सौपने का निश्चय व्यक्त करता है। आखिर राजपुरोहित की इस घोषणा से ध्रुवस्वामिनी को तलाक मिल जाता है। पुरोहित के ही शब्दों में "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते। परन्तु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी यह

रामगुप्त मृत और प्रवजित तो नहीं, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्म से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में ध्रुवस्वामिनी पर रामगुप्त का कोई अधिकार नहीं है।"

संक्षेप में समीक्ष्य नाटक की धुरी ध्रुवस्वामिनी ही है। वही केन्द्रीय पात्र है। नायिका भी वही है। आदि से अंत तक अपने उदात्त एवं मोहक व्यक्तित्व की आभा बिखेर कर वह प्रेक्षकों एवं पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है। इन कारणों से समीक्ष्य नाटक का नाम "ध्रुवस्वामिनी" रखना सर्वथा उचित है।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए

1. अरे, यह क्या; मेरे भाग्य विधाता! यह कैसा इन्द्रजाल? उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशापथा? इस राजकीय अन्तः पुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुए चलते हैं, बोलते हैं और मौन हो जाते हैं। (Page 14)

जयशंकर प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिमा के धनी थे। वे श्रेष्ठ कवि ही नहीं सुप्रसिद्ध नाटककार एवं कथाकार भी थे। "ध्रुवस्वामिनी" को एक ही दृश्य के अन्दर संयोजित कर प्रसाद ने रंगमच सम्बन्धी प्रौढ दृष्टि का परिचय दिया है।

"ध्रुवस्वामिनी" का शुभारंभ नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी के स्वगत कथन से होता है। इस सन्दर्भ में हम ध्रुवस्वामिनी के आहत हृदय का चीत्कार ही सुनते हैं।

राजकुल के अन्तपुर में उसको नीख अपमान ही मिला था। वह अपने भाग्य - विधाता को पुकार कर कहती है कि यह एक तरह का इन्द्रजाल ही है। उस दिन राजपुरोहित ने कुछ आहुतियों के पश्चात् ध्रुवस्वामिनी को आशीर्वाद दिया था, वह अभिशाप ही सिद्ध हुआ है। इस राजकीय अन्तः पुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाये हुए चलते हैं, बोलते हैं और मौन हो जाते हैं। ध्रुवस्वामिनी की बातों से अन्तःपुर की रहस्यात्मकता एवं अस्वतंत्रता की झलक मिलती है। साथ ही उसके करुणा कलित हृदय की विकल रागिनी ही हम यहाँ सुनते हैं। पाठकों की जिज्ञासा को बढाने में यह प्रसंग, सहायक सिद्ध हुआ है।

2. चिन्ता करते - करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पडेगा! ठहरो हाँ, जी, तुम ने अपना काम तो अच्छा किया, किन्तु मैं समझ न सका कि चन्द्रगुप्त को वह अब भी प्यार करती है या नहीं? (Page 17)

देशप्रेम, पराधीनता से मुक्ति, नारी स्वातन्त्र्य राष्ट्र केलिए सर्वस्व बलिदान की इच्छा की, करुणा, अतीत के प्रति, संघर्ष चेतना आदि जयशंकर प्रसाद की रचनाओं की विशेषता है। स्कन्दगुप्त और चन्द्रगुप्त की भांति ध्रुवस्वामिनी भी उनका एक स्तरीय नाटक है।

खड्ग धारिणी जासूसी करके ध्रुवस्वामिनी के हृद्गत भावों को समझ - बुझाने के रामगुप्त से मिली। उसी समय प्रतिहारी भी वहाँ आ पहुँचा। प्रतिहारी ने राजा रामगुप्त से निवेदन किया कि एक चिन्ताजनक समाचार निवेदन करने केलिए अमात्य ने मुझे भेज है। प्रतिहारी से रामगुप्त का जवाब है प्रस्तुत प्रसंग।

चिन्ता करते - करते देखता हूँ कि मुझे मर जाना पडेगा। अधिक चिन्ता करने पर मानव की कभी - कभी दुर्गति हो जाती है। कभी - कभार वह पागल हो जाता है। अतः रहीम ने कहा है "चिता दहति निर्जीव कहँ चिंता जीव समेत।" यह एक नाटकीय व्यंग्य है। आखिर ध्रुवदेवी की चिंता करते - करते रामगुप्त को अपने प्राणों से हाथ धोना पडता है। रामगुप्त सन्देह ढोनेवाला पुरुष है। अतः वह यह बात जानने को उत्सुक है कि अब भी ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त को प्यार करती है या नहीं?

3. तब तो महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। मेघ संकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिए। (Page 18)

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के द्वारा भारत के गौरवशाली युगों के सजीव चित्र प्रस्तुक करने का प्रयत्न किया है, जिससे कि भारतवासियों में आत्मगौरव की भावना का संचार हो सके। ध्रुवस्वामिनी नाट्यकला की दृष्टि से प्रसाद का उत्कृष्ट नाटक है।

रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को लेकर चिंतित था। उसको ऐसा लगा कि ध्रुवदेवी को लेकर साम्राज्य से भी हाथ धोना पडेगा! रामगुप्त की अच्छी तरह ज्ञात है कि सपत्ता उसके राजदण्ड ग्रहण कर लेने से पुरोहित, अमात्य और सेनापति लोग छिपा हुआ विद्रोह-भाव रखते हैं। सिफ शिखरस्वामी ही उसका विश्वासपात्र है। यही गिरि - पथ सब झगडों का अन्तिम निर्णय करेगा। शिखरस्वामी ने रामगुप्त को एक पत्र दिया। उसे पढने के बाद रामगुप्त ने कहा कि यह पत्र एक बार भी मेरे प्रतिकूल भी नहीं। मुझे इसकी संभावना पहले से भी थी। इस सन्दर्भ में शिखरस्वामी का मार्मिक जवाब उद्घृत किया गया है।

ऐसी स्थिति में महाराज ने अवश्य ही कुछ सोच लिया होगा। मेघों से घिरे आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिए। शिखरस्वामी के कहने का तात्पर्य है कि भविष्य अवसाद और दुख से भरा है। ऐसी हालत में बुद्धि से काम करना चाहिए। शिखरस्वामी का कथन सही एवं प्रसंगानुकूल है।

4. सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल - छन्द की धूल उडती है। (Page 21)

जयशंकर प्रसाद सुप्रसिद्ध कवि ही नहीं एक श्रेष्ठ नाटककार एवं गल्पकार भी थे। प्रसाद जी का युग राजनैतिक दृष्टि से पराधीनता का युग था, अतः उन्होंने अपने राष्ट्र में आत्म गौरव के भाव संचारित करने केलिए भारतीय इतिहास के गौरव पूर्ण अध्यायों को कला के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस दिशा में "ध्रुवस्वामिनी" नाटक का योगदान महत्वपूर्ण है।

शकराज की सेना ने रामगुप्त के शिविर को चारों ओर से घेर लिया। उसीने संधि का सन्देश भेज दिया। देश की संकटकालीन परिस्थिति में अकर्मण्य एवं विलासी रामगुप्त ध्रुवदेवी के हृदय के संघर्ष के बारे में सोच - विचार करने लगा। शिखरस्वामी ने राजा रामगुप्त को स्मरण कराया कि इस समय आप को दूत से साक्षात् करके उपस्थित राजनीति पर ध्यान देना चाहिए। रामगुप्त ने कहा कि अमात्य, तुम्हारी राजनीतिज्ञता इसी में है कि भीतर और बाहर के सब शत्रु एक ही चाल में परास्त हो। इन दोनों के चले जाने के पश्चात् इनके वार्तालाप को सुनकर मन्दाकिनी ने देश की दुर्दशा पर जो सत्य प्रकट की है वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

मूर्खों ने स्वार्थ केलिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है, बीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छल - छन्द की धूल उड़ती है। अपने स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय रामगुप्त एवं शिखरस्वामी पर प्रस्तुत प्रसंग प्रकाश डालता है। कायर एवं नपुंसक राजा अपने स्वार्थ की सिद्धि केलिए छल का सहारा लेता है; वीरता का नहीं। प्रस्तुत प्रसंग रामगुप्त के स्वार्थपंक में लिप्त व्यक्तित्व पर सीधे कटाक्ष करता है। "चन्द्रगुप्त" नाटक की अलका की तरह मन्दाकिनी भारतवासियों में आत्म - गौरव की भावना का संचार करना चाहती है। स्वार्थी एवं कायर राजा का पर्दाफाश करने का उसका प्रयत्न सराहनीय है।

5. राजनीति के सिद्धांत में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसकेलिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है; किन्तु राज - विसर्जन अन्तिम उपाय है। (Page 25)

जयशंकर प्रसाद जी छायावाद और रहस्यवाद के प्रथम प्रवर्तकों में अग्रगण्य हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। "ध्रुवस्वामिनी" उनका एक नाटक है जिसमें रचनाकालीन सभ्यता और संस्कृति का पर्याप्त पुट है।

शकराज ने राजा रामगुप्त के शिविर पर धावा बोल दिया। किले को घेरने की वजह सैन्य संचालन आसान न था। आचार्य की बात है कि शकराज ने संधि का सन्देश भेजदिया। सन्धि की एक शर्त यह थी कि रामगुप्त को अपनी सम्राज्ञी को शकराज को सौंपना चाहिए। कायर और अकर्मण्य राजा रामगुप्त ने अपनी सम्राज्ञी शकराज को दान करना चाहा। उसने अपने निर्णय की सूचना ध्रुवस्वामिनी को दी। ध्रुवस्वामिनी ने कहा कि यह तो हुई राजा की व्यवस्था, अब सुनूँ मंत्री महोदय क्या कहते हैं। प्रस्तुत प्रसंग ध्रुवस्वामिनी से रामगुप्त का जवाब है।

अवसर देखकर राज्य की रक्षा करनेवाली उचित सम्मति दे देना ही मंत्री का कर्तव्य है। राजनीति के सिद्धांत में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है। उसकेलिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है; किन्तु राज - विसर्जन अन्तिम उपाय है।

शिखरस्वामी के कथन में सत्य है। राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करना श्रेय एवं प्रेय है। मगर रामगुप्त के जैसे कायर और अकर्मण्य राजा किसी भी हालत में देश की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता। शिखरस्वामी की कूटनीति, वाक्पटुता एवं सूझ - बूझ प्रस्तुत सन्दर्भ में भली भांति हम देख सकते हैं।

6. पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु - सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। (Page 25)

जयशंकर प्रसाद सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार एवं कथाकार थे। उन्होंने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में 'छूटे तरु की फूटी लता' - सी दीन दलित भारत की ललनाओं की दुरवस्था पर प्रकाश डाला है।

राजा रामगुप्त ने शकराज के सन्धि सन्देश के अनुसार अपनी सम्राज्ञी ध्रुवस्वामिनी को बिना झिझक के दान करने का निश्चय किया। मंत्री शिखरस्वामी ने भी राजा के निर्णय को सही एवं राष्ट्र की रक्षा केलिए अनिवार्य कहा। प्रस्तुतसन्दर्भ में दीन दुखी एवं क्रुद्ध ध्रुवस्वामिनी का आक्रोश ही मुखर उठा है।

पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु - संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार किया है। पुरुष नारी के बाहर की तडक - भडक पर मोहित होता, उसके भीतर की कसक - मसक पर नहीं। मुझ पर तुम्हारा अत्याचार चल नहीं सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते।

ध्रुवस्वामिनी के आहत हृदय का चीत्कार है प्रस्तुत सन्दर्भ। दीना हीना दुखिया एवं अस्वतंत्रा नारी की दीन दशा का चुभता हुआ वर्णन यहाँ हृदयहारी हुआ है। "मुक्त करो नारी को मानव चिर बन्धित नारी को। युग युग की बर्बर कारा से जननी सखी प्यारी को" का आह्वान इस प्रसंग में विशेष दर्शनीय है। ध्रुवस्वामिनी के अन्तर्द्वन्द्व और उसकी दुर्दशा को अभिव्यक्त करने में प्रस्तुत सन्दर्भ ने विशेष योगदान दिया है।

7. तुम सुन्दर हो, ओह कितनी सुन्दर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता - तुम्हारा नारीत्व - अमूल्य हो सकता है। फिर भी अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित् तुम यह नहीं जानती हो। (Page 26)

जयशंकर प्रसाद क्रांतदर्शी कलाकार थे। हिन्दी के नाटक साहित्य में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु और ध्रुवस्वामिनी उनके प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं।

राजा रामगुप्त क़ायर, क्लीव एवं अकर्मण्य था। वह 'तंत्रीनाद कवित्तरस सरस राग रति रंग' में मग्न था। शकराज की सेना ने दुर्ग को धेर लिया। रामगुप्त उदास एवं चिंतित होने लगा। इतने में शकराज ने सन्धि का सन्देश भेज दिया। सन्धि की एक शर्त ध्रुवस्वामिनी को शकराज को दान करने की थी। निर्ल्लज्ज शकराज ने पूरीशर्तें स्वीकार की और ध्रुवस्वामिनी को उसकी सूचना भी दी। दीना हीना दुखिया ध्रुवस्वामिनी ने रामगुप्त से विनम्र निवेदन किया कि मेरे पिता ने उपहार - स्वरूप कन्या - दान किया था। किन्तु गुप्त सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? देखिए, मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके। प्रस्तुत प्रसंग में रामगुप्त ने ध्रुवस्वामिनी के हृदय में चुभनेवाला जवाब दिया है।

तुम बहुत ही सुन्दर हो। तुम सोने की कटार की तरह हो बहुत ही सुन्दर एवं मूल्यवान मगर खतरनाक भी हो। सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबो नहीं सकता। तुम्हारी सुन्दरता, तुम्हारा नारीत्व अमूल्य हो सकता है। मगर मैं स्वयं बहुत अधिक आवश्यक हूँ।

रामगुप्त की बातों में ध्रुवस्वामिनी के प्रति उपेक्षा, घृणा, अनादर आदि व्यक्त होते हैं। 'सोने की कटार' कहकर ध्रुवस्वामिनी के सौन्दर्य एवं स्त्रीत्व पर ही नहीं उससे प्राण हथेली पर लिए घूमना पडेगा की सूचना भी दी गयी है।

8. राजा अपने राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तब भी उस राजा की रक्षा होनी ही चाहिए। अमात्य, यह कैसी विवशता है! तुम मृत्युदण्ड केलिए उत्सुक! महादेवी आत्महत्या करने केलिए प्रस्तुत! फिर यह हिचक क्यों? एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो! बचोगे तो राष्ट्र का सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश! (Page 29)

जयशंकर प्रसाद जी का ऐतिहासिक नाटक "ध्रुवस्वामिनी" इतिहास की एक नाजुक घडी का चित्रण करनेवाला एक समस्या नाटक है।

शकराज की सन्धि की पूरी शर्तें स्वीकार कर रामगुप्त ने उसके सम्मुख घुटने टेक दिये। रामगुप्त अपनी पत्नी को शकराज को दान में देने को भी तैयार हो गया। ऐसी दुरवस्था में मन्दाकिनी ने आत्महत्या करनी चाही। चन्द्रगुप्त ने ठीक समय पर आकर उसको बचाया। चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त और शिखरस्वामी की कडी आलोचना की। उससमय शिखरस्वामी ने कहा कि मेरे अपराध केलिए मुझे प्राण दण्डदिया जाय! मैं उसे अविचल भाव से ग्रहण करूँगा; परन्तु राजा और राष्ट्र की रक्षा होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में मन्दाकिनी बाहर से प्रवेश करती है और वह शिखरस्वामी और रामगुप्त के हृदय में चुभनेवाले व्यंग्य बाण चलाकर अपना विचार प्रकट करती है।

जो राजा देश की रक्षा करने में असमर्थ है उसकेलिए मर - मिटने की कोई ज़रूरत नहीं है। जो राजा देश की आज़ादी को बनाये रखने केलिए कुर्बानी करने को तैयार होते हैं उसकेलिए मर मिटना ही श्रेय एवं प्रेय है। अमात्य मृत्यु दंड भोगने को तैयार! महादेवी आत्महत्या करने केलिए प्रस्तुत! ऐसी हालत में देश केलिए मर - मिटना ही श्रेयस्कर एवं वांछित है।

मन्दाकिनी की वीर वाणी उसके व्यक्तित्व में चार चाँद और लगा देने में सक्षम है। मन्दाकिनी की देश भक्ति, देश केलिए मर - मिटने की मधुर लालसा, सत्य और न्याय के पक्ष में वाग्धारा बहाने की इच्छा इस प्रसंग में विशेष दर्शनीय है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है।

9. सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को सब का नियामक समझता हूँ! पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है। (Page 35)

ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद का एक स्तरीय नाटक है। इस नाटक के सभीस्त्री पात्र मृदु हृदया, प्रेम विह्वला एवं कर्तव्य परायणा हैं। इन पात्रों में कोमा का निस्पृह बलिदान नाटक में करुण गांभीर्य छोड देता है। कोमा चढती जवाबी में शकराज से प्रेम करती है। वह तो शकराज की सेविका है। उसके ओठों में गान और दिल में प्रेम है। वह शांति चाहती है, क्रांति नहीं। युद्ध की चिंता में संलग्न शकराज से उसने निवेदन किया कि जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य आमंत्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिए महाराज! प्रस्तुत प्रसंग कोमा से शकराज का मार्मिक उत्तर है।

शकराज पुरुषार्थ पक्षपती है। वह कर्मठ राजा है। उनका पक्का विचार है कि सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्वलता के नाम हैं। शकराज पुरुषार्थ को ही सौभाग्य को खींच लेनेवाला मानता है। वह युद्ध केलिए उत्सुक नहीं था। वह दिग्विजय केलिए नहीं निकला था।

प्रस्तुत सन्दर्भ में शकराज की वीर वाणी ही हम सुनते हैं। उसका अदम्य आत्मविश्वास, अटूट साहस एवं कर्तव्य निष्ठा की झलक इस प्रसंग में विशेष दर्शनीय है।

10. पाषाणी! हाँ राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर स्त्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति होती है। (Page 36)

जयशंकर प्रसाद महान कवि, कथाकार एवं नाटककार थे। उनके ऐतिहासिक नाटकों में ध्रुवस्वामिनी का महत्वपूर्ण स्थान है।

कोमा शकराज की परिचारिका ही नहीं प्रेमिका भी है। कोमा क्रांति की नहीं शान्ति की उपासिका है। अतः उसने शकराज को उपदेश दिया कि अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है? शकराज को कोमा की बातें अच्छी नहीं लगीं। उसने चिढकर कहा कि यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, मैं किसी से बडा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खडी हो, मेरे पास आओ। प्रस्तुत सन्दर्भ में कोमा ने राजा के हृदय में चुभनेवाली बात कही है।

पाषाणी! हाँ राजा! पाषाणी के भीतर भी कितने मधुर स्त्रोत बहते रहते हैं। उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। शिला की तरह स्तब्ध खडी होनेवाली कोमा पर व्यंग्य कसकर ही राजा ने कहा कि तुम पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खडी हो,मेरे पास आओ।

कोमा की वाक् पटुता, भोलापन, स्पष्टवादिता आदि गुण इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है।

11. राजनीति? राजनीति ही मनुष्य केलिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व - मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति की साधारण छलनाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर केलिए तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सके हो। परन्तु इस भीषण संसार में एक प्रेम करनेवाले हृदय को खो देना, सब से बडी हानि है। शकराज! दो प्यार करनेवाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है। (Page 41)

जयशंकर प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। श्रेष्ठ कवि होने के अतिरिक्त वे सुप्रसिद्ध नाटककार एवं गल्पकार भी थे। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा नामक सुकुमारी कोमल हृदया एवं प्रेमविह्वला है। उसने शकराज से सच्चा प्रेम किया मगर दुख ही उसके जीवन की कथा रही। शकराज से कोमा ने कहा कि मेरे राजा! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्त कराकर अपनें गर्व तृप्ति केलिए कैसा अनर्थ कर रहे हो? शकराज ने कोमा को जवाब दिया कि जो विषय न समझ में आवे, उस पर विवाद न करो। इतने में मिहिरदेव वहाँ पधारे। उन्होंने कोमा के मुरझाये चेहरे को देखकर उसका कारण जानना चाहा। शकराज ने उत्तर दिया कि रामगुप्त का दर्प दलन करने केलिए, मैं ने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा दी थी। आज रामगुप्तकी रानी मेरे दुर्ग में आयी है। कोमा को इसमें आपत्ति है। प्रस्तुत सन्दर्भ में मिहरदेव ने कोमा के विचार का समर्थन एवं शकराज के निर्णय की तीखी आलोचना की है।

स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम भयानक अपराध कर रहे हो। ऐसा घृणित काम करना कभी भूषण नहीं, दूषण ही है। यह तुम्हारी भावि पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा। राजनीति ही मनुष्य केलिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से हाथ धोना खतरनाक है। इस भीषण संसार में प्रेम करनेवाले हृदय को तोडना अपने पाँवों पर कुलहाडी मारना है। प्यार करनेवाले दो हृदयों के बीच स्वर्गीय ज्योति का निवास है।

मिहिर देव के उज्वल व्यक्तित्व की झलक उनके मुँह से निसृत इस मंगल उपदेश से मिलती है। उनकी संत वाणी हृदय को छूने में सक्षम है।

12. तोड डालूँ पिताजी! मैं ने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका - उसकी हरी - हरी पत्तियाँ कुचल जायँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे? ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो! (Page 41)

जयशंकर प्रसाद का एक स्तरीय ऐतिहासिक नाटक है ध्रुवस्वामिनी। कोमा यद्यपि इसका एक स्त्री पात्र है तथापि उसका उज्वल उदात्त व्यक्तित्व अपने ढंग का अनोखा है।

मिहिरदेव कोमा केलिए पितृ तुल्य गुरुदेव है। उन्होंने कोमा को आज्ञा दी कि राज प्रसाद को छोडकर अभी चला जाना ही श्रेय एवं प्रेम है। क्योंकि शकराज ने न तो मिहिरदेव के उपदेश को सुना न कोमा के प्रति अपने प्रेम को व्यंजित किया। मिहिरदेव अपने और कोमा के अपमान से दुखी एवं रूष्ट थे। इस सन्दर्भ में कोमा ने अपने सच्चे प्रेम की व्यंजना करके ऐसी कठोर आज्ञा न देने की प्रार्थना की है।

मैं ने इस प्रेम की लता को अपने आँसुओं से सींचकर बडा किया था। अब वह वल्लरी मेरी असावधानी के कारण मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। उसे झटका देने को मन नहीं लगता। अतः आप ऐसी आज्ञा न दीजिए। मृदु हृदया एवं प्रेमविह्वला कोमा के मृदु हृदय का उद्‌गार है प्रस्तुत प्रसंग। नाटक में संघर्ष के साथ ही अन्तर्द्वन्द्व को भली भांति अभिव्यक्त करने में प्रस्तुत प्रसंग सहायक सिद्ध हुआ है।

Notes Prepared by:

Prof. P. Krishnan
Ushas House
P.O. Kuttikkakam
(Via) Edakkad
Kannur Dist
Pin - 670 663

$$$$$$$$$$$$$

आषाढ़ का एक दिन

मोहन राकेश

आषाढ़ का एक दिन

'आषाढ़ का एक दिन' के वाचन के साथ आप इसके महत्वपूर्ण अशों की व्याख्या भी पढ़ेंगे तथा नाटक के विभिन्न पक्षों की विशेषताएँ भी जानेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप

- नाटक में प्रयुक्त कठिन शब्दों और मुहावरों के अर्थ कर सकेंगे;
- नाटक का सार बता सकेंगे तथा नाटक के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या भी कर सकेंगे;
- नाटक की कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे;
- नाटक के परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- नाटक की शैली, भाषा और संवाद की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- मोहन राकेश के व्यक्तित्व और कृतित्व की जानकारी हासिल कर सकेंगे;
- हिन्दी नाटक के उद्‌भव और विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- उपर्युक्त विशलेषण के माध्यम से नाटक के महत्व भी पहचान कर सकेंगे।

मोहन राकेश की और साहित्य सेवा

श्री. मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी सत् 1925 को पंजाब के अमृतसर में हुआ था। उनके पिताजी श्री निहिल सिंह एक वकील थे और वे कर्ज़ से पीडित थे। जब मोहन राकेश की उम्र सोलह साल की थी तब पिताजी स्वर्ग सिधारे। बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत में एम.ए.की परीक्षा पास की।

पिताजी की मृत्यु के बाद पिताजी के मित्रों और बंधु बांधवों के अभद्र आचरण और स्वार्थ लिप्सा देखकर मोहन राकेश का दिल धक् से हो उठा। वे नये आसमान और नयी भूमि का सपनो देखते थे। तब्दीली की ललक उनका बुनियादी स्वभाव था। वे धुमक्कड थे। दिल्ली, अमृतसर, जलन्धर, कलकत्ता, मुंबई आदि जगहों में धूमते रहे। वे कहीं स्थिर नहीं रहे। वे गम पीना जानते हैं और उसे अकेले बरदाश्गत करने की सागर जैसी क्षमता रखते हैं।

मोहत राकेश की ज़िन्दगी में एक अजीब - सा बिखराव नज़र आता है। वे कही टिकते नहीं, क्योंकि अपने घर की परेशानियों के कारण वे दिल्ली में ही एक बस्ती से दूसरी में बाग रहे है .....अपना सारा सामान और किताबों के अम्बार लिए - लिए धूमते रहे हैं। वे जैसे धीरे - धीरे अपने को हर तरह की ममता और लगाव से तोड़ते जा रहे हैं, पर इसमें वे सफल नहीं हो पाते, क्योंकि उनके पास ज़रूरत से ज़्यादा कोमल दिल है और वे सिर्फ अकेला रहकर जीने का आदी नहीं है। उन्होंने कई नौकरियाँ की और कई नौकरियाँ छोड दी। ये मस्तमौला है।

मोहन राकेश सृजन के संतुलन, संवरण,संगठन और अनुशासन केलिए भागते हैं - कभी 'कश्मीर, कभी डलहौज़ी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीरानों में। उनमें सौन्दर्य की एक अनभूझ भूख है ..... गहन मानवीय संवेदनाओं में रस - बसा यह अभिशापित यक्ष किसी आषाढ़ के एक दिन के इन्तज़ार में घाटियों, पहाडों और डाकबंगलों में भटक रहे हैं। वे विनोदप्रिय थे। वे मित्रों के बीच ठट्टा मारकर हँसते और हँसाते थे।'

मोहन राकेश का निधन 3 दिसम्बर 1972 को हुआ जब कि वे सिर्फ सैतालीस वर्ष के थे।

मोहन राकेश पहले पहले कविताएँ लिखते थे। उसके बाद उन्होंने अन्य विधाओं पर जमकर लिखा है। साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर उन्होंने लिखा था। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

कहानी संग्रहः-

1. इनसान के खण्डहर।
2. नए बादल।
3. जानवर और जानवर।
4. एंक और ज़िन्दगी।
5. फौलाद का आकाश।
6. आज के साए।
7. रोयें रेशे।
8. एकं - एक दुनिया।
9. मिले - जुले चेहरे।

नाटकः-

1. आषाढ़ का एक दिन।
2. लहरों के राजहंस
3. आधे अधूरे।
4. पैरतले की ज़मीन।

उपन्यासः-

1. अन्धेरे बन्द कमरे।
2. कांपता हुआ दरिया।
3. नीली रोशनी की बाँहें।
4. न आनेवाला कल।

यात्रा विविरणः-

1. आखिरी चट्टान तक।

निबन्धः-

1. परिवेश

हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास

हिन्दी में नाटक साहित्य का उद्भव कब से माना जाय? इस विषय में विद्वान एकमत नहीं है। डा. दशरथ ओझा ने अपने महत्वपूर्ण अनुसन्धान द्वारा 'गय सुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक सिद्ध किया है।

हिन्दी का प्राचीनतम नाटक - साहित्य जो वास्तव में नाटकीय तत्वों से युक्त है, मैथिली भाषा में मिलता है। महाकवि विद्यापति द्वारा रचित अनेक नाटक बताये जाते हैं, किन्तु अब उनमें 'गोरक्ष - विजय' ही उपलब्ध है। इसका गद्य भाग संस्कृत में तथा पद्य भाग मैथिली में है। अप्रकाशित होने के कारण इसका अधिक विवरण अनुपलब्ध है

सत्रहवीं और अठारहवीं शती में कुछ ऐसे पद्य बद्ध नाटकों की रचना हुई, जो शैली की दृष्टि से रास लीलाओं से भिन्न है तथा जिनका अभिनय कदाचित नहीं हुआ। इन नाटकों में रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक, समयसार नाटक (बनारसीदास) चंडी चरित्र (गुरु गोविन्द सिंह), प्रबोध चन्द्रोदय (यशवन्त सिंह), शकुन्तला नाटक (नेवाज), और समासार नाटक (श्री रघुराम नागर), करुणामरण (कृष्णजीवन लछीराम) उपलब्ध हैं।

वास्तव में हिन्दी नाटक का जन्म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों से ही हुआ। हिन्दी के नाटकों के विकास को स्थूलतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

1. भारतेन्दु युग - (सन 1857 से 1920ई)

2. प्रसाद युग - (सन 1911 से 1933ई.)

3. प्रसादोन्तर युग - (सन 1933से अद्यावधि)

इन तीनों युगों के प्रमुख नाटककारों के नाटकों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

1. भारतेन्दु युग - इस युग में मुख्यतय तीन प्रकार के नाटक लिखे गये - 1) अन्य भाषाओं से अनुवादित 2) पारसी कम्पनियों केलिए लिखे गये नाटक तथा 3) मौलिक नाटक। अनूदित नाटकों में बंगला, संस्कृत और अंग्रेज़ी के नाटकों को हिन्दी में रूपांतरित किया गया। पं. सत्यनारायण कविरत्न तथा स्वयं भारतेन्तु जी ने संस्कृत के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् 1861 में राजा लक्ष्मणसिंह ने कालिदास के 'अभिज्ञान शकुन्तलम' का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् 1838 में भारतेन्दुजी ने 'विद्या सुन्दर' नामक नाटक का बंगला से छायानुवाद प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् उनके अनेक मौलिक और अनूदित नाटक प्रकाश में आए। लाला सीताराम, पं. रूपनारायण पांडेय, देवदन्त तिवारी, तोताराम, नन्दलाल, मथुराप्रसाद उपाध्याय, ज्वाला प्रसाद मिश्र आदि ने भी अन्य भाषाओं के नाटकों को हिन्दी में अनूदित रूप में प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु जी ने मौलिक और अनूदित कुल मिलाकर लगभग बीस नाटक लिखे हैं जिनमें से सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, नील देवी, भारत दुर्दशा, चन्द्रावली और अन्धेर नगरी अधिक प्रसिद्ध है। धनंजय - विजय, मुद्राराक्षास, सत्य हरिश्चन्द्र और कर्पूर मंजरी उनके प्रसिद्ध अनुदित नाटक हैं जब कि उनके मौलिक नाटकों और अहसनों के नाम हैं - पाखण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम, चन्द्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी और अंधेर नगरी आदि। अपने नाटकों द्वारा भारतेन्दुजी ने देशवासियों में राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत करने की चेष्टा करते हुए सामाजिक कुरीतियों पर मार्मिक प्रहार किये हैं।

भारतेन्दुकाल में पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जागरण से संबंधित सभी प्रकार के विषयों को आधार बनाकर नाटक लिखे गये। ऐतिहासिक वर्ण्यवस्तु पर लिखे गए नाटकों में उल्लेखनीय हैं भारतेन्दु कृत नीलादेवी, वेकुंठनाथ दुग्गलकृत श्रीहर्ष, राधाकृष्णदास कृत पद्मावती और महाराणाप्रताप, गोपालराय कृत यौवन योगिनी आदि। राष्ट्रीय जागरण से संबंधित नाटकों में उल्लेखनीय हैं - भारतेन्तु कृत भारत दुर्दशा, खड्ग बहादुर भल्लकृत भारत - भारत, शरत कुमार मुखर्जी कृत भारतोद्धार, प्रतापनारायण मिश्र कृत भारत - दुर्दशा आदि। पौराणिक नाटकों में उल्लेखनीय हैं - दामोदर सप्रेम का रामलीली, शीतलप्रसाद त्रिपाठी का रामचरितावली, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन का महारास, अयोध्या सिंह उपाध्याय के प्रद्युम्न विजय और रुक्मिणी परिणय। इस काल के नाटककारों में समाज सुधार, देशप्रेम या हास्य विनोद की प्रवृत्ति मिलती है। इनमें गद्य खड़ीबोली में और पद्य ब्रजभाषा में प्रयुक्त हुआ है।

प्रसाद युगः- आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य के दूसरे प्रभावशाली नेता जयशंकर प्रसाद हुए। अनुवाद के माध्यम से बंगला के द्विजेन्द्रलाल राय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव हिन्दी के नाटककारों पर पड़ा, पहले जहाँ पौराणिक एवं कल्पित कथानकों को ग्रहण किया जाता था, वहीं नये युग में ऐतिहासिक विषयों को अपनाया गया। पूर्ववर्ती समाज - सुधार एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण के स्थान पर सांस्कृतिक एवं दार्शनिक चित्रण को अधिक महत्व प्राप्त हुआ। वस्तुतः इस परिवर्तन की सूचना सब से पूर्व जयशंकर प्रसाद के नाटकों में मिलती है।

श्री.जयशंकर प्रसाद ने एक दर्जन से अधिक नाटकों की रचना की। सज्जन, कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाल, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नाग यज्ञ, स्कंदगुप्त, एक घूँट, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी। भारतेन्दु - युग के कवियों ने देश की दुर्दशा का वर्णन अपनी रचनाओं में किया, जिसके प्रभाव से भारतवासियों में करुणा, ग्लानि, दैन्य एवं अवसाद की भावना का विकास हो जाना स्वाभाविकथा। ऐसी मन स्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता से शून्य हो जाता है। अतः प्रसादजीने अपने देशवासियों में आत्मगौरव, उत्साह, बल एवं प्रेरणा का संचार करने केलिए अतीत के गौरव पूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्धयुग से सम्बन्धित है, जब कि भारता की सांस्कृतिक पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रही थी। नाट्य - शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटकों में पूर्व और पश्चिमी तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है जहाँ उनके नाटकों में कथावस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, सत्य और न्याय के विषय में भारतीय नाट्य साहित्य की परंपराओं का पालन हुआ है, वहाँ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में हुआ है। रंगमंच व अभिनेयता की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में अनेक दोष मिलते हैं।

प्रसाद - युग के अन्य नाटककारों में माखन लाल चतुर्वेदी (कृष्णार्जुन युद्ध) पंडितगोविन्द वल्लभ पंत (वरमाला, राजमुकुट आदि) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' (महात्मा ईसा), मुंशी प्रेमचन्द (कर्बला, संग्राम) आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रसादोत्तर नाटक साहित्य

ऐतिहासिक नाटक - प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक घटनाओं की परम्परा का पर्याप्त विकास हुआ। इस क्षेत्र में हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविन्ददास, उदय शंकर भट्ट तथा अन्य कतिपय नाटककारों ने महत्वपूर्ण योग दिया।

हरिकृष्णा प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबंधन, शिवसाधना, प्रतिशोध स्वप्न भंग, आहुति, उद्धार, शपथ, भग्नप्राचीर, प्रकाशस्तंभ, कीर्ति स्तंभ, संरक्षक, विदा, संवत् - प्रवर्तन, साँपों की सृष्टि आदि को लिया पा सकता है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में अति प्राचीन या सुदूर पूर्व के इतिहास को न लेकर प्रायः मुस्लिम कालीन भारतीय इतिहास को लेते हुए उसके सन्दर्भ में आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, सांप्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके विभिन्न नाटकों से देश भक्ति, आत्म त्याग, बलिदान, हिन्दु मुस्लिम एकता आदि भावों एवं प्रवृत्तियों की उदीप्ति एवं पुष्टि होती है।

वृन्दावनलाल के ऐतिहासिक नाटकों में 'झांसी की रानी', 'पूर्व की ओर' बीरबल, ललित विक्रम आदि उल्लेखनीय हैं। गोंविन्द वल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उनके राजमुकुट, अन्तपुर का छिद्र आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक, रेवा; सेठगोविन्द दस के हर्ष, शशिगुप्त, कुलीनता; उदयशंकर भट्ट का मुक्तिपथ, दाहर, शक विजय; सियाराम शरण गुप्त का पुण्य पर्व; लक्ष्मीनारायण मिश्र के गरुडध्वज, वत्सराज, वितस्ता की लहरें; उपेन्द्रनाथ अश्क का जय - पराजय; सत्येन्द्र का भुक्ति यज्ञ; सुदर्शन का सिकंदर; वैकुण्ठनाथ दुगाल का समुद्रगुप्त; जगन्नाथ प्रसादमिलिन्द का गौतम नन्द आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

समस्याप्रधान और सामाजिक नाटक - प्रसादोत्तर काल में परिमाण की दृष्टि से इस वर्ग की सर्वाधिक रचना हुई है। इन नाटकों में, समाज में व्याप्त नाना प्रकार की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। समस्या नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मी नारायण मिश्र अग्रगण्य हैं। इनके नाटकों में समस्या के निर्वहण पर इतना बल मिलता है कि इनके नाटक समस्या नाटक कहलाते हैं। इनके नाटकों परपाश्चात्य जगत के इब्सन, बर्नाडशा आदि नाटककारों के नाट्य शिल्प का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। समस्या नाटकों में नाटककार का ध्यान किसी समस्या पर ही केन्द्रित रहता है और वह ऐसे शिल्प विधान का प्रयोग करता है कि वह समस्या बडे प्रखर रूप में पाठक प्रेक्षकों के समक्ष प्रस्तुत की जा सके। मिश्र जी के नाटकों पर यह आक्षेप किया गया है कि वे समस्या तो प्रस्तुत करते हैं किन्तु उनका समाधान नहीं प्रस्तुत करते। मिश्र जी के प्रसिद्ध समस्या नाटक हैं - सन्यासी, राजयोग, मुक्ति का रहस्य, गरुड ध्वज, राक्षस का मंदिर, नाटक की वीणा, आधीरात और सिन्दूर की होली।

अन्य सामाजिक नाटककारों में से विशेष प्रसिद्ध हैं - सेठ गोविन्ददास, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि। सेठ गोविन्ददास के इस वर्ग के नाटकों में विशेष उल्लेखनीय हैं - सेवा पथ, सन्तोष कहाँ, दुख क्यों, सिद्धांत स्वातन्त्र्य, कुलीनता, त्याग या ग्रहण, गरीबी - अमीरी, पाकिस्तान आदि। सेठजी के नाटक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। अभिनेयता की दृष्टि से वे पर्याप्त सफल हैं। और उनमें मुख्यतया धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। गोविन्द वल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों के नाम हैं - आँगूर की बेटी तथा सिन्दूर की बिन्दी आदि। श्री. उपेन्द्रनाथ अद्दक ने भी ऐसे अनेक सामाजिक नाटक लिखे हैं जिनमें मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर सामाजिक समस्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं। उनमें से कुछ के नाम है छटा- बेटा, स्वर्ग की झलक, कैद, उडान, अलग - अलग रास्ते आदि।

व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित नाटक लिखने वालों में मोहन राकेश का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। उसके पश्चात् सुरेन्द्रवर्मा, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस प्रभृति नाटककारों की

रचनाएँ आती हैं। मोहन राकेश ने अपनी तीन रचनाओं द्वारा ही हिन्दी नाटक में बहुत ऊँचा स्थान बना लिया है। उनके नाटकों - आषाढ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे - में व्यक्ति एवं समाज के द्वन्द्व से उत्पन्न कतिपय स्थितियों का चित्रण विभिन्न कथानकों के माध्यम से किया गया है। पहले दो नाटक क्रमशः संस्कृत के महाकवि कालिदास की जीवनी एवं अश्वघोष के 'सौन्दरनन्द' पर आधारित हैं किन्तु दोनों में ही प्राचीन विषय - वस्तु के माध्यम से आधुनिक युग की संवेदनाओं - मुख्यतः व्यक्ति के अहं, काम, प्रेम आदि से संबंधित अन्तर्द्वन्द्व - की व्यंजना सफलतापूर्वक की गयी है। 'आधे अधुरे' में परम्परागत नैतिक मूल्यों एवं आधुनिक जीवन - दृष्टि के बीच घटित संघर्ष का चित्रण करते हुए दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन के विघटन को रेखांकित किया गया है। मोहन राकेश के नाटक रंगमंच एवं शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं।

इनके अतिरिक्त आधुनिक जीवन एवं समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं के चित्रण की दृष्टि से तीन युग (विमला रैना) अपनी धरती (रेवती शरण शर्मा) धरती और आकाश (शंभूनाथ सिंह) बिना दीवार का घर (मन्नू भंडारी) निरकुंश (व्रज मोहन शाह) भूमिका (सर्वदानन्द) तस्वीर उसकी (चिरंजीत) हम लोग (अमृतराय) आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं

नवें दशक की महिला नाटककारों में डा. कुसुम कुमार, मृणाल पांडे, त्रिपुरारी शर्मा, शांति मेहरोत्रा, मन्नू भंडारी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हमें देखते हैं कि हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दिशाओं मे हुआ है। यद्यपि प्रारंभ में हिन्दी रंगमंच के अभाव तथा एकांकी रेडियो रूपकों व चलचित्रों की प्रतियोगिता के कारण इसके विकास की गति मन्द रही, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में अव्यावसायिक संस्थाओं के द्वारा रंगमंच के विकास के प्रयास हुए हैं जिससे इसकी प्रगति द्रुतगीत से हो रही है। अपने युग और समाज की नवीनतम स्थितियों, परिस्थितियों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यंजित करने की दृष्टि में हिन्दी का नाटक उसकी अन्य सभी विधाओं की अपेक्षा सर्वाधिक नवीन एवं अधुनातन है जो इस क्षेत्र के लेखकों की व्यापक अन्तर्दृष्टि एवं गंभीर सामाजिक चेतना को प्रमाणित करता है।

"आषाढ का एक दिन" नाटक की अंकानुसार कथावस्तु

प्रथम अंक

प्रथम अंक की शुरुआत वर्षा के साथ होती है। अंबिका का छोटा आ घर। मल्लिका बाहर से भीगकर आती है। वह माँ अंबिका से कहती है कि आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी धारासार वर्षा! दूर - दूर तक की उपन्यकाएँ भीग गयीं और मैं भी! फिर भी माँ कुछ नहीं बोलती। मल्लिका ने पूछा कि तुम बोलती क्यों नहीं। मगर अंबिका आक्रोश की दृष्टि से उसे देखती है। उसने कहा "सूखे वस्त्र अन्दर तल्प पर है"। मल्लिका ने कहा कि मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती। वर्ष में पहाडी का वह दृश्य बहुत अद्भुत अनुभव था। फिर मल्लिका श्रतुसंहार की कुछ पंक्तियाँ गुनगुनाने लगती है। माँ की चुप्पी उसे अच्छी नहीं लगी। उसने माँ को काम करने नहीं दिया। माँ की आँखों से आँसू आये। मल्लिका के बार - बार पूछने पर अंबिका ने कहा कि अग्निमित्र आज लौट आया है। उसे मे ने भेजा था। मल्लिका ने अपना क्रोध प्रकट करते बुए कहा कि तुम जानती हो में विवाह नहीं करना चाहती, फिर उसकेलिए प्रयत्न क्यों करती हो? तुम समझती हो मैं निरर्थक प्रलाप करती हूँ? अम्बिका ने जवाब दिया कि मैं देख

रही हूँ तुम्हारी बात ही सच होने जा रही है। अग्निमित्र सन्देश लाया है कि वे लोग इस संबंध केलिए प्रस्तुत नहीं हैं। कहते हैं .....। मल्लिका ने बात काटकर कहा कि क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है?

अम्बिका को मल्लिका की बातें सुनकर बडा दुख हुआ। उसने कहा कि आज तुम्हारा जीवन तुम्हारी संपत्ति है। मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है। इतना बडा अपवाद मुझ से नहीं सहा जाता है। मल्लिका ने तब खुल्लम खुल्ला कहा कि मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सम्बन्धों से बडा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है। अम्बिका को उसकी बातें सुनकर दुख भी हुआ और क्रोध भी। उसने मल्लिका के हृदय में चुभनेवाला व्यंग्यवाण चलाते हुए कहा - "तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?"

मल्लिका ने माँ की शिकायत करते हुए कहा कि ग्राम के अन्य व्यक्तियों की तरह तुम भी उन्हें सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती हो। अम्बिका ने तब कालिदास की आलोचना करते हुए कि ग्राम के अन्य लोग उसे उतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूँ। अन्य लोगों को उससे कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु मुझे है। उसके प्रभाव से मेरा घर नष्ट हो रहा है।

इस समय कालिदास एक घायल हरिण शावक को बाँहों में लिये पुचकारता हुआ आता है। उसकी आवाज़ सुनते ही अंबिका अन्दर चली गयी। घायल हरिण शावक को देखते ही मल्लिका ने पूछा कि यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया? क्या दक्षिण की तरह यहाँ भी .....? कालिदास ने कहा कि आज ग्राम - प्रदेश में कई नयी आकृतिया देख रहा हूँ। राज्य के कुछ कर्मचारी आये हैं। मल्लिका ने कहा कि माँ कहती हैं कि जब भी ये लोग आते हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है। वर्षा के रोमांच के बाद ..... मुझे यह सब बहुत विचित्र लगा। सच, माँ आज बहुत रुष्ट है। माँ को अनुमान हो गया होगा कि वर्ष में मैं तुम्हारे साथ थी, नहीं तो इस तरह भीगकर न आती। माँ को अपवाद की बहुत चिन्ता होती है। मगर कालिदास ने उसका कोई जवाब नहीं दिया।

इतने में राजपुरुष दन्तुल वहाँ आ पहुँचा। उसने हरिण शावक को लौटा ने का दावा किया क्योंकि वह उसके तीर से घायल हो गया था। कालिदास ने हरिणशावक को नहीं दिया। इस पर दोनों के बीच खूब बहसें हुई। दन्तुल ने कालिदास पर व्यंग्य करते हुए कहा तो "राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे! ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो"।

कालिदास हिरणशावक को लेकर चला गया। जब दन्तुल कालिदास पर आक्रमण करने केलिए तलवार खींच ली तो मल्लिका ने उसे रोककर कहा कि ठहरो, राजपुरुष! हरिणशावक केलिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनकेलिए संवेदना का, कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे। दन्तुल को यह बात सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। उसने सूचना दी कि उज्जयिनी की राज्य - सभा का प्रत्येक व्यक्ति 'ऋतु संहार' के कवि कालिदास को जानता है। आज उज्जयिनी का राज्य 'ऋतु संहार' के कवि का सम्मान करना और उन्हें राजकवि का आसन देना चाहता है। आचार्य वररुचि इसी उद्देश्य से उज्जयिनी से यहाँ आए हैं। यह सुनकर मल्लिका आश्चर्यस्तब्ध हो जाती है। मल्लिका ने अंबिका से कालिदास को

राजकवि का उच्च पद प्राप्त होने की सूचना दी। मगर अम्बिका ने उस पर खुशी नहीं जाहिर की वरन कहा कि वह व्यक्ति (कालिदास) आत्म सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है। इस आलोचना पर मल्लिका नाराज़ हो गयी। उसने माँ से कहा कि तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो माँ! अम्बिका ने अपना विचार स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूं तुम्हारे साथ उसका इतना सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। फिर अपनी पुत्री को सावधान करके अम्बिका ने कहा "कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी, तो जो प्रश्न तुम्हारे सामनो उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी। तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?" मल्लिका ने माँ की बातें सुनकर कहा "माँ, आज तक का जीवन किसी तरह बीता ही है। आगे का भी बीत जाएगा"।

मातुल कालिदास को ढूँढकर वहां आ पहुँचा। इतने में निक्षेप भी वहाँ पहूँचा गया। मातुल के चले जाने के बाद निक्षेप ने कहा कि केवल मल्लिका ही कालिदास के हठ को दूर कर सकता ही क्योंकि कालिदास उज्जयिनी जाना नहीं चाहता। वह सचमुच इस पर्वत - भूमि को छोड़कर नहीं जाना चाहता। वह कालीमंदिर में बैठा है। कालिदास के हठ को दूर कर उज्जयिनी जाने की प्रेरणा करने के वास्ते मल्लिका निक्षेप के साथ चली जाती है। इस बीच विलोम अंबिका के घर पहुँचता है। वह दुखी अम्बिका को अपनी बातों से और भी दुखी बनाता है। कालिदास के साथ मल्लिका घर वापस आती है। मल्लिका 'अयाचित अतिथि' विलोम से वहाँ से जाने का आग्रह करती है। फिर भी विलोम वहाँ से टस से मस नहीं होता है। कालिदास और विलोम के बीच बहसें होती है। मल्लिका ने विलोमकी निन्दा करके कहा कि आप यहाँ इस समय एक अनचाहे अतिथि के रूप में उपस्थित हैं। विवश होकर विलोम यह कहलकर वहाँ से चला जाता है कि अनचाहा अतिथि संम्भवतः फिर भी कभी आ पहुँचे। तब केलिए भी क्षमा चाहते हुए .....।

कालिदास फिर उदास होता है। उसने मल्लिका से कहा "प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का ही नहीं है। उससे कहीं बडा एक प्रश्न मेरे सामने है"। मल्लिका ने तसल्ली देकर कहा कि तुम यहाँ से जाकर भी मुझ से दूर हो सकते हो .....? यहाँ ग्राम - प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा? यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते। वे सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं। जानती हूँ कि कोई भी रेखा तुम्हें घरे ले, तो तुम घिर जाओगे। मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती। इसलिए कहती हूँ, जाओ। कालिदास ने जवाब दिया कि मैं अनुभव करता हूँ कि यह ग्राम प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुडा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो,यह आकाश और ये मेघ हैं, यहाँ की हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं। मल्लिका के विचार में नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे। इस राय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कालिदास ने कहा कि नयी भूमि सुखा भी तो सकती है।

आसमान में पुनः बादल छा गया। मल्लिका ने कालिदास से कहा कि आचार्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। तुम जाओ। मगर बिदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्तहो। कालिदास पल - भर आँखें मूँदे रहता है फिर झटके से चला जाता है। मल्लिका हाथों में मुँह छिपाये आसन पर जा बैठती है। तीव्र मेघ - गर्जन सुनाई देता है और साथ वर्ष का शब्द सुनाई देने लगता है। मल्लिका सिसक उठती है। बेचारी मल्लिका हाथों

में मुँह छिपाकर सिसक उठती है। अम्बिका ने सांत्वना देकर कहा 'रोओ नहीं मल्लिका' मल्लिका अम्बिका के वक्ष में मुँह छिपा लेती है।

अंक दो

कुछ वर्षों के बाद अंबिका के घर की अवस्था अत्यन्त दयनीय हो गयी है। निक्षेप अंबिका के स्वास्थ्य की जानकारी लेने वहां पहूँच गया है। निक्षेप ने मल्लिका से कहा कि तुम दुबली होती जा रही हो। बहुत दिनों से राजधानी की ओर से कोई व्यक्ति नहीं आया। मैं ने आशा नहीं की थी कि उज्जयिनी जाकर कालिदास इस तरह वहाँ के हो जाएँगे। मगर मल्लिका ने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि वे वहाँ रहकर इतने व्यस्त हैं। वहाँ उन्होंने कई नये काव्यों की रचना की है। निक्षेप ने जवाब दिया कि मुझे कहते दुख होता है कि उन्ही व्यवसायियों के मुँह से और भी तो कई बातें सुनी थी। उन्होंने गुप्त वंश की राज दुहिता से विवाह किया है। मल्लिका पर संवेदना प्रकट करने पर मल्लिका ने कहा कि उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे असाधारण है। उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था। सुना है राज - दुहिता बहुत विदुषी है। निक्षेप ने सूचना दी कि लगता है आज फिर कुछ लोग बाहर से आये हैं। ये राज्य के कर्मचारी है।

इतने में एक चिरपरिचित आकृति को घोडे पर जाते देखा। वह कालिदास ही है।

उनके पश्चात् रंगिणी और संगिणी इस पहाडी प्रदेश की विशेषताओं पर अनुसन्धान करने मल्लिका के घर आ पहुंचीं। उन्होंने मल्लिका से थोडी देर बातें की। रंगिणी ने मल्लिका से कहा कि राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही है। परन्तु यहाँ धूमकर हम तो लगभग निराश हो चुकी हैं, यहाँ कुछ सामग्री है ही नहीं। ये दोनों मल्लिका की बातों से प्रसन्न नहीं हूई। यह यहाँ के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं जानती कहकर वहाँ से चली गयी।

मल्लिका को इस बात में बडा दुख हुआ कि कालिदास के इस पहाडी प्रदेश में आने पर भी इधर नहीं आये। मल्लिका के कालिदास के बारे में सोच - विचार मे तल्लीन होने पर वहाँ दो राजकर्मचारी - अनुस्वार और अनुनासिक आ पहुँचे। उन्होंने सूचना दी कि मातृगुप्त की राजमहिषी मल्लिका से मिलने केलिए आ रही है। इस गौरवपूर्ण अवसर पर इस उपवेश गृह के वस्तु - विन्यास में कुछ परिवर्तन करने के वास्ते इधर आये हैं। आखिर वे दोनों कुछ परिवर्तन किये बिना ही वहाँ से चले गये। मातुल प्रियंगुमंजरी को मार्ग दिखलाता हुआ वहाँ आ पहुँचे। प्रियंगु मंजरी के निर्देशानुसार मातुल वहाँ से चल दिया। प्रियंगु मंजरी ने मल्लिका से कहा कि यहाँ से बहुत दूर तक की पर्वत श्रंखलाएँ दिखायी देती हैं। कितनी निर्व्याज सुन्दरता है। मुझे यहां आकर तुम से स्पर्द्धा हो रही है। इस सौन्दर्य के सामने जीवन की सब सुविधायें हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने केलिए जीवन भर का समय भी पर्याप्त नहीं है। प्रियंगु मंजरी ने मल्लिका से कहा कि तुम भी हमारे साथ क्यों नहीं चलती? तुम वहाँ मेरे साथ मेरी संगिनी के रूप में रहोगी। थोडी देर के पूर्व इधर दो कर्मचारी आये थे उनमें से एक के साथ तुम्हारी शादी होगी। मगर मल्लिका ने उनकी बात को टाल दिया। घर के परिसंस्कार की बात यह कहकर मल्लिका ने टाल दी कि आप बहुत उदार हैं। परन्तु हमें ऐसे ही घर में रहने का अभ्यास हैं, इसलिए असुविधा नहीं होती।

प्रियंगु ने मल्लिका से पूछा कि क्या तुम्हारे मन में कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर - परिवार हो। इसके जवाब अम्बिका ने कहा कि नहीं, इसके मन में यह कल्पना नहीं है। क्योंकि यह

भावना के स्तर पर जीति है। अंबिका ने प्रियंगु मंजरी से अपने आक्रोश को अभिव्यक्त किया। लेकिन साँस फूल जाने से वह आगे नहीं बोल पाती।

राजकन्या प्रियंगु जल्दी वहाँ से चली जाती है। अंबिका ने नाराज़ होकर मल्लिका से कहा कि लो, 'मेघदूत' की पंक्तियां पढो। इन्हीं में न कहती थीं उसके अन्तर की कोमलता साकार हो उठी है? आज इस कोमलता का और भी साकार रूप देख लिया?

विलोम अम्बिका के घाव पर नमक छिटकने केलिए अचानक वहाँ आ पहुँचा। उसने अंबिका से कहा कि इस तरह क्षुब्ध क्यों हो अम्बिका? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे सौमाग्य पर तुम से स्पर्द्धा कर रहा है। राजकीय पग धूलि घर में पडती है, तो लोग गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर हर किसी के जीवन में कहाँ आता है? अम्बिका ने खिन्न एवं क्षुब्ध होकर कहा कि यह अवसर देखने केलिए ही तो मैं ने आज तक का जीवन - जिया है। इतना बडा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है! अम्बिका ने विलोम से प्रार्थना की इस समय माँ को विश्राम करने दीजिए। आप की बातों से माँ का मन विक्षुब्ध होता है। लेकिन विलोम वहाँ से जाना नहीं चाहता क्योंकि उसने देखा है कि कालिदास को पहाडी में घोड पर जाते हुए। उस स्थिति में कुशल क्षेम पूछने केलिए वह वहीं ठहर गया। उसके नचले जाने पर 'अयाचित स्थिति' उत्पन्न होने की धम की देने पर भी विलोम वहाँ से नहीं चला जाता। आखिर तब वह चला जाता है जब कि वह देखता है वह अश्पारोहि (कालिदास) बहुत दूर चला गया है।

मल्लिका कालिदास की उपेक्षा से अत्यन्त दुखी होकर रो पडी। मल्लिका को अश्वास दिलाकर तब अंबिका ने पूछा 'अब भी रोती हो? उसके लिए? उस व्यक्ति केलिए जिसने .....?'

अंक तीन

कुछ और वर्षों के पस्चात् ही तीसरे अंक की घटना घटती है। वर्षा और मेघ गर्जन का शब्द। प्रकोष्ठ मे कोई नहीं है। मातुल भीगे वस्त्रों से बैसाखी के सहारे चलता हुआ आता है। चारों ओर दृष्टि डालकर एक लम्बी साँस लेता है, नकारात्मक ढंग सेसिर हिलाता है। उसने मल्लिका को पुकारा। फिर दोनों में वार्तालाप हुआ।

मातुल ने एक पैर खो जाने के कारण अपनी दुखस्था का वर्णन किया। उसने कहा कि अगर राज - प्रासाद में रहकर पाँव तोड बैठूँगा तो कभी ग्राम छोडकर वहाँ न जाता। अब पीछे से मेरा घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं पैर टिकता ही नहीं। मैं तो अब घर के रहते बेघर हो रहा हूँ। न बाहर रहते बनता है न अन्दर।

मातुल ने सूचना दी कि कालिदास ने कश्मीर छोड दिया है। कश्मीर में विद्रोही शक्तियाँ सिर उठा रही है। अब तो कालिदास ने सन्यास ग्रहण किया है।

मल्लिका ने जवाब दिया कि यह सत्य नहीं हो सकता। मेरा हृदय इसे स्वीकार नहीं करता।

मातुल वर्ष के थमते ही वैसाखी पटककर चला जाता है।

मल्लिका ने इस पर अपनी घनीभूत पीडा को अभिव्यक्त किया। बीते वर्षों की दुखद स्मृतियाँ रह - रहकर उसके मन को कचोटने लगी। आखिर मल्लिका ने स्वगत में कहा कि मैं ने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुम में देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोडकर सन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन? मुझे मेरी सत्ता के बोध - से इस तरह वंचित कर दोंगे?

बिजली और मेघ गर्जन के बीच थका - माँदा कालिदास अन्दर प्रवेश करता है। मल्लिका जड - सी उसे देखती रहती है।

कालिदास ने मल्लिका से कहा कि संभवतः पहचानती नहीं हो। और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ। और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता।

मल्लिका ने कहा 'मुझे विश्वास नहीं होता कि यह स्वप्न नहीं है। बहुत भीग गए हो। मेरे यहाँ सूखे वस्त्र तो नहीं है'।

कालिदास ने कहा कि मेरे भीगे होने की चिंता न करो। इस तरह भीगना भी जीवन की एक महत्वाकांक्षा हो सकती है? वर्षों के बाद भीगा हूँ। फिर उसने कहा कि सत्ता और प्रभुता का मोह छूट गया है। आज मैं उस सबसे मुक्त हुँ जो वर्षों से मुझे कसता रहा है। मैं यहाँ से जाना नहीं चाहता था क्योंकि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका। मैं ने वहां रहकर जो कुछ लिखा है वह यहां के जीवन का ही संचय था। 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' का यक्ष की पीडा मेरी पीडा है और तपस्विनी उमा तुम हो।

कालिदास को अपने ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ मल्लिका के यहाँ देखकर बडा आश्चर्य हुआ। उस समय मल्लिका ने अपने हाथों से बनाकर सिये ग्रन्थ भेंट करके कहा किये तुम्हारी रचना केलिए। कालिदासने बडे चाँव से उसे देखकर कहा कि इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है ..... अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की।

बच्ची के रोने की आवाज़ सुनकर कालिदास स्तब्ध हो गया। मल्लिका ने कहा कि यही मेरा वर्तमान है। उस समय विलोम अन्दर आ गया।

उसने कालिदास की हँसी उडाकर कहा "अब यह इतनी परिचित आकृति है और मैं इसे पहचान ही रहा। आकृति जानी हुई है और व्यक्ति नया - सा लगता है"। विलोम अपनी बाहें बढाता है मगर कालिदास पीछे हटता है। कालिदास का ही नहीं अम्बिका का भी परिहास करके वह दोनों के घावों में नमक छिडकता है।

कालिदास उसका आक्षेप सह नहीं सका। उसने कहा - 'यहाँ से चले जाओ विलोम'। विलोम ने हास्यव्यंग्य के साथ कालिदास का सामना किया - "चला जाऊँ? इस घर से या ग्राम प्रान्तर से ही? सुना है शासन बहुत भली होता है। प्रमुता में बहुत सामर्थ्य होती है। तुम चाहते हो इस समय मैं यहाँ से चला जाऊँ। मैं चला जाता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम आदेश देता हो। परन्तु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो, और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए"।

विलोम के चले जाने के बाद कालिदास ने कहा कि मैं ने कहा था मैं अथ से आरम्भ करना चाहता हूँ। यह संभवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था। परन्तु देख रहा हूँ की समय अधिक शक्तिशाली है क्योंकि वह प्रतीक्षा नहीं करता।

कालिदास बाहर चला देता है। मल्लिका कालिदास को पुकारकर उसी तरह झरोखे के पास से आकर ड्योढी के किवाड खोल देती है। पैर बाहर की ओर बढने लगते हैं परन्तु बच्ची को बाँहों में देखकर जैसे वहीं जकड जाती है। फिर टूटी - सी आकर आसन पर बैठ जाती है और बच्ची को और साथ सटाकर रोती हुई उसे चूमने लगती है।

नाटक के तत्वों के आधार पर "आषाढ़ का एक दिन" की समीक्षा।

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे विख्यात नाटककार ही नहीं एक दक्षहस्त कथाकार भी थे। उनके नाटक हिन्दी नाटक साहित्य के मील का पत्थर कहा जा सकता है। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' उनके प्रसिद्ध चर्चित नाटक हैं।

नाटक वह दृश्यकाव्य है जो प्रत्यक्ष कल्पना एवं अध्यवसाय का विषय बन सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसाधारण को आनन्दोपलब्धि कराता है। नाटक जीवन की संकेतिक अनुकृति नहीं है वरन् वस्तु सजीव प्रतिलिपि है। नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी व्यवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके। आधुनिक नाटक के तत्व ये हैं - कथावस्तु, पात्र, चरित्र चित्रण, कथोपकथन या संवाद देशकाल और वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य और अभिनय। कथावस्तु, पात्र और रस ही भारतीय नाट्य तत्व हैं। अब हम नाटक के तत्वों के आधार पर "आषाढ़ का एक दिन" की समीक्षा करें।

कथावस्त - कथावस्तु नाटक का सर्वप्रमुख तत्व कहा जा सकता है, क्योंकि यही वह मूलाधार है जिसके माध्यम से घटनाओं का विकास, पात्रों का चरित्रांकन तथा उद्देश्य की प्राप्ति आदि तत्वों की योजना संभव होती है। नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक, काल्पनिक या उन दोनों का मिश्रण हो सकती है। "आषाढ़ का एक दिन" की कथावस्तु मिश्रित है और उसमें कल्पना की मात्रा ही अधिक है। कालिदास से संबंधित कथा आधिकारिक है। अन्य कथाएँ प्रासंगिक हैं। जो प्रासंगिक कथा नाटक के बीच से निकलकर अन्त तक चलती है उसे 'पताका' कहते हैं। मातुल की कथा 'पताका' है। जो प्रासंगिक कथा बीच से निकलकर कुछ ही दूर चलती है वह 'प्रकरी' है। अनुस्वार, अनुनासिक, रंगिणी सांगिनी, प्रियंगुमंजरी - मल्लिका प्रसंग इसके उदाहरण हैं। कालिदास और मल्लिका की आत्मीयता, सम्राट के आदेश पर कालिदास का राजकवि बनकर उज्जयिनी में रहना, राज दुहता प्रियंगुमंजरी से कालिदास का विवाह, कालिदास का कश्मीर का शासक बनना, मल्लिका के प्रकोष्ठ में पधारकर प्रियंगुमंजरी का मल्लिका से मिलना, माता आम्बिका की मृत्यु के बाद अभाव ग्रस्त मल्लिका का ग्राम पुरुष विलोम के आगे मज़बूर होकर तन देना और उसकी बच्ची की माँ बनना, काश्मीर के विद्रोहियों से तंग आकर कालिदास का वापस मल्लिका के पास पहुँचना और आखिर मल्लिका के यथार्थ को जानकर कालिदास का प्रस्थान नाटक में बडे ही मार्मिक ढंग से वर्णित हैं।

आलोच्य नाटक की कथावस्तु में रोचकता का भी अभाव नहीं है। इस नाटक में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि समीक्ष्य नाटक की कथावस्तु मे मौलिकता, रोचकता, संभव्यता, संक्षिप्तता, सुसम्बद्धता के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान हैं और वह स्त्रोत की दृष्टि से मिश्रित कथावस्तु की श्रेणी में आती है।

पात्र और उनका चरित्र चित्रण

कुछ समीक्षकों के मत में यही इस नाटक का सर्वप्रमुख तत्व होता है क्योंकि नाटक के माध्यम से पात्रों के चरित्रांकन का ही प्रयास किया जाता है और उसमें कथावस्तु का उतना महत्व नहीं होता जितना पात्रों के चयन और उनके सभ्यक चरित्र विकास का होता है। प्रस्तुत नाटक में कालिदास ऐतिहासिक पात्र है। उनका मातृगुप्त नाम भी ऐतिहासिक है। उनका एक राजकन्या से विवाह करता इतिहास समर्थित है; पर उसका नाम प्रियंगुमंजरी नाटककार की कल्पना है। मल्लिका, अम्बिका, विलोम, मातुल आदि अन्य प्रधान पात्र और ना की सारे पात्र काल्पनिक हैं। कालिदास को भावुक, सुखान्वेषी, विलासप्रिय और सहृदय कवि के रूप में चित्रित किया गया है।

कालिदास परम्परागत नायकों में से धीर ललित नायकों की श्रेणी में स्थान प्राप्त करते हैं। जहाँ तक यह प्रश्न है कि नायक और नायिका का नाटककार को सुस्पष्ट चरित्रांकन करना चाहिए, इस दिशा में नाटक कार को मल्लिका के चरित्रांकन में अधिक सफलता मिली है।

देश काल अथवावातावरण

'आषाढ का एक दिन' ऐतिहासिकता का पुट लिये हुए हैं, इस दृष्टि से उसमें देशकाल अथवावातावरण के अंकन की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए था। किन्तु पर्वतीय प्रदेश में लकडी के बने घरों की दीवारों के चिकनी मिट्टी से पुते होने, दीवारों और किवाडों पर स्वस्तिक, कमल तथा शंखों के चित्र बने होने, बरतनों में मिट्टी और कांस के बरतनों का उल्लेख करने जैसे थोडे - से तथ्यों के अतिरिक्त नाटककार ने इस ओर जागरूकता नहीं दिखायी है कि गुप्तकालीन सामाजिक जीवन पर विशेष प्रकाश पड सके। उसमें राजनीतिक आस्थिरता आदि विषयक जो उल्लेख मिलते हैं, वे किसी भी काल के राजनीतिक जीवन पर लांगू हो सकते हैं।

कथोपकथन

चर्चित नाटक के कथोपकथन कथावस्तु के विकास में मदद देने में सक्षम है। पात्रों के चरित्र पर प्रभाव डालने में भी कथोपकथन बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है। संवाद मार्मिक, रोचक एवं पात्रानुकूल है। यह संवाद भाव व्यंजना में भी अधिक सहायक है। निम्नलिखित कथोपकथन इसका सुन्दर सबूत है।

विलोम - क्या बच्ची की आकृति सचमुच विलोम से मिलती है या .....? चलो, देकोगे?

कालिदास - यहाँ से चले जाओ विलोम।

विलोम - चला जाऊँ?

हँसता है।

इस घर से या ग्राम - प्रान्तर से ही? सुना है शासन बहुत बली होता है। प्रमुता में बहुत सामर्थ्य होती है। कालिदास - मैं कह रहा हूँ इस समय यहाँ से चले जाओ विलोम - क्योंकि तुम यहाँ लौट आये हो? ..... क्योंकि वर्षों से छोडी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है? क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं? ..... तुम चाहते हो इस समय मैं यहाँ से चला जाऊँ। मैं चला जाता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम आदेश देते हो। पहलु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो, और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।

अभिनेयता - अभिनेयता की दृष्टि में आषाढ़ का एक दिन एक श्रेष्ठ नाटक है। क्योंकि इसका कथानक जटिल न होकर सरल है। उसका आकार संक्षिप्त तथा पात्रों की संख्या कम है। उसमें अरुचिकर और असंभव घटनाएँ नहीं है। उसमें हास्य - व्यंग्य का पुट है। भाषा सरल और प्रवाहमयी है। 'आषाढ का एक दिन' के कथोपकथन संक्षिप्त, सरल एवं सजीव हैं, भाषा सरल और प्रवाहमयी है ।

उद्देश्य समीक्ष्य नाटक में नाटककार ने प्रच्छन्न रीति से भावनामयी नारीकी अहंवादी आत्मकेन्द्रित पुरुष वर्ग द्धारा होनेवाली दुर्गति के प्रति पाठक - प्रेक्षकों की करुणा और संवेदना को उमारन में सफलता हासिल की है। राज्याश्रय कलाकारों की प्रतिभा को विकसित करने का साधन होने के स्थान पर उसे कुंठित करने का ही कारण बनता है, इस तथ्य को भी नाटककार ने कालिदास के अन्दर्द्वन्द्व के द्धारा अभिव्यक्त किया है। संक्षप में नाटक के तत्वों के आधार पर 'आषाढ का एक दिन' एक श्रेष्ठ रचना है।

रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि से 'आषाढ का एक दिन' की समीक्षा।

रंगमंच पर अभिनय करने पर ही नाटक के महत्व को हम उजागर कर सकते हैं। मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' सरलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिन्दी नाटक रंगमच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्यूत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियाँ ही हमारे सामने हैं। परन्तु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियों की माँग करता है और नहीं यह संभव प्रतीत होता है कि हम उस रंग शिल्प को व्यापक रूप से ज्यों का त्यों अपने यहाँ प्रतिष्ठित कर दें।

हिन्दी रंगमंच के विकास से निस्सन्देह यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न रंगशालाएं राजकीय या अर्द्ध राजकीय संस्थाओं द्वारा जहाँ - तहाँ बनवा दी जाएँ जिससे वहाँ हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन किया जा सके। प्रश्न केवल आर्थिक सुविधा का ही नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का भी है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का अनेक बार मंचन हो चुका है। हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में भी इसके अनुवाद और मंचन हो चुके हैं। अनेक प्रसिद्ध नाट्य समीक्षकों, निर्देशकों और अभिनेताओं ने इसे देखा, निर्देशित किया और सराहा

अभिनेयता और मंचीयता की दृष्टि से नाटक का कथानक संक्षिप्त और सुलझा हुआ होना चाहिए। उसकी लम्बाई भी अधिक नहीं होनी चाहिए। 'आषाढ़ का एक दिन' शीर्षक नाटक में कालिदास और मल्लिका की अधिकारिक कथा बिने टूटे आद्यंत चली है। मल्लिका का कालिदास से भावनात्मक प्रेम, उसकी प्रेरणा से कालिदास का उज्जयिनी चला जाना और वहाँ मातृगुप्त नाम से काश्मीर का राजा बनना और राजकुमारी प्रियंगु मंजरी से शादी करना, अपने पर्वत प्रदेश के गाँव में वापस आने पर भी मल्लिका से न मिलना, और आखिर टूटा - हारा एवं थका - माँदा कालिदास का मल्लिका से मिला, मल्लिका का वर्तमान देखकर मन मसोसना और उसकी पुत्री का रोना सुनते ही यथार्थ स्थिति का बोध होकर चला जाना इस नाटक की मुख्य घहनाएँ हैं। इन घटनाओं की बुनियाद पर ही नाटक का प्रासाद खडा कर दिया गया है। कथानक संक्षिप्त एवं रंगमंच की दृष्टि से उपादेय सिद्ध हुआ है। विलोम और मल्लिका से संबंधित प्रासंगिक कथा आधिकारिक कथा का मुख्य अंग बनी है।

अभिनेयता और रंगमंचीयता की दृष्टि से इस नाटक का दृश्य विधान बहुत सफल बना है। इसका कथानक तीन अंकों में गठित है। एक ही पदे की सहायता से तीनों अंक भली भांति अभिनय किये जा सकते हैं। इस नाटक में मोहन राकेश ने रंगमंच का निर्देशान भी दिया है। कथानक कई वर्षों का है। फिर भी कथानक की अन्विति इस प्रकार हुई है कि समय की दूरी दर्शकों को कभी खटकती नहीं है। स्थान और कार्य संकलन का भी अच्छी तरह पालन हुआ है। प्रत्येक दृश्य के प्रारंभ में रंगमंच की सच्चा का संकेत दिया गया है। कार्य व्यापार की तीव्रता तथा अंकों के बीच की घटनाएँ नाटककार ने इस प्रकार व्यंजित कर दी हैं कि सारे कथानक में एक सूत्रता और प्रभाव साम्यता आयी है।

'आषाढ़ का एक दिन' का कथोपकथन संक्षिप्त और सजीव है। वे पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायक हैं। उनके घटनाओं के विकास में योग मिले। वे पात्रों की मनस्थिति और सामाजिक दशा के अनुकूल हैं। उनमें विदग्धता और व्यंग्य पुट है।

वास्तव में 'आषाढ़ का एक दिन' का लेखन और प्रदर्शन दोनों ही स्तरों पर व्यापक सफलता का आधार है उसकी बेहद सधी हुई, संयमित और सुचिंतित पात्र योजना। नाट्य रूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' सुगठित यथार्थवादी नाटक है, जिसमें बाह्य ब्यौरे की बातों से अधिक परिस्थिति के काव्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। शायद हिन्दी का यह पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और अंतरिक यथार्थ की समन्विति और अन्त र्द्वन्द्व को संवेदनशीलताके साथ देखता और प्रस्तुत करता है। संक्षिप्त कथानक, पात्र, भाषा, दृश्य बंध आदि सारी दृष्टियों से प्रस्तुत नाटक अभिनेयता और मंचीयता से पूर्ण है।

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक की रचना का उद्देश्य

काव्य प्रकाश - कार मम्मट ने काव्य के मूल प्रयोजन या उद्देश्य पर अपने विचार को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है - "काव्य यशस र्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतेय। सद्यः परनिर्वतये कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे।।" अर्थात् साहित्य की रचना यश की उपलब्धि, धन प्राप्ति, व्यवहार - ज्ञान, अमंगलकर तथ्यों के विनाश, तात्कालिक आनन्द प्राप्ति तथा कान्ता (पत्नी) सम्मित उपदेश देने के प्रयोजन से की जाती है। आज से लगभग आठ नौ सौ वर्ष पूर्व व्यक्त किया गया मम्मट का ये अभिमत साहित्यिक रचनाओं के उद्देश्य के सन्दर्भ में आजकल भी प्रायः उतना ही सत्य है जितना कि वह मम्मट काल में था। जहाँ तक पाठक - प्रेक्षकों को प्रभावित करने का प्रश्न है नाटक एक ऐसी साहित्य विधा है, जिसका प्रभाव उपन्यास, कहानी आदि अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक पडता और स्थायी हुआ करता है।

पुरुष की अहंवादिता की शिकार बनी भावनामयी नारी की दयनीय दशा के प्रति करुणोद्रेक करना ही हमारे अभिमत में आलोच्य नाटक का मूल उद्देश्य है। मल्लिका अपनी माँ से कहती है "मैं जानती हूँ माँ, कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुख को भी जानती हूँ, फिर भी मुझे अपराध - का अनुभव नहीं होता। मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बडा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है" .....। तब अम्बिका उत्तेजित होकर कहती है - और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर! हूँ! तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?

अम्बिका काफी अनुभवी है। अतः कालिदास के दिल के विचारों को ताडने की उसकी अद्भुत क्षमता है। उसका अभिमत है कि कालिदास एक बड़ा ही आत्मकेन्द्रित और अहंवादी जीव है। वह मल्लिका से वास्तविक प्रेम नहीं करता, वरन् उसने उसको अपनी अहंतुष्टि का माध्यम बना रखा है, उसके माध्यम से वह स्वयं को ही प्रेम करने का आत्मन्तोष प्राप्त करता है, वह उसके प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझता "मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु क्या तुम सजीव व्यक्ति नहीं हो? तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है? कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थिति होगा उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर दोगी?"अनुभवी माना अम्बिका की बातों का प्रभाव मल्लिका पर नहीं पडता है। अतः वह माँ से कहती है "माँ, आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है, आगे भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती"।

मल्लिका भोली भाली है। वह अपनी चिंता नहीं करती, वरन् कई तर्कों से कालिदास को उज्जयिनी जाने को विवश करती है। मल्लिका की उदान्त प्रेम भावना जितनी अधिक सराहतीय है कालिदासकी अहं की भावना और स्वार्थ लिप्सा उतनी ही अधिक गर्हणीय है। ग्राम प्रान्त में आकर भी मल्लिका से मिलकर न जाने का नाटककार ने कालिदास के मुख से जो कारण दिलाया है, उसमें भी पुरुष की अहं भावना की परिपुष्टि कूट - कूट कर भरी हुई है। 'यशोधरा' की ये पक्तियाँ मल्लिका के संदर्भ में भी पूर्णतया सटीक प्रतीत होती है -

'अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।

आँचल मे है दूध और आँखों में पानी'।

'लहरों के राजहंस' की भूरिका में श्री मोहन राकेश ने कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के विषय में जो उद्गार व्यक्त किए हैं, उनसे स्पष्ट होता हैं कि सर्जक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व को उद्घाटित करना भी इस नाटक का एक उद्देश्य रहा है। उनके शब्दों में "कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में यह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने केलिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अन्दर्द्वन्द्व में से गुजरना पडा या नहीं यह बात गौण है मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुत को उसमे से गुज़रना पडा है, हम भी, आज उसमें से गुज़र रहे है। हो सकता है व्यक्ति कालिदास का यह नाम भी वास्तविक न हो। पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा केलिए इससे अच्छा दूसरा नां, दूसरा संकेत मुझे नहीं मिला"। नाटकक्रार के इस कथन के विषय मे डा. कृष्णदेव झारी ने लिखा है - "सर्जक कलाकार या कवि के अन्दर्द्वन्द्व का प्रकाशन कालिदास के चरित्र द्वारा मोहन राकेश ने अच्छा किया है। कालिदास को राजकवि का उच्चासन पाने केलिए सम्राट का बुलावा आता है। उसके मन में द्वन्द्व मच जाता है। एक ओर ऐश्वर्य - विलास, धन सम्पत्ति, राजकीय जीवन का ठाट - बाट है, राज्याश्रय है, सुख - मौज है, दूसरी ओर अपनी स्वतंत्रता खो बैठने, अपने प्राकृतिक वातावरण के छूट जाने का भय है, आत्म सम्मान को ठेस पहुँचने की आशंका है, किसी सम्राट या राजा के धन पर बिक जाने का डर है"।

संक्षेप में 'आषाढ़ का एक दिन' की रचना पुरुष की अहंवृत्ति की शिकार बनी नारी की दयनीय दशा के उद्घाटन केलिए की गयी है। उसका और एक उद्देश्य कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से इस तथ्य का उद्घाटन करने केलिए है कि राज्याश्रय साहित्येकार की प्रतिभा को कुंठित कर देता है।

'आषाढ का एक दिन' नाटक के नाम की सार्थकता।

कृति के नामकरण में रचनाकार को सावधानी बरतनी पडती है क्योंकि आकर्षक शीर्षकोंवाली रचनाए पाठकों को हठात् आकृष्ट करती है। नाटक का आकर्षक नामकरण करना तो इस दृष्टि से और बी अधिक आवश्यक होता है कि प्रेक्षक उसके आधार पर ही नाटक को देखने या न देखने का निश्चय करते हैं। किन्तु यह भी ध्यान रखना पडता है कि कृति का नामकरण उसके वर्ण्य - विषय में से असंबद्ध न हो, वह उसके किसी पात्र अर्थात् नायक या नायिका के थाम, किसी घटना या दृश्य आदि से अवश्य संबंधित हो। कृतियों के नामकरण में साधारणतया निम्नांकित आधारों का आश्रय लिया जा सकता है -

1. नायक या नायिका के नाम के आधार पर।

2. कृति के उद्देश्य के आधार पर।

3. मुख्य घटना के आधार पर।

4. किसी घटना के घटित होने के स्थान के आधार पर।

उपर्युक्त प्रणालियों में से प्रथम पद्धति का अधिक अनुसरण किया गया है - चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, आदि मेरे निष्कर्ष की तार्किक सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। कृति के मूल उद्देश्य के आधार पर नामकरण की गयी कृतियों में उल्लेखनीय हैं - सेवासदन, विषस्यविषमौष धम, प्रेमाश्रम आदि। मुख्य घटना के आधार पर जिन कृतियों का नामकरण किया गया है उनमें से उल्लेखनीय हैं - अभिज्ञानशाकुन्तलम, हल्दीघाटी का युद्ध, सिन्दूर की होली, शक विजय आदि। किसी घटना के घटित होनेवाले स्थान के नाम पर नामकरण की गयी कृतियों में कुरुक्षेत्र और साकेत उल्लेखनीय है। श्री मोहन राकेश ने उपर्युक्त पद्धतियों से भिन्न एक दिन विशेष की घटित होनेवाली घटना के आधार पर आलोच्य नाटक का नामकरण किया है। उनका यह प्रयास किस सीमा तक उचित रहा है, इस तथ्य पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

यदि समीक्ष्य नाटक का नामकरण नायक के नाम पर किया जाता तो वह एक प्रकार से अनुपयुक्त ही रहता द्वितीय अंक में कालिदास का कोई योगदान ही नहीं है। यदि इस नाटक का नामकरण मल्लिका के नाम पर होता तो अवश्य उपयुक्त रहता। मल्लिका ही 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की रीढ़ की हुड्डी है। घटनाएँ उसके इर्द - गिर्द ही चलती हैं। मल्लिका आदि से अंत तक अपने तेजोमय व्यक्तित्व की आभा बिखेरते हुए खडी होती है। मल्लिका आलोच्य नाटक की रीढ है और नाटक के आद्यंत छायी रहती है। उसकी चरित्रिक गरिमा पाठक प्रेक्षकों को अभिभूत किए रहती है। परन्तु मल्लिका एक कल्पित पात्र है।

समीक्ष्य नाटक की मूल संवेदना है भावनामयी नारी का पुरुष की अहंवादी प्रवृत्ति का शिकार होकर पीडा - सागर में छटपटाना और तदर्थ उस वर्षा ऋतु के प्रथम दिन का चयन करना सर्वथा उपयुक्त है जो काव्य जगत् में विरहिणी नारियों केलिए अत्यधिक दुखदायी चित्रित की गयी है। नाटक के आरंभ में आषाढ का प्रथम दिन मल्लिका पर सुखें की वर्षा करता है, उसके माध्य में वह उसकी आकांक्षा में व्यग्र है जब कि नाटक के अन्त में आषाढ़ का वही प्रथम दिन उस पर अपार दुखों की वर्षा करते दृष्टिगत होता है।

नाटक के प्रारंभ में ही परदा उठने के पूर्व हल्का - हल्का मेघ गर्जन और वर्षा का शब्द सुनायी पडता है। मल्लिका अपने प्रेमी कालिदास के साथ उस बारिश में भीगकर आनन्दतिरेक से पुलकित होकर घर वापस आती है और माँ से रोमांचक एवं विचित्र अनुभव पर प्रकाश डालकर कहती है "आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ! ..... ऐसी धारासार वर्षा! दूर - दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गयी। ..... और मैं भी तो! देखो न माँ, कैसी भीग गयी हूँ। नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूँद लूं।.....माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैं ने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत - शिखरों को

सहलाती मेघ मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन - मन की अपेक्षा आकाश में बनते - मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है"। आषाढ की वर्षा और बारिश के प्रभाव का कितना हृदयहारी वर्णन यहाँ हुआ है। सौन्दर्यापासिका मल्लिका का मृदु हृदय ही यहाँ बोल रहा है। सौन्दर्य की छाया में विचरण करने की उसकी मधुरलालसा की सशक्त अभिव्यक्ति यहाँ हुई है।

'आषाढ़ का एक दिन' में ही सारी घटनाएँ घटती हैं। आषाढ़ की वर्षा और पहाडी की तराइयां इस नाटक के पात्र हैं। नाटक में ये अचेतन नहीं हैं, सचेतन हैं। कालिदास 'मातृगुप्त' होने पर भी रह - रहकर ये पहाडियाँ और वर्षा की यादें आती हैं। उसके कवि हृदय में एक सूनापन छा जाती है। कालिदास मल्लिका से दिल खोलकर कह उठता है "मुझे वर्षों पहले यहाँ लौट जाना चाहिए था ताकि यहाँ वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता - वह सब जो अब तक नहीं लिख पाया और जो आषाढ के मेघों की तरह वर्षों से मेरे अन्दर घुमड़ रहा है"।

कालिदास की आँखें दूर तक फैली क्षितिज - रेखा पर पडती, तभी यह अनुभूति उसको सालती कि वह उस विशाल से दूर हट आया है। और एक दिन उसने पाया कि वह सर्वथा टूट गया है। वह वह व्यक्ति नहीं है जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी संबंध था।

तृतीय अंक के आरंभ और अंत में भी प्रथम अंक के समान मेघ गर्जन और वर्षा का शब्द सुनाई देता है। और मल्लिका इस विचार में मग्न दृष्टिगत होती है - "वही आषाढ़ का दिन है। उसी प्रकार मेघ गरज रहे हैं। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। परन्तु फिर भी!" कि तभी भीगे वस्त्रों में वहाँ कालिदास प्रविष्ट होते हैं। कालिदास ने अपने मन की दशा की सूचना दी और मल्लिका के साथ जीवन को पुनः अथ से आरंभ करने की मधुर लालसा भी प्रकट की। तभी मल्लिका की बच्ची के रोने की आवाज़ सुनाई पडी। बादलों की गडगडाहट, बिजली की चमक और वर्षा की झडी में कालिदास मल्लिका को छोडकर चले जाते हैं। अपनी बच्ची को छाती से लगाकर चूमती हुई मल्लिका के दृश्य के साथ पर्दा गिर जाता है और प्रेक्षकों को बिजली की चमक तथा मेघ गर्जन सुनाई देता रहता है। अतः नाटक की मूल संवेदना की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' का नामकरण सर्वथा उपयुक्त और कलात्मक सिद्ध होता है।

मल्लिका का चरित्र चित्रण

मोहन राकेश हिन्दी के युगद्रष्टा एवं युग स्रष्टा नाटककार थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' उनके श्रेष्ठ एवं बहुचर्चित नाटक हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी नाटक साहित्य में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

'आषाढ़ का एक दिन' का सब से प्रमुख स्त्री पात्र है मल्लिका। औरों को आलोक प्रदान करने के वास्ते स्वयं पिघलनेवाली मोम बत्ती की तरह है मल्लिका का करुण जीवन।

मल्लिका कोमल हृदया है। वह सौन्दर्य की उपासिका है। पल - पल परिवर्तित प्रकृति वेश देखकर उसका मन मयूर नृत्य करने लगता है। आषाढ की वर्षा में अपने प्रेमी कालिदास के साथ भीगने में उसको असीम आनन्द मिलता है। इस सुखद अनुभव का वर्णन अपनी माँ से वह इस प्रकार करती है "नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूँद लूँ। माँ, आज के वेक्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार मैं ने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो"।

मल्लिका पितृहीन अल्हड किशोरी है। कालिदास से वह सच्चा प्रेम करती है। उसके दिल में प्रेम और ओठों में गान है। उसका प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। मल्लिका वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती है, जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।

मल्लिका मानिनी है। वह अपने पैरों पर खडी होना चाहती है। दूसरों के अपवाद की तीखी आलोचता करके वह कहती है "क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है"? मल्लिका की वाक् पटुता ही हम यहाँ देखते हैं।

अपनी पुत्री के हाथ पीला करने की चिंता अंबिका को सालती रहती है। मगर पुत्री अपनी भावना में संलग्न रहती है। यह देखकर उसका मातृ हृदय रो उठता है। वह मल्लिका से क्रुद्ध होकर कहती है "तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म प्रबंचना है ..... भावना में भावना का वरण क्या होता है? उसने जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है? भावना में भावना का वरण"।

मल्लिका का हृदय दया एवं सहानुभूति का कोमल थाला है। आहत हरिण शावक को वह सहलाती और दूध पिलाती है। उसमे साहस एवं अदम्य आत्मविश्वास है। जब दन्तुल कालिदास पर आक्रमण करने केलिए आगे बढता है तब मल्लिका निर्भीक होकर उसे रोककर कहती है "ठहरो,राजपुरुष! हरिणशावक केलिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनकेलिए संवेदना का, कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शास्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे"।

मल्लिका अत्यन्त भावुक है। वह इतनी अधिक कल्पना जीवि और भावुकतामयी है कि अपने और कालिदास के 'प्रेम सम्बन्ध' को वास्तविकता के स्थान पर नहीं वरन भावना के स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। उसका मतलब यह है कि कालिदास अपनाना चाहे अथवा नहीं, किन्तु वह उसका मनसा वरण कर चुकी है और आजीवन कुंवारी रहते हुए भी कालिदास के प्रेम की माला जपते रहने को प्रस्तुत है।

मल्लिका उदारमना, कोमल हृदय एवं प्रेमिल्वला है। वह किसी भी हालत में प्रेमी कालिदास की प्रगति की राहों में बाधा उपस्थित करना नहीं चाहती है। उसने नाराज़ अम्बिका से विनम्र होकर कहा "माँ, आज तक का जीवन किसी तरह बीता ही है। आगे का भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं करना चाहती"। इतनाही नहीं मल्लिका ने ही कालिदास को उज्जयिनी जाने की प्रेरणा दी थी। इस सन्दर्भ में कालिदास से मल्लिका की बातें विशेष उल्लेखनीय है "यह क्यों नहीं सोचते कि नयी भूमि तुम्हें से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे"।

मल्लिका के संबंध में मातुल का यह कथन उसके चरित्र में चार चाँद और लगा देने में सक्षम है "वह (मल्लिका) इस सारे प्रदेश में सब से सुशील, सब से विनीत और सब से भोली लडकी है"।

मल्लिका के हृदय में सम्मान या स्वाभिमान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। प्रियंगु मंजरी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि तुम्हारे घर का परिसंस्कार करा दिया जाय, किन्तु वह उसके इस प्रस्ताव को विनम्रता पूर्वक अस्वीकार कर देती है क्योंकि इससे उसके आत्म - सम्मान को ठेस पहुँचती है - "आप बहुत उदार हैं। परन्तु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिए हमें असुविधा नहीं होती"।

मल्लिका के चरित्र में विनम्रता का पर्याप्त पुट है। वह प्रायः प्रत्येक पात्र के साथ शालीनता प्रदर्शित करती दृष्टिगत होती है। कालिदास द्वारा उसकी प्रेम भावना के साथ खिलवाड ही किया जाता है, किन्तु अंततः वह भी यह स्वीकार करते मिलता है कि मेरे समस्त कृतित्व की मूल प्रेरणा तुम्ही रही हो।

मल्लिका की अनूठी समर्पम भावना, निश्छल प्रेम, अनुप त्याग, धैर्य, विनम्रता, दयाद्रता और स्वाभिमान की जितनी भी प्रशंसा की जाय वही कम है। यथार्थ में मल्लिका विश्वास रजत नग पग तल में पीयूष स्त्रोत - सी बहनेवाली 'श्रद्धा' ही है।

कालिदास का चरित्र चित्रण कीजिए।

कालिदास "आषाढ़ का एक दिन" नाटक का नायक है। कालिदास सौन्दर्योपासक कवि है। अपने पहाडी प्रदेश से उसका अनुराग प्रशंसनीय है। पल - पल परिवर्तित प्रकृति वेश को देखकर वह आनन्दातिरेक से पुलकित होता है। वर्षो में भीगकर मल्लिका के साथ इधर - उधर टहलने में उसको असीम आनन्द मिलता है।

कालिदास पशुओं के प्रति दयालु है। जब दन्तुल के तीर से घायल मृगशावक कालिदास की गोद में कुलांच मरता आ गया तब कालिदास उसे लेकर मल्लिका के घर गया। उस हरिणशावक से उसकी बातों में आत्मीयता एवं हार्दिक हमदर्दी है "हम जिएँगे हरिणशावक! जिएँगे न? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है, तो क्या हुआ? हम पीडा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो ऊँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल हम फिर वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दूर्वा खाएँगे। खाएँगे न?"

हरिणशावक के प्राण बचाने केलिए अपने प्राणों को हथेली पर लिए धूमने केलिए भी कालिदास तैयार होता है। उसका दावा है कि यह हरिणशावक इस पार्वत्य भूमि की सम्पत्ति है, और इसी पार्वत्य - भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं।

कालिदास स्वार्थी है। मल्लिका के तन की तडक - भडक से ही उसका प्रेम है दिल की कसक - मसक से नहीं। अतः अम्बिका का कथन सोलहों आने सही है "वह व्यक्ति (कालिदास) आत्म - सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है। ..... यदि वास्तव में उसका तुम से भावना का सम्बन्ध है, तो वह क्यों तुम से विवाह नहीं करना चाहता? मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने सेप्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है"।

कालिदास में वाक् पटुता है। उसकी बातों में हास्य - व्यंग्य की झलक है। जब विलोम ने कालिदास से कहा कि हम कहीं एक - दूसरे के बहुत निकट पडते हैं तब कालिदास ने उसके हृदय में चुमनेवाला व्यंग्यबाण चलाते हुए कहा। "निसःन्देह। सभी विपरीत एक - दूसरे के बहुत निकट पडते हैं"।

कालिदास अपने ग्राम प्रान्तर को अपनी वास्तविक भूमि समझता है। वह इस ग्राम प्रान्तर से कई सूत्रों से जुडा है। उन सूत्रों में मल्लिका है, यह आकाश और ये मेघ हैं, हरियाली है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं। कालिदास की आशंका है कि राज्याश्रय में रहनेवाले कवियों को नरेशगण थोडी - सी मुद्राएँ देकर अपना क्रीत दास बना लेते हैं जिससे उनकी काव्य प्रतिभा का उचित

विकास नहीं हो पाता। और वे उन नरेशों की प्रशस्ति में रचनाएँ लिखने लगते हैं। यही कारण है कि कालिदास के मामा मातुल राजकीय सम्मान मिलने की बात सुनकर बडे प्रसन्न होते हैं किन्तु कालिदास उसे ठुकराते हुए जगदम्बा के मंदिर में जा छुपते हैं। कालिदास ने मातुल से कहा "मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने केलिए नहीं हूँ"।

कालिदास स्वार्थ की सिद्धि में तन्मय है। ग्राम प्रान्तर में रहते समय उसकी आजीवन अविवाहित रहने का प्रण किया था। किन्तु उज्जयिनी जाने पर उसने राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह किया। मातृगुप्त नाम से उसे काश्मीर का शासन संमाल लिया। वह तंगीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग में मग्न रहा। ग्राम प्रान्तर में लौट आने पर भी वह मल्लिका से नहीं मिला। मल्लिका के करुणा कलित हृदय में विकल रागिनी बजने लगी। उसके ही शब्दों में "परन्तु आज तुम आये हो, तो सारा वातावरण ही और है। और .....और नहीं सोच पा रही कि तुम भी वही हो या .....?"

साहित्य कालिदास के जीवन का पहला चरण था। जब - तब वह अपने ग्राम प्रान्तर की चर्चा करते हुए आत्म विस्मृत हो जाता है। इसिलिए राजनीतिक कार्यों से कई बार उसका मन उखडने लगता है। ऐसे अवसरों पर उसके मन को सन्तुलित रखने केलिए बहुत प्रयत्न करना पडता है। राजनीति साहित्य नहीं है। उसमे एक - एक क्षण का महत्व है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने केलिए व्यक्ति को बहुत जागरूक करना पडता है। कालिदास असफल राजनीतिज्ञ है। काश्मीर की क्रांति को दबाने में उसको सफलता नहीं मिलती है। अतः थका - माँदा वह अपने गाँव में लौट आता है।

मल्लिका उसको पहले नहीं पहचानती है। तब कालिदास ने कहा कि और न पहचानना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ। और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता! .....

मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त होने पर भी वह कालिदास के कलेवर में जी नहीं सका। कालिदास को अपने पर विश्वास नहीं है। अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर कालिदास एकदम बदल गया। कालिदास के ही शब्दों में "मैं ने प्रभुता और सुविधा के मोह में पडकर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज रेखा पर पडती, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ। मैं अपने को आश्वास देता कि आज नहीं तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा और समान रूप से दोनों क्षेत्रो में अपने को बाँट दूँगा। परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चलित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थी, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे - धीरे खण्डित होता गया। और एक दिन ..... एक दिन मैं ने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मै वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी संबंध था"।

विलोम से ज़ब कालिदास मल्लिका के घर से चले जाने केलिए कहता है तो उसके द्वारा उसकी यह कहकर आलोचना करना पूर्णतया सार्थक होने के साथ - साथ उसके स्वार्थी एवं आत्म - केन्द्रित स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है - "क्योंकि तुम लौट आए हो? ..... क्योंकि वर्षों से छोडी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है? ..... क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत है? (हँसता है) जैसे तुम से बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। समय निर्दय नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है। निर्माण किया है। :..... तुम्हें उसके निर्माण से वितृष्णा होती है, क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो नहीं देख पाते"।

प्रस्तुत नाटक में कालिदास का जिस रूप में चरित्रांकन किया गया है, उसमें से हमें उनके चरित्र के मात्र दो गुण ही प्रभावित कर पाते हैं। उनमें से प्रथम है उनका पशु पक्षियों के प्रति करुणा प्लवित हृदय रखना और द्वितीय है उनका अपने कवि व्यक्तित्व की रक्षा करने केलिए रामकीय सम्मान को ठुकाराने को प्रस्तुत हो जाना। इसके विपरीत हमें उसके दोष अधिक अखरते हैं - वह स्वार्थी है, आत्मकेन्द्रित है - अपनी प्रेयसी के साथ विश्वासघात करता है, तथा राजकीय सम्मान प्राप्त करके अपना चोला गिरगिट की तरह बदल लेता है। संक्षेप में आषाढ का एक दिन का कालिदास मानव सुलभ कमज़ोरियों से युक्त एक पात्र है।

अम्बिका का चरित्र चित्रण

अम्बिका 'आषाढ का एक दिन' नाटक का एक स्त्री पात्र है। वह मल्लिका की ममतामयी माँ है। उसके प्रति पाठक प्रेक्षकों की हार्दिक सहानुभूति रहती है। वह असमय ही विधवा हो जाती है। उसकी इकलौती पुत्री मल्लिका उसके लाड - प्यार के कारण कुछ ढीठ हो गयी है, वह कल्पना के संसार में खोयी रहती है।

मल्लिका में जीवन का काफी अनुभव है। अपनी पुत्री के हाथ पीला करने की चिंता उसको सताती थी। चढती जवानी में मल्लिका ने कालिदास से प्रेम किया। मगर बदले में दर्द पाया। कालिदास को मल्लिका की तडक - भडक से ही प्यार था उसके हृदय की कसक - मसक से नहीं। मल्लिका भावुक है। वह कल्पना की दुनिया में जीती है। अनुभवी अम्बिका इस तथ्य से भलीभांति परिचित है कि युवक कालिदास जैसे स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित कवि को अपनी प्रेयसियों के जीवन से खिलवाड करने में ही मज़ा आता है। उन्हें उनके भले बुरे की विशेष चिंता नहीं होती। अम्बिका ने मल्लिका से कालिदास से सावधान रहने का निर्देश देते हुए कहा "वह व्यक्ति आत्म सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है"।

मल्लिका ने माँ अम्बिका से कहा था कि मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है। तब अनुभवी अम्बिका का जवाब मल्लिका के हृदय में चुमनेवाला है "तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म प्रवंचना है। ..... भावना में भावना का वरण किया है। ..... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण किया क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है? ..... भावना में भावना का वरण।

अम्बिका बाहर भीतर एक है। मल्लिका ने अपनी माँ पर दोषारोपण करते हुए कहा "सच तो यह है माँ, कि ग्राम के अन्य व्यक्तियों की तरह तुम भी उन्हें सन्देह और वितृष्णा की दृष्टि से देखती हो" तब अम्बिका खुल्लम खुल्ला कहती है कि ग्राम के अन्य लोग उसे उतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूँ। मैं उससे घृणा करती हूँ। अन्य लोगों को उससे क्या प्रयोजन है। परन्तु मुझे है। उसके प्रभाव से मेरा घर नष्ट हो रहा है। कालिदास के बारे में अम्बिका की राय सोलहों आने सही है। उज्जयिनी चले जाने के बाद कालिदास राजा बन गये। वे अपने ग्राम प्रान्तर में लौट आने पर भी मल्लिका से नहीं मिलते। अम्बिका इस पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए कहती है कि मैं जानती थी। आज नहीं, तब से ही जानती थी। वह आता, तो मुझे आश्चर्य होता। अब मुझे आश्चर्य नहीं है। प्रसन्नता है कि मैं उसके संबंध में ठीक सोचती थी।

अम्बिका मल्लिका से कहती है कि यदि वास्तव में कालिदास का तुम से भावना का सम्बन्ध है, तो वह क्यों तुम से विवाह नहीं करना चाहता? और अब जब कि उसका जीवन साधन

- हीन और अभावग्रस्त नहीं रहेगा। किसी सम्बन्ध से बचने केलिए अभाव जितना बडा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बडा कारण बन जाती है। अम्बिका की बातों का खण्डन करना मल्लिका केलिए असंभव है भोली भाली मल्लिका अपनी माँ के इस तर्क के आगे लाजवाब होती है कि मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही सम्बन्ध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। कल तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा, और घर में एक समय के भोजन की व्यवस्था भी नहीं होगी, तो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा, उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी? फिर कह दो कि यह मेरी नहीं विलोम की भाषा है।

विलेम के शब्दों में हमें भी कहना पडेगा कि अम्बिका का जीवन तो पीडा का इतिहास है। इन वर्षों में अम्बिका के साथ क्या - क्या बीता है। समय ने उसके मन, शरीर और आत्मा की इकाई को तोडकर रख दिया है। उसने तिल - तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो।

अम्बिका मानिनी है। राणी प्रियंगु के घर आकर मल्लिका से घर का परिसंस्कार करने और अपनी सखी होकर उज्जयिनी जाने और वहाँ के राजपुरुष से शादी करने की बात सुनकर उससे न रहा गया। वह क्षोभ आवेश और खेद के साथ प्रियंगु मंजरी के पास चली पाती है। किन्तु खांसी और सास घुटने की वजह वह अपनी बातें पूरी कर नहीं सकी। मल्लिका ने अपनी माँ की अस्वस्थता की वजह उसे कुछ कहने नहीं दिया। इस पर दुखी एवं नाराज़ होकर अम्बिका का मृदु हृदय रो उठा। उसके ही शब्दों में "मैं किसी आनेवाले से बात भी नहीं कर सकती? दिन, मास,वर्ष मुझे घुटते हुए बीत गए हैं। मेरे लिए यह घर घर नहीं, एक काल - गुफा है जिसमें मैं हर समय बन्द रहती हूँ। और तुम चाहती हो, मैं किसी से बात भी नकरूँ?

जब विलोम ने कहा कि राजकीय पागधूलि घर में पडती है, तो लोग गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर हर किसी के जीवन में कहाँ आता है? तब अम्बिका का स्वाभिमान जाग उठा। उसने झट व्यंग्य किया कि यह अवसर देखते केलिए ही तो मैं ने आज तक का जीवन जिया है। इतना बडा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है। चलो मौं स्वयं चलकर सारे ग्राम में इस सौभाग्य की घोषण करूँगी। हमारे वर्षों के अभाव और दुःख कितना बडा फल लाये हैं कि राज्य के स्थपति हमारे घर की भित्तियों का परिसंस्कार कर देंगे। अम्बिका के आहत हृदय का चीत्कार ही हम यहाँ सुनते हैं।

दुख ही अम्बिका के जीवन की कथा रही। उसके करुणा कलित हृदय से विकल रागिनी बज़ उठती थी। गुप्त जी के शब्दों में मल्लिका के संबंध में हमें कहना पडेगा "अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध औ आँखों में पानी"।

विलोम का चरित्र चित्रम

विलेम "आषाढ़ का एक दिन" का एक पात्र है। कुछ समीक्षकों ने विलोम को खल नायक के रूप में चित्रित किया है। मगर यथार्थ में वह खल नायक नहीं है उसे कालिदास का प्रतिद्वन्द्वी कहना ही उचित है। भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार विलोम खलनायक है। असल में खल नायक नायिका और नायक के बीच कई बाधायें उपस्थित करता है। किन्तु विलोम कालिदास और मल्लिका को उज्जयिनी जानेसे पूर्व विवाह के पावन सूत्र में आबद्ध करने का ही प्रयत्न करता है।

विलेम विचाल है। उसकी वाक् पटुता प्रशंसनीय है। उसकी व्यंग्योक्तियाँ हृदय में चुमनेवाली होती हैं। कालिदास के साथ व्यंग्य में ही वह बातें करता है। मल्लिका विलोम की घृणा करती है। वह नहीं चाहती है कि विलोम अपने घर में जाकर माँ अंबिका के हृदय को अशांत और क्षुब्ध करे। जब कालिदास अम्बिका के घर आता है तब विलोम भी किसी न किसी बहाने वहाँ आ पहुँचता है। अपनी बातों से विलोम अम्बिका के घाव में नमक छिडकते का ही काम करता है। जैसे "कालिदास उज्जयिनी चला जाएगा। और मल्लिका, जिसका नाम उसके कारण सारे प्रान्तर मे अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ पडी रहेगी? क्यों अम्बिका? क्यों? तुम ने इतने वर्ष सारी पीडा क्या इसी दिन केलिए सही है? दूर से देखनेवाला भी जान सकता है, इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या क्या बीता है। समय ने तुम्हारे मन, शरीर और आत्म की इकाई को तोड़कर रख दिया है। तुमने तिल - तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। और आज, जब कि इसके लिए जीवन -भर के अभाव का प्रश्न सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहती?" आखिर अम्बिका को विलोम से कहना पडा "तुम यह सब कहकर मेरा दुख कम नहीं कर रहे, विलोम। मैं अनुरोध करती हूँ कि तुम इस समय मुझे अकेली रहने दो"।

विलोम बेशरम है। मल्लिका और अम्बिका के बार - बार मना करने पर भी वह आता है। असल में कालिदास की काव्य प्रतिभा और मल्लिका से प्रेम से उसे ईर्ष्या है। वह एक अफल कवि है। मल्लिका कालिदास की उपस्थिति में उसकी निन्दा करती है। उसे 'अयाचित अतिथि' कहती है, उसकी बातों को अनर्गल बताती है। मल्लिका उसे अपने यहाँ से जाने को भी कहती है, पर वह उस समय चला नहीं जाता। काश्मीर का राजा बनने के पश्चात् कालिदास अपने गाँव में पत्नी प्रियंगु मंजरी के साथ आता है फिर भी मल्लिका के घर नहीं आता। उस समय विलोम मल्लिका के यहाँ आकर उसके मानस में कालिदास के विरुद्ध विरोध पैदा करने का प्रयत्न करता है। उसकी बातों से मल्लिका का दुख बढता है उसकी माँ कालिदास से पहले से ज़्यादा घृण प्रकट करती है। विलोम चुगलखोर है।

व्यंग्य कसने में कोई भी विलोम की बराबरी नहीं करता है। तीसरे अंक में कालिदास और मल्लिका के हृदयों में चुमनेवाले व्यंग्य बाणों से वह दोनों को आहत करता है। मेरे निष्कर्ष की तार्किक संगति के सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रसंग उद्घृत किया जा सकता है।

विलोमः क्या बच्ची की आकृति सचमुच विलोम से मिलती है या .....?

मल्लिका हाथों में मुँह छिपाये आसन पर जा बैठती है। विलोम कालिदास के पास चला जाता है।

चलो, देखोगे?

कालिदासः यहाँ से चले जाओ विलोम।

विलोमः चला जाऊँ?

हँसता है।

इस घर से या ग्राम प्रान्तर से ही? सुना है शासन बहुत बली होता है। प्रभुता में बहुत सामर्थ्य होती है।

कालिदासः मैं कह रहा हूँ इस समय यहाँ से चले जाओ।

विलोमः क्योंकि तुम यहाँ लौट आये हो? ..... क्योंकि वर्षों से छोडी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है? ..... क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत है? ..... परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है। अधिकार दिये हैं ..... तुम चाहते हो इस समय मैं यहाँ से चला जाऊँ। मैं चला जाता हूँ इसलिए नहीं कि तुम आदेश देते हो। परन्तु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो, और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।

विलोम को हम खलनायक कहकर नहीं टाला नहीं जा सकता। वह कालिदास से भी अधिक विकसित पात्र है। उसके बिना 'आषाढ़ का एक दिन' भावुकतापूर्ण और शिथिल रह जाता। उसके तर्कों में ही नहीं, उसकी पूर वजीवन दृष्टि में एक ऐसी आवश्यकता और अनिवार्यता है कि उसकी गिनती हिन्दी नाटक के कुछ अविस्मरणीय पात्रों में होगी। कई प्रकार से विलोम मोहन राकेश की एक अनुपम नाटकीय चरित्र - सृष्टि है।

प्रियंगु मंजरी का चरित्र चित्रण

प्रियंगुमंजरी 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का प्रधान स्त्री पात्र है। वह सम्राट की दुहित और नाटक के नायक कवि कालिदास की पत्नी है। वह विदुषी है। दूसरों का दुख - दर्द देखकर पिघलनेवाला एक कोमल हृदय उसको प्राप्त है। सम्राट राजकवि कालिदास को काश्मीर का शासक नियुक्त करता है। काश्मीर जाते हुए प्रियंगुमंजरी के आग्रह पर अनुचरों के साथ प्रियंगुमंजरी और मातृगुप्त (कालिदास) ग्राम प्रान्तर में पहुँचते हैं। प्रियंगुमंजरी ने सुन रखा है कि ग्राम की विधवा अम्बिका की सुन्दर बेटी मल्लिका पति की संगिनी रही है। इसलिए वह मातुल को साथ लेकर मल्लिका के घर में पहुँचती है। नाटककार मोहन राकेश जी ने प्रियंगुंजरी को एक विदुषी दयालु तथा व्यवहार कुशल नारी के रूप में चित्रित किया है।

प्रियंगुमंजरी बडी विदुषी है। राजनीति का उसे बडा ज्ञान है। वह शासन की गंभीरता से अवगत है। उसे शिकायत है कि उसका पति कालिदास जब - तब अपने ग्राम प्रान्तर की चर्चा करते हुए आत्मविस्मृत हो जाता है और इसलिए राजनीतिक कार्यों से कई बार उसका मन उखडने लगता है। उसके मतानुसार ऐसे अवसरों पर मन को सन्तुलित रखने का प्रयास करना पडता है। प्रियंगुमंजरी भोली भोली मल्लिका को समझाती है - "राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक - एक क्षण का महत्व है। कभी एक क्षण केलिए भी चूक जाएँ, तो बहुत बडा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने केलिए व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पडता है" वह मानती है कि मल्लिका ग्राम - प्रान्तर मे रहने के कारण राजनीति की जानकारी नहीं रखती।

प्रियगुंमंजरी ग्राम प्रान्तर का कुछ वातावरण अपने साथ काश्मीर ले जाना चाहती है। इसलिए कि पति को अभाव का अनुभव न हो। अपने उद्यान में पालने केलिए वह कुछ हरिणशावकों को साथ ले जाना चाहती है। उद्यान के क्रीडा शैल पर तथा आसपास के प्रदेश मे लगवाने केलिए कुछ औषधियाँ ले जाना चाहती है। कश्मीर में शिक्षा देने केलिए ग्राम प्रान्तर कुछ अनाथ बच्चों को भी वहं ले जाना चाहती है।

प्रियंगुमंजरी दयालु है। उसे मल्लिका का जर्जर घर देखकर तरस आता है। वह जानती है कि मल्लिका और बीमार माँ अभावग्रस्त हैं। इसलिए वह कहती है कि अगर मल्लिका चाहे तो वह अपने स्थपतियों को उस घर का परिसंस्कार करने का आदेश देगी। मातुल के घर के स्थानपर वह नयें भवन के निर्माण का आदेश दे चुकी है। प्रियंगुमंजरी मल्लिका को अपनी संगिनी

बनाकर काश्मीर ले जाने केलिए भी तैयार होती है। अंबिका को साथ ले जाने केलिए भी तैयार होती है। घर का परिसंस्कार रानी इसलिए कराना चाहती है कि कालिदास के जीवन के आरभिक वर्षों का इस घर के साथ भी संबंध रहा है। यही नहीं किसी सुयोग्य राज्य अधिकारी से मल्लिका की शादी कराने केलिए वह राजकन्या तैयार हो जाती है। मल्लिका राजकन्या की उदारता की प्रशंसा करते हुए उसके सारे सुझावों को सविनय अस्वीकार करती है, तो राजकन्या कहती है कि मैं तुम्हारी सुविधा केलिए ही कह रही थी।

प्रियंगुमंजरी व्यवहार कुशल है। जब मातुल कहता है कि योग्य आसन के अभाव में मल्लिका के प्रकेष्ठ में बैठने में असुविधा होगी, तो प्रियंगुमंजरी मातुल से कहती है - "आप चिन्ता न करें। मुझे असुविधा नहीं होगी"। खूबसूरत मल्लिका को देखकर उसके हाथ अपने हाथों में लेकर वह कहती है - "सचमुच वैसी ही सुन्दर हो। जैसी मैं ने कल्पना की थी"। मल्लिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए वह कहती है - सचमुच बहुत सुन्दर हो। जानती हो अपरिचित होते हुए भी तुम मुझे अपरिचित नहींलग रही। मल्लिका कहती है कि वह राजकन्या प्रियंगुमंजरी का उचित आतिथ्य करने में असमर्थ है। तब वह मल्लिका से कहती है - आतिथ्य की बात मत सोचो। मैं तुम्हारे यहाँ अतिथि के रूप में नहीं आयी हूँ। बीमार अम्बिका जब खाँसते हुए राजकन्या से बोलना चाहती है तो वह जाते - जाते मुडकर कहती है - "मैं आप का कष्ट समझ रही हूँ। जो भी सहायता मुझ से बन पडेगी। अवश्य करूँगी"।

प्रियंगुमंजरी का उदान्त उज्वल व्यक्तित्व है। वह मृदु हृदय एवं पति परायणा है। वह प्रकृति की उपासिका है। प्रियंगुमंजरी का चरित्र असल में राजकीय शान से युक्त है।

मातुल का चरित्र चित्रण

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक की घटनाओं में तो विशेष योगदान नहीं है, हाँ वह कालिदास का मामा है। कालिदास को उज्जयिनी मिजवाने में उसका भी योगदान है। प्रस्तुत नाटक में उसका जिस रूप में चित्रांकन हुआ है, उससे इन तथ्यों पर प्रकाश पडता है कि वह स्वार्थ में मग्न एवं खुशामदी प्राणी है। किन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर वह अपने भानजे कालिदास को अपने यहाँ आश्रय तो देता है किन्तु उससे अपने पशु चरवाते हुए बडी खस्ता हालत में रखता है। मल्लिका के इस कथन से मातुल के अपने भागिनेय के प्रति इसी प्रकार के व्यवहार का परिचय मिलता है - "तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है। उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्यों कर की जा सकती थी?"

मातुल की दृष्टि में इस तथ्य का बडा मान है कि उसके वंश का किसी - न - किसी प्रकार राजवेश के साथ नाम जुड सके। वह इस तथ्य को बडे गौरवपूर्वक सुनाता है कि उसके प्रपितामह के एक दौहित्र के पुत्र ने गुप्त राजा की ओर से शकों के विरुद्ध युद्ध किया था। इसलिए जब कालिदास को निमंत्रण करके उज्जयिनी ले आने केलिए आचार्य वररुचि पधारे और कालिदास राजधानी जाने से यह कहकर इनकर कर देता है कि मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने केलिए नहीं हूँ तो मातुल आपे से बाहर हो जाता है। वह क्रुद्ध होकर कह उठता है - "मैं आज सारे ग्राम प्रदेश में यह घोषणा करने जा रहा हूँ कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई सम्बन्ध नहीं है"। मातुल पुनः कह उठता है - "मैं ने इसे पाला - पोसा बडा किया। क्या इस दिन केलिए? कि यह कुलद्रोही बने?"

अम्बिका मातुल को समझाती है कि सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्व को बढा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में भी निष्णात है। यह सुनकर मातुल कहता है कि यह लोकनीति है, तो मैं कहूँगा कि लोकनीति और मूर्खनीति दोनों का एक ही अर्थ है। मातुल के मतानुसार "जो व्यक्ति कुछ देता है, धन हो या सम्मा हो, वह अपना मन बदल भी सकता है और मन बदल गया तो बदल गया"। जिस ग्राम - पुरुष निक्षेप को मातुल आचार्य के पास रहने का आदेश देकर आया है, वह अम्बिका के यहाँ आता है, तो मातुल उसे डाँटता है। फिर मातुल भागिनेय को ढूँढने निकलता है। निक्षेप बाद में मल्लिका से कहता है - "मातुल का तीसरा नेत्र हर समय खुला रहता है"। मातुल तुनक मिज़ाज़ है। वह बातें घुमा फिराकर ही करता है। वह बातें एक स्थान से शुरू करता है जल्दी ही वह और कही पहुँचता है। उसकी जिह्वा केलिए कोई नियंत्रण नहीं है।

उज्जयिनी के राज - प्रसाद में राजकवि कालिदास के साथ मातुल भी सुख - वैभव से जीवन बिताता है। कालिदास काश्मीर का शासन संभालने जाते समय अपनी राजमहिषी प्रियंगुमंजरी के साथ अपने ग्राम प्रान्तर में पहुँचता है। मातुल को साथ लेकर ही प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलने आती है। राजकन्या के आने के पहले मल्लिका के प्रकोष्ठ की साज - सज्जा का निरीक्षण मातुल ही करता है। बाद में प्रसाद के चिकने शिलाखंडों पर पैर फिसलकर वह पैर तुडवा बैठता है। वैशाखी टेककर मल्लिका के यहाँ आकर मातुल राजप्रासाद के दोषों का वर्णन करते हुए कहता है - "मुझ से कोई पूछे, तो मैं कहूँगा कि राज प्रासाद में रहने से अधिक कष्टकर स्थिति संसार में हो ही नहीं सकती"। राजमहल के लोग मातुल को देखकर सिर झुकाते थे। इसका उल्लेख करते हुए मातुल मल्लिका से कहता है - "मातुल न देवी है न देवता, न पण्डित है न राजा है। तो फिर क्यों कोई सिर झुकाकर मातुल की वन्दना करे?"

आखिर अपने ग्राम - प्रान्तर में आकर मातुल सब से बडा सुख यह मानता है कि कोई झुककर उसकी वन्दना नहीं करता है। मातुल ही मल्लिका को यह समाचार देता है कि कालिदास काश्मीर छोडकर सन्यास लेकर काशी चला गया है। मल्लिका की भांति मातुल भी इस समाचार पर विश्वास नहीं करता। परन्तु उसे विश्वास होता भी है।

मातुल ने अपनी नासमझी का परिचय स्वयं ही इन शब्दों में दे दिया है - "एक राजनीतिक जीवन दूसरे कालिदास। मैं आज तक इन दोनों में से किसी एक की धुरी को नहीं पहचान सका। मैं तो समझता हूँ कि मैं जो कुछ समझ पाता हूँ सत्य सदा उसके विपरीत होता है और जब मैं उस विपरीत तक पहूँचने लगता हूँ तो सत्य उस विपरीत से विपरीत हो जाता है। अतः मैं कुछ समझ पाता हूँ वह सदा मिथ्या होता है। इस से अब तुम यह निषकर्ष निकाल लो कि क्या सत्य हो सकता है कि उसने सन्यास ले लिया है या नहीं लिया। मैं तो यह समझता हूँ कि उसने सन्यास नहीं लिया अतः सत्य यही होना चाहिए कि उसने सन्यास ले लिया है और वह काशी चला गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मातुल इस नाटक का साधारण पात्र है। नाटककार ने उससे यत्र - तत्र विदूषक का कार्य लेते हुए उसके कथनों में पाठक - प्रेक्षकों को हँसाने की सफल चेष्टा की है। राजकीय सेवा का उसकी दृष्टि में अत्यधिक महत्व है। राजसी - भोगों को भोगने की लालसा से वह काश्मीर जाता है किन्तु वहाँ के जीवन की कृत्रिमता को देखकर सोचने लगता है कि इससे तो ग्राम जीवन ही अच्छा है।

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक की नारी - भावना

"आषाढ़ का एक दिन" मोहन राकेश का सुप्रसिद्ध नाटक है। यह नाटक हिन्दी नाटक साहित्य के मील का पत्थर कहा जा सकता है। इस नाटक के आधिकारिक कथानक में तीन स्त्री पात्र है। वे हैं मल्लिका, अम्बिका और प्रियंगु - मंजरी। ये तीनों पात्र काल्पनिक हैं। इन तीनों के रुप में मोहन राकेश नारी के भिन्न - भिन्न रूप को अभिव्यक्त करते हैं।

मल्लिका सच्ची प्रेमिका का आदर्श रूप उरपस्थित करती है। वह कालिदास से भावात्मक प्रेम करती है। उसका प्रेम निष्काम है। वह प्रतिदान नहीं चाहती है मल्लिका वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती है जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है। वह जानती है कि उस प्रेम के कारण अपवाद होता है। माँ के दुख की बात भी जानती है। फिर भी उसको अपराध का अनुभव नहीं होता है। अम्बिका की राय में जिसे मल्लिका भावना कहती है वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। उससे जीवन की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती है। फिर भी मल्लिका अपने आदर्श प्रेम को छोडने को तैयार नहीं होती है।

जब कालिदास अपने गाँव में राजा बनकर काश्मीर में जाते समय वापस आते हैं तब भी मल्लिका से वे नहीं मिलते हैं। प्रेमाविह्वला, कोमलहृदया मल्लिका इस पर भी कालिदास का आक्षेप नहीं करती है। आखिर दीन, हीना दुखिया मल्लिका को पेट की ज्वाला बुझाने के वास्ते विलोम के आगे आत्मसमर्पण करना पडता है। आखिर कालिदास मातृगुप्त के चोला बदलकर मल्लिका से मिलने आते हैं। तब वे मल्लिका से अथ से शुरू करने की बात करते हैं। किन्तु बच्ची की रुलाई सुनकर वे हताश होकर चले जाते हैं। 'सहने केलिए तू बनी है सहतू दिखिया नारी' की उक्ति को मल्लिका सार्थक करती है। पुरुष की अहंवृत्ति की शिकार बनी नारी की दयनीय दशा का उद्घाटन करना ही 'आषाढ़ का एक दिन' की रचना के पीछे नाटककार का उद्देस्य है।

प्रियंगुमंजरी नारी के दूसरे रूप को प्रस्तुत करती है। वह राजदुहिता है। वह भी उदारमना है। फिर भी बुर्जुआ उदारता ही वह दिखाती है। क्योंकि वह मल्लिका के जीर्ण - शीर्ण घर का परिसंस्कार करना चाहती है। मातुल के घर का पुननिर्माण करना चाहती है। वह अपनी क्षमता और वैभव विलास को प्रकट करना चाहती है। उसकी राजशक्ति कालिदास को मोहित कर अपने अधीन कर डालती है।

नाटक में नारी का तीसरा रूप अम्बिका का है। वह अभागिनी विधवा है। एकमात्र पुत्रि मल्लिका के भविष्य की चिन्ता उसको खाये रहती है। मल्लिका प्रेम में प्रतिदान नहीं चाहती है। वैधव्य, पुत्री के भविष्य की चिंता, पुत्री के कालिदास - सम्बन्ध को लेकर अपवाद, गरीबी आदि से दबी हुई अम्बिका जीवन में भावना को कोई मूल्य न देती; उसके लिए जीवन की यथार्थता और वास्तविकता ही सब कुछ है। वह अपनी बेटी को चेतावनी देती है कि मल्लिका की भावना उसकी स्थूल आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक नहीं बनेगी। वह कालिदास को आत्मकेन्द्रत ठहराती है। अम्बिका कालिदास की घृणा करती है। वह कालिदास के संबंध में जो राय प्रकट करती है वह सोलहों आने सही है।

संक्षेप में 'आषाढ का एक दिन' में नारी के तीन रूपों को नाटककार ने अभिव्यक्त किया है।

Essay Questions

1. 'आषाढ़ का एक दिन' कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।
2. नाटक के तत्वों के आधार पर "आषाढ़ का एक दिन' की समीक्षा कीजिए।

3. रंगमंच और अभिनेयता की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' की समीक्षा कीजिए।
4. 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की रचना का उद्देश्य क्या है?
5. 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक का नाम सार्थक है। युक्तियुक्त उत्तर लिखिए।

युक्तियुक्त उत्तर लिखिए।

6. कालिदास का चरित्र चित्रण कीजिए।
7. मल्लिका का चरित्र चित्रण कीजिए।
8. अम्बिका का चरित्र चित्रण कीजिए।
9. विलोम का चरित्र चित्रण कीजिए।
10. प्रियंगुमंजरी का चरित्र चित्रण कीजिए।
11. मातुल का चरित्र चित्रण कीजिए।
12. 'आषाढ का एक दिन' की नारी भावना पर प्रकाश डालिए।

इन सभी प्रश्नों के उत्तर ऊपर दिये गये हैं।

आलोचनात्मक टिप्पणियां।

1. मोहन राकेश की नाट्य कला

मोहन राकेश ने अनेक नाटकों की रचना की है, जिनमें 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे अधूरे' और पैर तले की ज़मीन आदि प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों की विशेषता यह है कि पाठक उन्हें पढकर आनन्दित होती ही है परन्तु रंगमंच पर इनका प्रदर्शन देखकर नाटककार की रचना धर्मिता से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। किसी नाटक की यह विशेषता होती है कि वह रंगमंच के योग्य हो और उस पर खरा उतरे। इस दृष्टि से आषाढ़ का एक दिन श्रेष्ठतम सिद्ध हुआ।

मोहन राकेश जी के नाटक भारत के अनेक महत्वपूर्ण नगरों में तो मंचित हुए हैं, उनका मंचन अंग्रेज़ी माध्यम से विदेशों में भी हुआ है। और सभी स्थानों पर इनका रंगमंचीय प्रदर्शन काफी सराहा गया है।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों के मूल कथन, काल बोध, बिम्बों और ऐतिहासिकता के माध्यम से प्राचीन काल की प्रशंसा की बजाय वर्तमान समस्याओं को उठाने का, उन्हें उजागर करने का प्रयत्न किया - और इस बात की सभी विद्वानों, स्वयं रंगकर्मियों, निर्देशकों, अभिनेताओं और समीक्षकों ने प्रशंसा की है।

मोहन राकेश के लिखे नाटकों को पढकर और उनका मंचन देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कथात्मक और नाट्य विधा दोनों पर समन अधिकार रखते हैं - दोनों विधाओं पर उनकी गहरी पकड है। वे कहीं भी कथात्मकता के चक्कर में नाट्य विधा को पीछे नहीं छोडते। उन्होंने दोनों का समान निर्वाह किया है। उनके नाटकों की कहानियाँ संबंधों की यंत्रणाओं को अकेलेपन से झेलते हुए लोगों की कहानियाँ हैं। यह अकेलापन समाज से कहकर रहने का अकेलापन नहीं, वरन् समाज के बीच में होने का अकेलापन है।

2. 'आषाढ़ का एक दिन' का संक्षिप्त मूल्यांकन

'आषाढ़ का एक दिन' नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुतः हिन्दी के जिन एक - दो लेखकों ने नाटकों में यथार्थ परकता और काव्यात्मकता का श्रीगणेश किया था, 'आषाढ़ का एक दिन' उसकी महत्वपूर्ण परिणति है।

इस नाटक की प्रत्यक्ष विषय वस्तु कालिदास के जीवन से संबंधित है। परन्तु उसकी प्रसिद्धि को प्राप्त होने से पहले उसकी प्रेयसी मल्लिका का यह नाटक है जो उसकी अपनी नियति का ही चित्र है। वह समर्पित लडकी उससे प्रेम ही नहीं करती, वरन् उसे अपने जीवन में महान होता भी देखना चाहती है। इसके लिए उसे अपना सर्वस्व देकर प्रतीक्षा करनी पडती है। कालिदास मल्लिका केलिए सम्पूर्ण व्यक्तित्व और एकाकार स्वप्न की भांति है तो मल्लिका कालिदास की एकमात्र प्रेरणा। मोहन राकेश ने जिस एकाग्रता, तीव्रता और गहरायी के साथ इन भावनाओं को व्यक्त किया है वह हिन्दी नाटकों केलिए नयी चीज़ है। सुप्रसिद्ध नाट्य समालोचक नेमिचन्द्र जैन का कहना है कि -

"नाट्य रूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' सुगठित यथार्थवादी नाटक है। इसमें बाह्य ब्योरे की अपेक्षा परिस्थिति के काव्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। हिन्दी में यह पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आन्तरिक यथार्थके अन्तर्द्वन्द्व को संवेदनशीलता के साथ देखता है। घटनाएँ, पात्र और भाव इसमें इस प्रकार रखे गए हैं कि वे अपने आप में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

निस्सन्देह हिन्दी नाटक के परिप्रेक्ष्य में, भाव वस्तु और रूप बंध दोनों के स्तर पर 'आषाढ का एक दिन' ऐसा पर्याप्त, सघन, तीव्र और भावोदीप्त लेखन प्रस्तुत करता है जैसा हिन्दी नाटक में कम हुआ है। इसमें भाव और स्थिति की गहराई में जाने का प्रयास है और पूरा नाटक एक साथ कई स्तरों पर प्रभावकारी है। इसमें बिंबों के प्रभावी नाटकीय प्रयोग के साथ - साथ शब्दों की अपूर्व मितव्ययिता भी है। भाषा में ऐसा नाटकीय काव्य है जो हिन्दी नाटकीय गद्य में अभूतपूर्व है।

शैली की दृष्टि से आधुनिक चाक्षुष बिम्बों के साथ भाषा के शब्दों में जो व्यंजक बिम्ब हैं, वे ही सोना हैं। नाटक में कुछ ऐसे बिम्ब हैं जो हमें काफी दिनों तक बाँधे रखेंगे - इनमें आरंभ में बिजली की चमक के साथ अंबिका का चिंतित रूप में प्रवेश, कालिदास के पैरों की दूर होती आहट, मल्लिका का काले वस्त्र पहने हुए अकेलापन और एक बार फिर अलग होते दो प्रेमी, कालिदास की धीमी चहलकदमी, मल्लिका का आँसुओं से डूबा हुआ चेहरा और तूफान के दृश्य अत्यन्त प्रभावकारी हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' का सन्देश

'आषाढ़ का एक दिन मोहन' राकेश का सब से लोक प्रिय नाटक है। वह ऐतिहासिक कथ्य पर लिखित आधुनिक नाटक है। इसमें संस्कृत कवि कालिदास के जीवन से सम्बंद्ध कुछ मार्मिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है। सुप्रसिद्ध समीक्षक डा. गोविन्द चातक के शब्दों में - "कालिदास की सब से बडी त्रासदी यही है कि वह अनजाने ही एक दोहरा जीवन जीता है और अनचीन्ही दिशाओं में बहकता है। दरिद्रता उसे राज्याश्रय की ओर ले जाती है, असुरक्षा का भाव उज्जयिनी से काश्मीर तक भटकाता है और एक दिन आत्मीयता की खोज में मल्लिका के द्वार पर ला पटकता है"।

पुरुष की अहंवादिता की शिकार बनी भावनामयी नारी की दयनीय दशा के प्रति करुणोद्रेक करना हीं हमारे अभिमत में आलोच्य नाटक का मूल सन्देश है। अम्बिका द्वारा मल्लिका के इस भावना के वरण का विरोध करने का मूल कारण यह है कि अनुभवी अम्बिका इस तथ्य से परिचित है कि कालिदास एक आत्म केन्द्रित और अहंवादी जीव है - वह मल्लिका से वास्तविक प्रेम नहीं करता, वरन् उसने उसको अपनी अहंतुष्टि का माध्यम बना रखा है, उसके माध्यम से वह स्वयं को ही प्रेम करने का आत्मतोष प्राप्त करता है, वह उसके प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं समझता "मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। कल जब तुम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में एक समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्हारी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?" किन्तु मल्लिका पर अपनी माता की सीख का कोई प्रभाव नहीं पडता और वह इस विकट प्रश्न को कि कालिदास उज्जयिनी जाने से पूर्व उससे विवाह कर लें, यह कहकर हवा में उडा देती हैं - "माँ आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है। आगे भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्घोष नहीं करना चाहती"।

"लहरों के राजहंस" की भूमिका में श्री मोहन राकेश ने कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के विषय में जो उद्गार व्यक्त किये हैं, उनसे स्पष्ट है कि सर्जक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व को उद्घाटित करना भी इस नाटक का एक सन्देश रहा है। डा. कृष्णदेव झारी ने लिखा है - "सर्जक कलाकार या कवि के अन्तर्द्वन्द्व का प्रकाशन कालिदास के चरित्र द्वारा मोहन राकेश ने अच्छा किया है। कालिदास को राजकवि का उच्चासन पाने केलिए सम्राट का बुलावा आता है। उसके मन में द्वन्द्व मच जाता है। एक ओर ऐश्वर्य विलास, धन - सम्पत्ति, राजकीय जीवन का ठाट - बाट है, राज्याश्रय है, सुख - मौज है, दूसरी ओर अपनी स्वतंत्रता खो बैठने, अपने प्राकृतिक वातावरण के छूट जाने का भय है, आत्मसम्मान को ठेस पहुँचने की आशंका है, किसी सम्राट या राजा के धन पर बिक जाने का डर है। अतः इस नाटक का और एक सन्देश इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि किसी भी प्रकार के राजकीय या सरकारी आश्रय में रहते हुए साहित्यकारों की सर्जना - शक्ति का सम्यक् विकास नहीं हो पाता।

शब्दार्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और संस्कृत श्लोक का सारांश

अंक एक

आषाढ़, = ജൂൺ പതിനഞ്ചു മുതൽ ജൂലായി പതിനഞ്ചു വരെയുള്ള സമയം.
हल्का - हल्का = മന്ദമായ. प्रकोष्ठ = मुट्ठं. courtyard
चिकनी = മിനുസമുള്ള पोतना = തേയ്ക്കുക.
गेरु = കാവിമണ്ണ്. red ochre;
स्वस्तिक चिन्हन = സ്വസ്തിക ചിഹ്നം; ഹിന്ദുക്കൾ ഇത് മംഗളചിഹ്നമായി കരുതുന്നു.
डयोढी = പടിവാതിൽ, ഗെയിറ്റ് ताक = ഷെൽഫ്.
दीया = വിളക്ക്. तल्प = കിടക്ക.
हल्दी = മഞ്ഞൾ. झरोखा = छोटी खिडकी ചെറിയ ജനാല.

कौंधना = പ്രകാശിക്കുക. चुन्हा = അടുപ്പ്.

काँस = ഓട്. बरतन = പാത്രം.

सहेजना = ക്രമീകരിക്കുക, കൈകാര്യം ചെയ്യുക. to put in order, to handle.

कुंभ = മൺകുടം. चूलहा = അടുപ്പ്.

कालिख = കറുപ്പ്, കരി, കളങ്കം. blackness, soot, stain.

कालिख लगना = കളങ്കപ്പെടുക. कुश = ദർഭ.

ढकना = മൂടുക. बाघछाल = നരിത്തോല്.

छाज = മുറം. फटकना = ചേറുക.

गीला = നനഞ്ഞ. ठिठकना = സ്തംഭിച്ചു നിൽക്കുക.

धारासार = ഇടമുറിയാതെ. उपत्यका = താഴ്വര. Valley

घुटना = മുട്ട്. कंधा = ചുമൽ.

बकुल = കൊറ്റി. सिहरना = വിറയ്ക്കുക.

चूमना = ചുംബിക്കുക. टेक लगाकर = താങ്ങി നിന്നു കൊണ്ട്.

धुआँरा = പുക നിറഞ്ഞ. पगडंडी = ഒറ്റയടിപ്പാത.

अंशुक = പട്ടുവസ്ത്രം. झलक = glimpse

आर्द्र = Wet നനഞ്ഞ. निचुडना = പിഴിഞ്ഞ് രസമെടുക്കപ്പെടുക.

മല്ലിക പതുക്കെ പാടുന്നത് കാളിദാസൻ രചിച്ച 'ഋതുസംഹാര'ത്തിലെ ദ്വിതീയ സർഗ്ഗം 'വർഷാഋതു'വിൽ നിന്നുള്ള വരികളാണ്.

कुवलयदलनीलैरुन्नतैस्तोय नम्रै

मृदु पवन विधूतैर्भन्दमन्द चलदि अपहृतमिव

चेतस्तोयदै सेन्द्रचापै ..... पथिकजनव धूनां

तद्धियोगाकुलानाम।

നീലത്താമരക്കു സമാനമായ നിറത്തോടുകൂടിയതും സുന്ദരവും ജലാർദ്രവുമായ മേഘങ്ങൾ മന്ദമാരുതന്റെ ആഘാതത്താൽ പതുക്കെ പതുക്കെ സഞ്ചരിക്കുന്നു; അവ ഗർജ്ജിക്കുന്നു. മേഘങ്ങളിൽ മഴവില്ല് മിന്നിത്തിളങ്ങുന്നു. വർഷ ഋതുകാമഭാവത്തെ വർദ്ധിപ്പിക്കുന്നു; വിരഹ വേദനയെ വർദ്ധിപ്പിക്കുന്നു എന്നു വിശ്വാസം.

डाँटना = ശകാരിക്കുക. दुकेला = ഇരട്ടയായിട്ടുള്ള.

भर्त्सना = ശകാരം. बाधा = രുകാവട തടസ്സം.

गला = കഴുത്ത്. दूध औटाना = പാൽ കാച്ചിക്കുറുക്കുക.

सीजना = നനയുക. भीगना। आँचल = വസ്ത്രാഞ്ചലം.

सौगन्ध = ശപഥം. टाप = കുതിരയുടെ കുളമ്പടി ശബ്ദം.

सम्भवत = ഒരു പക്ഷെ.

अनिष्ट = അപ്രിയമായ.

सिहरना = വിറയ്ക്കുക.

होंठ फड़फड़ाना = ചുണ്ടു വിറയ്ക്കുക. निरर्थक = അർത്ഥമില്ലാത്ത.

प्रलाप = അർത്ഥമില്ലാത്ത സംസാരം.

आलोचना = വിമർശനം. Criticism सिर झटकना = തല കുടയുക.

अपवाद = ദുഷ്കീർത്തി. Blunder अनश्वर = നശിക്കാത്ത.

छत = മച്ച്, തട്ട്. roof वरण करना = സ്വീകരിക്കുക.

वितृष्णा = വിരാഗ വിരക്തി छलना = ചതി.

हरिणशावक = മാൻകുട്ടി. आस्तरण = കിടക്ക.

आहत = ഘായല മുറിവേറ്റ. वक्ष = മാർവ്വിടം, छाती

भाजन = പാത്രം. उडेलना = ഒഴിക്കുക.

रुष्ट = ദേഷ്യപ്പെട്ട. रुई = പഞ്ഞി.

कुलांच भरना = കുതിച്ചു ചാടുക. अनुमान = ഊഹം, guess.

हठ = ശാഠ്യം. साहस = ധൈര്യം.

अनुसरण करना = പിന്നാലെ നടക്കുക.

ललाट = നെറ്റി, നെറ്റിത്തടം, forehead, fate, destiny

सामुद्रिक = the science of palmistry

लांछन = കളങ്കം, ദോഷം.

आखेट = വേട്ട, നായാട്ട്, hunting

पार्वत्य = പർവ്വതത്തെ സംബന്ധിച്ച.

आस्तरण = വിരിപ്പ്, കിടക്ക. मूठ = handle, കൈപ്പിടി.

रुचि पर निर्भर करता है = depends on taste

संवेदना = sympathy, സഹതാപം. निःशस्त्र = ആയുധമില്ലാത്ത.

अशिष्टता = സംസ്കാര ശൂന്യത, കുലീനതയില്ലായ്മ.

चेतना = Consciousness, ചൈതന്യം, ബോധം.

निचला होंठ = കീഴ്ചുണ്ടു. नहलाना = കുളിപ്പിക്കുക.

प्रताडना = below, അടി. निराधार = baseless, ആധാരമില്ലാത്ത.

पूर्वग्रह = മുൻവിധി. अवस्था = दशा, स्थिति

आत्मसीमित = Self - centred. अनुदार = Unkind

विडम्बना = അസാംഗത്യം; അനൗചിത്യം.

साधनहीन = Without any means.

अभावग्रस्त = ഇല്ലായ്മ കൊണ്ടു നിറഞ്ഞ.

उपादात = എതെങ്കിലും വസ്തുവിനു ഹേതുഭൂതമായ സാമഗ്രി.

घोषणा = Proclamation. വിളംബരം.

अस्त - व्यस्त = കുഴഞ്ഞു മറിഞ്ഞ; അടുക്കും ചിട്ടയുമില്ലാത്ത, Confused, topsy - turvoy.

कुलद्रोही = വംശത്തിന്റെ ശത്രു.

रथवाह = തേരാളി.

प्रपितामह = അച്ഛന്റെ മുത്തച്ഛൻ.

दोहित्र = മകളുടെ മകൻ

वंशावतंस = വംശാലങ്കാരം;

अवतंस = ശിരോലങ്കാരം; കിരീടം; ornament for the head, a crown

अंशुक = പട്ടുവസ്ത്രം; പുതപ്പ്, a fine silk, blanket.

मसलना = തിരുമ്മുക.

निषात = Very learned, നല്ല അറിവുള്ള.

भागिनेय = മരുമകൻ

लोकनीति = ലോക മര്യാദ

सौभाग्यवश = ഭാഗ്യകാരണം.

अंगारा = തീക്കട്ട.

अनुनय = അപേക്ഷ, request.

अभ्यागत = സന്ദർശകൻ; അതിഥി; a visitor, a guest.

धुरी = axle, അച്ചുതണ്ട്.

धुरीहीन = അച്ചുതണ്ടില്ലാത്ത; തന്നിഷ്ടത്തിൽ പോകുന്ന.

चोटी = ബാണ, തലമുടി.

मातुल का तीसरा नेत्र हर समय खुला रहता है മാതുലന്റെ മൂന്നാം കണ്ണ് എല്ലായ്പ്പോഴും ച്ചസ്സുറന്നു കൊണ്ടിരിക്കുന്നു. (എപ്പോഴും ക്രുദ്ധനാണ് മാതുൽ എന്നർത്ഥം)

गलाना = to melt, ഉരുക്കുക.

वृत्ति = काम -धन्धा ഉപജീവനം, തൊഴിൽ

सर्वथा = എല്ലാ തരത്തിലും. सर्वदा = സദാ, എല്ലായ്പ്പോഴും.

निमंत्रण = invitation, ക്ഷണം. निमंत्रित = invited; ക്ഷണിക്കപ്പെട്ട.

ब्राह्म मुहूर्त = പ്രഭാതകാലം, യാത്രക്ക് ശുഭകരമായ സമയമാണിത്.

वैभव = സമ്പത്ത്, ഐശ്വര്യം. व्यस्त = കാര്യരത, മഗ്ന।

रंगशाला = നാട്യശാല. मदिरालय = കള്ളുഷാപ്പ്.

भेंट = മിലന കണ്ടുമുട്ടൽ.

अप्रत्याशित = അപ്രതീക്ഷിതമായ, Un expected.

व्यवधान = വിഘ്നം, തടസ്സം सार्थक = അർത്ഥവത്തായ.

पग = step. बाध्य = കടപ്പെട്ടവൻ, indebted.

संगत = उचित ഉചിതമായ.

अनुमान = നിഗമനം, inference; deduction (in logic)

अनचाहा = ഇഷ്ടപ്പെടാത്ത.

शुभचिन्तक = അഭ്യുദയകാംക്ഷി, Wellwisher.

तिरस्कारपूर्ण = അവജ്ഞാപൂർണ്ണമായ.

अनचाहा अतिथि सम्भवतः फिर भी आ पहुँचे = ഇഷ്ടപ്പെടാത്ത അതിഥി ഒരു പക്ഷെ വീണ്ടും വരാം.

आँखें झपकना = കണ്ണുകൾ അടഞ്ഞുപോവുക.

सिक्ता = ശൂന്യത

छल = ധോഖാ വഞ്ചന. गीला = भीगा നനഞ്ഞ; Wet.

कुहनी = കൈമുട്ട്. प्रतिभा = प्रतिभ, brilliance.

कसौटी = ഉരക്കല്ല്. चुभन = കറിക്കൽ, മാനസികമോ ശാരീരികമോ ആയ നൊമ്പരം, Pricking sensation.

पशु = जानवर മൃഗം. उर्वर = ഫലഭൂയിഷ്ഠമായ, Fertile.

पलक = കൺപോള, eyelid. पथ = വഴി, रास्ता

प्रशस्त हो = ശുഭകരമാവട്ടെ. झटकना = ശക്തിയായ ഉലയ്ക്കൽ.

सिसकना = തേങ്ങുക. अस्वस्थ = Unwell.

सटा लेना = കൂട്ടിച്ചേർക്കുക. लिपाई = തേപ്പ്, Plastering.

आसन = ഇരിപ്പിടം, Seat. सीना = തുന്നുക.

फटा = കീറിയ.

टाँकी लगाना = തുണിക്കഷ്ണം തുന്നിപ്പിടിപ്പിക്കുക.

मोढा = സ്റ്റൂൾ.

खरल = മരുന്നരക്കുന്നതിനുള്ള കല്ല്.

करवट बदलना = ഒരു വശം ചെരിഞ്ഞു കിടക്കുക.

कटोश = cup. शहद = തേൻ.

व्यवसायी = व्यापारी, businessman.

राजदुहिता = राजा की पुत्री प्रसंग = संदर्भ; context.

नमी = നനവു, Wetness. स्थानीय शब्द = local world.

आँचलिक शब्द = പ്രാദേശിക ശബ്ദങ്ങൾ.

नियोजन = കല്പന. चूल्हा = अടുപ്പ്.

पृष्ठभूमि = പശ്ചാത്തലം, background.

वनस्पति = സസ്യജാലം.

इधर संगिनी 'कुमारसंभव' के सर्ग के दूसरे श्लोक की तीसरी पंक्ति का उल्लेख करती है। वह श्लोक इस प्रकार है -

"यं सर्वशैलाः परिकल्प वत्सं
मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे
मास्वति रत्नानि मेहोषधीश्च
पृथु पदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्!"

सारांशः- "दूध दुहने में प्रवीण महामेरु से, हिमवान को बछडा बनाकर, सारे पहाडों ने पृथु के निर्देशानुसार भूमि रूपी गाय से प्रकाश दैनेवाले रत्नों और श्रेष्ठ औषधियों को दुह लिया"।

मुँह विचकाना = മുഖം ചുളിക്കുക. घण्टा = bell.

वातावरण = അന്തരീക്ഷം, atmosphere.

असमंजस = എന്തുചെയ്യണം എന്നു തീരുമാനിക്കാൻ വയ്യാത്ത അവസ്ഥ, ധർമ്മസങ്കടം, dilemma.

किवाड खटखटाना = വാതിലിൽ മുട്ടുക.

अभिवादन = നമസ്കാരം, പ്രണാമം, salute, salutation.

भौंचक्का = പരിഭ്രമിച്ച. संभालना = നിയന്ത്രിക്കുക.

उपवेश - गृह = sitting room.

वस्तु - विन्यास = സാധനങ്ങൾ ശരിയായി ഒരുക്കിവെക്കൽ.

वर्तमान स्थिति = ഇപ്പോഴത്തെ അവസ്ഥ.

विवादास्पद = തർക്കത്തിലിരിക്കുന്ന, controversial.

सन्दिग्ध = നിശ്ചയമില്ലാത്ത. के अतिरिक्त = കൂടാതെ.

हाथ लगाना = തൊടുക, to initiate some work, to touch.

भोली = നിഷ്കളങ്കമായ. चाटुकारिता = മുഖസ്തുതി.

असुविधा = അസൗകര്യം, inconvenience.

कुलीनता = കുലീനത്വം, nobility of descent.

थकाना = ക്ഷീണിപ്പിക്കുക.

खाई = കിടങ്ങ്, കുഴി, trench, ditch.

आत्मश्लाघा = ആത്മപ്രശംസ, self praise.

कोस = രണ്ടു മൈൽ ദൂരം. भटकना = ചുറ്റിത്തിരിയുക.

बिखरना = ചിന്നിച്ചിതറുക.

क्रीडा शैल = ഉദ്യാനത്തിൽ നിർമ്മിക്കപ്പെടുന്ന കൃത്രിമ പർവ്വതം.

जर्जर = ജീർണ്ണിച്ച. परिसंस्कार = renovation.

स्थपति = भवन निर्माण कला में निपुण

स्थापत्य = വാസ്തുവിദ്യ, തച്ചുശാസ്ത്രം.

श्लक्ष्ण = മിനുസമുള്ള, മൃദുവായ.

निरीक्षण = മേൽനോട്ടം, പരിശോധന.

औपचारिकता = നാട്ടുനടപ്പ്. पग = step.

सहेजना = നിയന്ത്രിക്കുക, to control.

सांस फूल जाना = ശ്വാസം മുട്ടുക, കിതയ്ക്കുക.

अटकना = കുടുങ്ങുക, ഉടക്കുക, to cease, to halt.

घुटना = ശ്വാസം മുട്ടുക.

काल - गुफा = അന്തകന്റെ ഗുഹ; മരണഗുഹ.

खाँसना = ചുമയ്ക്കുക. खाँसी = ചുമ.

ठगी - सी = വഞ്ചിക്കപ്പെട്ടവളെപ്പോലെ. उत्तरदायी = responsible.

भावना की गहराई = ഭാവനയുടെ ആഴം. गहराई = ആഴം, depth.

धूलि = പൊടിമണ്ണ്, dust. पगधूलि = പാദധൂളി.

अनुकृति = model. मनोरंजक = interesting.

वैचित्र्य = അത്ഭുതം; വ്യത्യാസം, വിചിത്രത

विक्षुब्ध = ക്ഷോഭിച്ച.

अखरना = बुरा लगना, മോശമായി തോന്നുക.

अयाचित स्थिति = unwanted situation.

माथे पर त्योरियाँ चढना = नाराज़ होना, क्रुद्ध होना हताश = निराशा

दुलारना = ഓമനിക്കുക, ലാളിക്കുക.

बाघ - छाल = നരിത്തോൽ, tiger skin.

बैसाखी = മുടന്തന്മാർ കക്ഷത്തിൽ ചേർത്തു പിടിച്ചു ഊന്നി നടക്കുന്ന വടി.

नकारात्मक = negative, നിഷേധാത്മകമായ. दुर्गति = ദുരവസ്ഥ.

निचोना = ഞെക്കിപ്പിഴിയുക. पालना = കട്ടിൽ, cot.

बेधर = വീടില്ലാതെ. प्रासाद = മാളിക, കൊട്ടാരം.

प्रतिहारी = ദ്വാരപാലകൻ. घसीटना = വലിയ്ക്കുക.

धारासार = ധാരമുറിയാതെ. अप्रतिभ = പ്രതിഭാശൂന്യനായ.

मान = ആദരവ്, respect.

गुमसुम = നിശ്ശബ്ദവും നിശ്ചേഷ്ടവുമായ.

शुभ कामनाएँ = good wishes, ശുഭാശംസകൾ.

अभियोग = ആരോപണം. सार्थक = അർത്ഥവത്തായ.

उपलब्धि = നേട്ടം. उद्विग्न = പരിഭ്രമിച്ച.

उपारजित करना = ആർജ്ജിക്കുക, ലഭിക്കുക.

कोष्ठ = ഗൃഹത്തിന്റെ ഉൾഭാഗം. वारांगना = വേശ്യ.

रिक्त = കാലിയായ, empty.

अभाव की पीडा = ഇല്ലായ്മ കൊണ്ടുള്ള വേദന.

सत्ता = അധികാരം. कौंधना = തിളങ്ങുക, ശോഭിക്കുക.

क्षत - विक्षत = മുറിവുകളേറ്റ, wounded. जड = ജീവനില്ലാത്ത.

थका = ക്ഷീണിതനായ. थकान = ക്ഷീണം, tiredness.

महात्वाकांक्षा = ambition. कंसना = മുറുക്കുക.

मुक्त = open; free. कलेवर = शरीर ശരീരം.

अंकित है = എഴുതിയിരിക്കുന്നു. आगंतुक= आनेवाला

आंगतुक = आनेवाला झल्लाना= ദേഷ്യപ്പെടുക.

भर्त्सना = ശകാരം, നിന്ദ

निराधार = അടിസ്ഥാനമില്ലാത്ത, baseless.

कुनमुनाना = to become restless. कोसना = ശപിക്കുക.

कीचड = ചളി.

कीचड से लथ - पथ = ചളി പുരണ്ട. उपक्रम = ആരംഭം, തുടക്കം.

नैवेध = നിവേദ്യം. नमी = നനവ്, wet.

चेतना = ഉണർവ്വ്, ബോധം. कंपने = shiver, വിറയൽ.

प्रसंगों की व्याख्या कीजिए।

1. मैं जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत शिखरों को सहलाती मेघ - मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन - मन की अपेक्षा आकाश में बनते मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है। (Page 8)

मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। श्रेष्ठ कथाकार के अतिरिक्त वे एक दक्षहस्त नाटककार भी थे। 'आषाढ़ का एक दिन' उनका सुप्रसिद्ध नाटक है।

मल्लिका 'पल - पल परिवर्तित' प्रकृति वेश को देखकर आनन्दातिरेक से पुलकित होती है। आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी धारासार वर्षा। वह अपने प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा में भीगने के पश्चात् घर वापस आती है। इस सन्दर्भ में माँ अम्बिका से अपने नये अनुभव के बारे में मल्लिका ने जो कुछ बताया वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

नील कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! आज के वे क्षण वह कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा साक्षात्कार उसने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मल्लिका उसे छू सकती थी। तभी उसको अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता का रूप देता है। वह जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत की चोटी को सहलाती मेघ मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन - मन की अपेक्षा आकाश में बनते - मिटते चित्रों का इतना मोह हो रहता है।

इस सन्दर्भ में प्रकृति सौन्दर्य की छाया में विचरण करने की मल्लिका की मधुर लालसा की हमें झलक मिलती है। सौन्दर्योपासिका होने के नाते आज प्रकृति की सुन्दरता देखकर मल्लिका का मृदु हृदय मयूर नृत्य करने लगता है।

2. क्या कहते हैं? क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है?(Page 12)

मोहन राकेश लब्ध प्रतिष्ठ नाटककार एवं कथाकार थे। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' उनके श्रेष्ठ नाटक हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी नाटक साहित्य में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

[illegible] अम्बिका की पुत्री मल्लिका ने चढती जवानी में कालिदास से प्रेम किया। दोनों आषाढ़ की प्रथम वर्षा में बड़ी देर तक भीगते रहे और प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को निहारने रहे।

बारिश में भीगकर घर वापस आने पर अम्बिका ने उससे बाते नहीं की। वह मुँह फुलाकर काम में मग्न होने लगती है। बार - बार मल्लिका के पूछने पर अम्बिका ने कहा कि अग्निन मित्र सन्देश लाया है कि वे लोग इस संबंध केलिए प्रस्तुत नहीं है क्योंकि .....। मल्लिका ने बात काटकर माँ से जो कुछ कहा वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

क्या कहते हैं? उन्हें कुछ भी कहने का क्या अधिकार है? मल्लिका का जीवन उसकी संपत्ति है। अतः वह अपनी इच्छानुसार आचरण कर सकती है। अगर वह अपनी ज़िन्दगी को नष्ट करना चाहती है तो किसी को उसकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है।

यहाँ नारी स्वातन्त्र्य केलिए वाग्धारा बहानेवाली आधुनिक नारी की आवाज़ ही हम सुनते हैं। मल्लिका के कहने का उद्देश्य है कि अग्निमित्र से मेरा कुछ भी लेना - देना नहीं है। मैं आजीवन अविवाहित रहना चाहती हूँ।

3. मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बडा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है .....। (Page 13)

मोहन राकेश के नाटक कथ्य और शिल्प के सन्दर्भ में खरे उतरते हैं। नाट्य रूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' सुगठित यथार्थवादी नाटक है। उन्होंने अपने कथा और नाट्य साहित्य में व्यक्ति की मानसिक और सामाजिक यन्त्रणाओं को उजागर करने का यत्न किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका प्रेम विह्वला एवं मृदु ह्रदया है। वह कालिदास से प्रेम करती है। गाँव के लोग उसके प्रेम के संबंध में अपवाद करने लगते हैं। अम्बिका ने मल्लिका से कहा कि मैं जानती हूँ तुम पर आज अपना अधिकार भी नहीं है। किन्तु .... इतना बडा अपवाद मुझ से नहीं सहा जाता है। प्रस्तुत प्रसंग में मल्लिका ने माँ की बातों पर अपनी प्रति क्रिया प्रकट की है।

मैं जानती हूँ माँ, अपबाद होता है। तुम्हारे दुख की बात भी जानता हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बडा है। तात्पर्य यह कि कालिदास के प्रति मेरे प्रेम अटूट एवं चिरन्तन है। उस संबंध को कोई भी तोड नहीं सकेगा। मैं असल में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है .....। कहने का तात्पर्य यह कि मल्लिका कालिदास के मृदु ह्रदय के सुन्दर भावों से प्रेम करती है। उसका प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। उसके प्रेम के मूल में अनुपम त्याग है।

4. तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल, छलना और आत्म - प्रवंचना है। ..... भावना में भावना का वरण किया है। ..... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?... भावना में भावना का वरण। (Page 13)

मोहन राकेश सुप्रसिद्ध नाटककार एवं कथाकार थे। 'आषाढ़ का एक दिन' में उनकी दृष्टि कहीं ज्यादा आधुनिक और सूक्ष्म है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की शुरुआत का सूचक है।

'आषाढ़ का एक दिन' की विधवा और ममतामयी माँ अम्बिका 'आँचल में दूध औ' आँखों में पानी भरनेवाली माताओं की प्रतिमूर्ति है।

वर्षा में प्रेमी कालिदास के साथ भीग कर आनेवाली पुत्री को देखकर अम्बिका ठंडी साँस खींचती है साथ ही अपना रोष भी प्रकट करती है क्योंकि मल्लिका और कालिदास के बारे में

अपवाद सारे गाँव में फैल गया है। अम्बिका ने माँ से कहा कि मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होताहै। तुम्हारे दुःख की बात भी जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बडा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है। माँ, तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करती? प्रस्तुत सन्दर्भ में अम्बिका ने मल्लिका के हृदय में चुभनेवाला व्यंग्यबाण चलाया है।

तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म - प्रवंचना है। ..... भावना में भावना का वरण किया है। .... मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है?

अम्बिका के आहत हृदय का चीत्कार है यह। अम्बिका का रोष, दुख, विवशता, वेदना आदि कई भावों की व्यंजना यहाँ हुई है। ज़िन्दगी में काफी अनुभव होने के नाते प्रेम के नाम पर तन्वियों की आँखों में धूल झोकने वाले स्वार्थियों को उसने देखा है उसमें मल्लिका का आशिक कालिदास भी एक है। मल्लिका काकथन अक्षरशः सत्य सबित होता है।

5. हम पीडा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है तो ऊँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। (Page 15)

मोहन राकेश ने हिन्दी नाटक साहित्य के कथ्य और शिल्प में वंछित परिवर्तन किया था। 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी नाटक साहित्य में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

'आषाढ का एक दिन' में कालिदास को मानव सुलभ कमज़ोरियों से युक्त एक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। प्रथम अंक में कालिदास को एक घायल हरिणशावक को गोद में लेकर अम्बिका के घर में आते हुए हम देखते हैं। इस सन्दर्भ में मल्लिका के घर पहुँचते ही कालिदास ने घायल मृगशावक से जो बातें की उसका उल्लेख है।

हम जिएँगे हरिणशावक! जिएँगे न? एक बाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर केमल है, तो क्या हुआ? हम पीडा सह सकते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएँगे।

पहाडी प्रदेश के जानवरों के प्रति कालिदास की हमदर्दी और सेवा परायणता ही हम यहाँ देखते हैं। एक बाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है में कितनी अधिक व्यंजना है। हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की विजय पर प्रस्तुत प्रसंग प्रकाश डालता है। अवश्य भक्षक से भी रक्षक का महत्व अधिक है।

6. तो राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे! ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो! (Page 19)

मोहन राकेश हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककार एवं कथाकार थे। 'आषाढ़ का एक दिन' उनका बहुचर्चित नाटक है। प्रथम अंक में हम कालिदास को एक घायल हरिणशावक को अपनी गोद में लेकर अम्बिका के घर लाते हुए देखते हैं। रक्त की बूँदें देखकर उस वर्ष में राजपुरुष दन्तुल वहाँ आ पहुँचा। उसने कालिदास से हरिणशावक को माँगा क्योंकि उसके तीर से आहत हुआ था। लेकिन कालिदास ने उसे देने से साफ इनकर कर दिया। कालिदास ने दन्तुल से कहा कि इस प्रदेश में हरिणों का आखेट नहीं होता राजपुरुष! तुम बाहर से आये हो, इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि हम इसकेलिए तुम्हें अपराधी न मानें। प्रस्तुत सन्दर्भ में दन्तुल ने कालिदास की नादानी पर

CUP/8647/11/500/SDE—6

अपनी नाराज़गी व्यक्त की है।

तो राजपुरुष के अपराध का निर्णय ग्रामवासी करेंगे! ग्रामीण युवक, अपराध और न्याय का शब्दार्थ भी जानते हो! दन्तुल की बातों में राजपुरुष होने का धमंड और कालिदास की नादानी पर क्रोध एवं परिहास भी है। मानसिक संघर्ष को बढाने में भी प्रस्तुत प्रसंग सहायक सिद्ध हुआ है। दन्तुल के इस दुर्व्यवाहार के कारण कालिदास के मन में राजसत्ता के प्रति विराग उत्पन्न होने में सहायक सिद्ध हुआ है।

7. ठहरो, राजपुरुष! हरिणशावक केलिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनकेलिए संवेदना का, कालिदास निःशास्त्र होते हुए भी तुम्हारे शास्त्र की चिन्ता नही करेंगे। (Page 20)

स्वर्गीय मोहन राकेश का 'आषाढ का एक दिन' सुगठित यथार्थवादी नाटक है, जिसमें बाह्य ब्यौरे की बातों से अधिक परिस्थिति के काव्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है।

राजपुरुष दन्तुल घायल हरिणशावक के रक्त की बूँदें ज़मीन पर पडते देखकर बारिश में अम्बिका के घर तक आ पहुँचा। उसने देखा कि कालिदास की गोद में घायल हरिणशावक है। दन्तुल ने उसे माँगा। किन्तु कालिदास ने इसे देने से यह कहकर इनकार कर दिया कि यह हरिणशावक इस पार्वत्य भूमि की सम्पत्ति है, और इस पार्वत्य - भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं। तुम यह सोचकर भूल कर रहे हो कि हम इसे तुम्हारे साथ में सौंप देंगे। किन्तु दन्तुल छोडनेवाला नहीं था। उसने धमकी देकर कहा कि राजपुरुष दन्तुल तुम्हें ले जाते देखता रहेगा। तलवार की मूठ पर हाथ रखे वह कालिदास के पीछे जाना चाहता है। राजपुरुष दन्तुल को द्वार के सामने रोक कर मल्लिका ने जो कुछ बताया वही प्रस्तुत प्रसंग है।

ठहरो, राजपुरुष! हरिणशावक केलिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनकेलिए संवेदना का, कालिदास निःशास्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।

मल्लिका की वाणी में युक्ति एवं शक्ति है और है आत्मविश्वास भी। मल्लिका का अदम्य साहस और कालिदास के प्रति उसका प्रेम भी प्रस्तुत प्रसंग में व्यंजित हुआ है।

8. तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो, माँ! तुम जानतीहो, उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही है। उस साधन हीन और अभाव ग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही कैसे की जा सकती थी?(Page 24)

'आषाढ़ का एक दिन' नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस रचना से मोहनराकेश को बड़ा यश मिला था। इस नाटक की प्रत्यक्ष विषय वस्तु कालिदास के जीवन से संबंधित है परन्तु उसके प्रसिद्ध को प्राप्त होने से पहले उसकी प्रेयसी मल्लिका का यह नाटक है जो उसकी अपनी नियति का ही चित्र है।

मल्लिका ने अंबिका से कहा कि कालिदास से उसका भावना का संबंध है। तब माँ अम्बिका ने कहा कि लोग उसे नाम देते है। ..... यदि वास्तव में उसका तुम से भावना का सम्बन्ध है, तो वह क्यों तुम से विवाह नहीं करना चाहता? मल्लिका ने अपने प्रेमी के पक्ष का समर्थन करते हुए जो कुछ कहा वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

माँ हमेश कालिदास के प्रति अनुदार रही हैं। उनका जीवन परिस्थितियों की विडम्बना में बीता है। मातुल के घर में उनकी दयनीय दशा रही है। उस साधन - हीन और अभाव - ग्रस्त

जीवन में विवाह की कल्पना ही कैसे की जा सकती थी?

प्रस्तुत सन्दर्भ में इस तथ्य की स्पष्ट झलक मिलती है कि महाकवि कालिदास के प्रति मल्लिका का प्रेम बहुत ही दृढ है। इस प्रेम - भावना के कारण ही वह उसके पक्ष का समर्थन करती है। इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि कालिदास का बचपन बडे अभावों और कष्टों में व्यतीत हुआ था।

9. किसी संबंध से बचने केलिए, अभाव जितना बडा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बडा कारण बन जाती है। (Page 24)

'आषाढ़ का एक दिन' जीवन के एक गहन अनुभव खंड को मूर्त करता है। इसकेलिए हिन्दी के जीवंत मुहावरे को पकड़ने की सार्थक, प्रभावशाली कोशिश की गयी है। मोहन राकेश को इस नाटक के प्रणयन से खूब ख्याति मिली थी।

मल्लिका कालिदास से मुहब्बत करती है। मगर उसका प्रेम निष्काम है। अतः वह भावना का ही प्रेम करती है। 'कालिदास तुम से प्रेम करता है तो वह क्यों तुम से विवाह नहीं करना चाहता' माँ के इस कथन को सुनकर कालिदास के पक्ष में मल्लिका ने कहा कि तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो, माँ! तुम जानती हो, उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडम्बना में बीता है। उस साधन हीन और अभाव - ग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही कैसे की जा सकती थी? मल्लिका की बातें सुनकर अम्बिका का मर्मिक जवाब है प्रस्तुत प्रसंग।

और अब जब कि उसका जीवन साधन हीन और अभावग्रस्त नहीं रहेगा। ऐसी हालत में वह क्यों तुम से शादी नहीं करना चाहता। किसी विवाह के रिश्ते से बचने केलिए अभाव जितना बडा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बडा कारण बन जाती है। अम्बिका का कथन सोलहों आने सही है। जीवन में बडे अनुभव होने के नाते अम्बिका के सभी निष्कर्ष सही एवं सत्य सिद्ध होते हैं। कालिदास के बारे में अंबिका ने पहले ही कहा था कि वह व्यक्ति आत्म - सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसी से मोह नहीं है।

10. सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्व को बढा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में भी निष्णात है। (Page 27)

स्वर्गीय मोहन राकेश का कीर्ति स्तंभ है उनका नाटक 'आषाढ़ का एक दिन'।

कालिदास के 'ऋतुसंहार' को पढकर उज्जयिनी के राजा बडे प्रसन्न हुए। उन्होंने कालिदास को राजकवि का ऊँचा स्थान देने का निर्णय लिया। वररुचि एवं कुछ राज पुरुष कालिदास को लेने ग्राम प्रान्तर में पहूँचे। किन्तु कालिदास को इसकी सूचना मिलने पर वे जगदम्बा के मंदिर में छिपकर बैठ गे। कालिदास को ढूँढकर मातुल अम्बिका के घर आ पहुँचा। उसने घोषणा की कि मैं आज सारे ग्राम में घोषणा करने जा रहा हूँ कि मेरा इस कालिदास नामधारी जीव से कोई संबंध नहीं है। आखिर अम्बिका ने उसको आश्वासन दिया कि मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि मातुल, कि वह उज्जयिनी अवश्य जाएगा। मातुल ने भी अंबिका की बात मान ली और कहा कि अवश्य जायेगा। मातुल ने भी अंबिका की बात मान ली और कहा कि अवश्य जायेगा। वे लोग इसके अनुचर हैं जो अभिस्तुति करके इसे ले जाएँगे। प्रस्तुत सन्दर्भ में अम्बिका ने कालिदास को लोकनीति में निष्णात कहकर उसका परिहास किया है।

सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति उदासीनता प्रकट करने पर व्यक्ति का महत्व बढता है। ऐसी हालत में कालिदास लोकनीति में भी निष्णात है।

इस सन्दर्भ में अम्बिका ने कालिदास को व्यवहार कुशल एवं लोकनीति में निष्णात प्रमाणित किया है। इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि कालिदास दुर्बल नहीं है, कोमल, अस्थिर और अन्तर्द्वन्द्व से पीडित है।

11. अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं, तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नहीं रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज है, जीवन भर वही रहेंगे एक स्थानीय कवि! जो लोग आज ऋतुसंहार की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जाएँगे। (Page 32)

स्वर्गीय मोहन राकेश आधुनिक हिन्दी नाटक कारों में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका सुप्रसिद्ध नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' अपने ढंग का अनोखा है।

वररुचि और कुछ राजपुरुष कालिदास को लेने ग्राम प्रान्तर में आ पहुँचे। कालिदास को इसका पता चला तो वे जगदम्बा के मंदिर में छिप कर बैठ गये। उसकी सूचना मिलने पर निक्षेप अम्बिका के घर मल्लिका से मिलने आया। निक्षेप ने मल्लिका से कहा कि मैं ने अनुभव किया है कि कालिदास के हठ के मूल में कही गहरी कटुता की रेखा है। मल्लिका ने जवाब दिया कि मैं जानती हुँ, वह रेखा कहाँ है। .... कुछ समय पहले एक राजपुरुष से उनका सामना हो चुका है। प्रस्तुत प्रसंग में निक्षेप ने कालिदास के उज्जयिनी जाने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है।

कालिदास के हृदय की कटुता को तुम्हीं दूर कर सकती हो मल्लिका! अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। एक लोकोक्ति भी है कि समय और तरंग किसी की प्रतीक्षा नहीं करते (Time and tide wait for no man) कालिदास के नजाने पर राज्य की कोई क्षति नहीं होती। राज कवि का स्थान कभीं रिक्त नहीं रहेगा। कालिदास के स्थान पर और एक योग्य कवि को नियुक्ति करेंगे। ऐसी दशा में कालिदास एक स्थानीय कवि मात्र रहेंगे। जो लोग आज 'ऋतुसंहार' की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में उन्हें भूल जाएँगे।

निक्षेप की बातों में सच्चाई एवं कालिदास के प्रति ममता है। कालिदास का शुभचिन्तक है निक्षेप।

12. क्यों? तुम ने इतने वर्ष सारी पीडा क्या इसी दिन केलिए सही है? दूर से देखनेवाला भी जान सकता है, इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या - क्या बीता है! समय ने तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा की इकाई तोडकर रख दिया है। तुम ने तिल - तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। और आज जब कि उसकेलिए जीवन - भर के अभाव का प्रश्न सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहती? (Page 36)

स्वर्गीय मोहन राकेश एक सिद्धहस्त कथाकार और नाटककार है। उनका प्रसिद्ध नाटक 'आषाढ का एक दिन' बहुचर्चित नाटक है।

जब मल्लिका कालिदास को उज्जयिनी जाने की प्रेरणा करने के वास्ते जगदम्बा के मंदिर में निक्षेप के साथ चली गयी तब विलोम अम्बिका के घर आ पहुँचा। उसने अंबिका से कहा कि कालिदास राजकवि के रूप में उज्जयिनी में रहेगा। मैं समझता हूँ उसके जाने से पहले ही उसका और मल्लिका का विवाह हो जाना चाहिए। इस संबंध में तुम ने सोचा तो होगा? अम्बिका ने जवाब दिया कि मैं इस विषम में सोचना नहीं चाहती। मैं ने तुम से कहा है विलोम, तुम चले जाओ। उसके बाद विलोम ने अम्बिका की पीडा को बढाने और कालिदास के विरुद्ध उसके क्रोध को भडकाने के वास्ते जो बातें कहीं वहीं प्रस्तुत सन्दर्भ में उद्धृत है।

इन वर्षों में तुम ने बहुत अधिक पीडाएँ सही हैं। इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या - क्या बीत है यह सब को मालूम है। समय ने तुम्हारे स्वास्थको बिगाडा है। तुम ने तिल - तिल करके अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो। आज, जब कि उसकेलिए जीवन - भर के अभाव का प्रश्न है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहती?

विलोम की वाक् पटुता यहाँ प्रशंसनीय है। विलोम के उपर्युक्त कथन से इस तथ्य पर प्रकाश पडता है कि वह मल्लिका का अहित नहीं चाहता। इस तथ्य को अम्बिका और कालिदास स्वीकार कर लेते तो न तो मल्लिका को कठिनाइयों का सामना करना पडता और न हम विलोम से ही उतनी घृणा करते, जितनी अब करते हैं।

13. विलोम क्या है? एक असफल कालिदास। और कालिदास? एक सफल विलोम। हम कहीं एक दूसरे के बहुत निकट पडते हैं। (Page 39)

स्वर्गीय मोहन राकेश हिन्दी नाट्य साहित्य के सन्दर्भ में युगद्रष्टा ही नहीं युगास्रष्टा भी थे। 'आषाढ़ का एक दिन' उनका एक प्रमुख नाटक है।

कालिदास को उज्जयिनी के राजकवि के ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करने राजा ने वररुचि और अन्य राज पुरुषों को पहाडी प्रान्तर में भेजा। मगर कालिदास अपने ग्राम प्रान्तर को छोडकर जाना नहीं चाहते थे। उन्होंने जगदम्बा के मंदिर में तब तक रहने का हठ किया जब तक राजपुरुष चले जायें। किन्तु मल्लिका की सलाह मानकर कालिदास उज्जयिनी जाने को तैयार हो गये। अम्बिका के घर वापस आने पर विलोम से उनकी मुलाकात हुई। विलोम ने कालिदास से जानना चाहा कि आचार्य कल ब्राह्म मुहूर्त में ही लौट जाना चाहते हैं। राजधानी के वैभव में जाकर ग्रामप्रान्तर को भुल तो नहीं जाओगे। वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं। मल्लिका ने विलोम से कहा कि यह समय और स्थान इन बातों केलिए नहीं है। मैं इस समय आप को यहाँ देखने की आशा नहीं कर रह थी। कालिदास ने विलोम की हँसी उडाकर कहा कि विलोम का कुछ भी करना अप्रत्याशित नहीं है। हाँ, कई कुछ न करना अप्रत्याशित हो सकता है। इस सन्दर्भ में विलोम ने कालिदास की बातों का सही जवाब दिया है।

प्रसन्नता का विषय है कि हम दोनों एक - दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं। निस्सन्देह मेरे स्वभाव में ऐसा कुछ नहीं है, जो तुम से छिपा हो। विलोम क्या है? एक असफल कालिदास। और कालिदास? एक सफल विलोम। हम कहीं एक - दूसरे के बहुत निकट पडते है। कहने का तात्पर्य यह कि दोनों आपस में अच्छी तरह चित्तवृत्तियों को पहचानते हैं। विलोम भी एक छोटा - सा कवि है। किन्तु वह सफल नहीं हुआ। अतः वह एक असफल कालिदास है। कालिदास कवियों का सम्राट हो गया है। अतः वह सफल विलोम है। इस सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि विलोम वाचाल एवं स्पष्टवादी है। वह कुछ भी छिपाता नहीं है। विलोम कालिदास के सामने यह दिखाना चाहता है कि मल्लिका का पति बनने केलिए उसमें उतने ही गुण हैं जितने कालिदास में है और विवाह के क्षेत्र में काव्य रचना की योग्यता का होना आवश्यक भी नहीं। नाटक में, सफल कवि जीवन में पराजयी बनता है और असफल कवि विजयी होता है। ऐसा लगता है कि नाटक में कालिदास की पराजय और विलोम की विजय ही दिखाई गयी है।

15. अनचाहा अतिथि सम्भवत फिर भी कभी आ पहुँचे। तब केलिए भी क्षमा चाहते हुए .....। (Page 43)

मोहन राकेश के बहुचर्चित नाटकों में प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' का महत्वपूर्ण स्थान है।

कालिदास मल्लिका की प्रेरणा से उज्जयिनी जाकर राजकवि बनना चाहता है। जब वह अम्बिका के घर पहुँचा तब विलोम भी वहाँ उपस्थित था। विलोम ने व्यंग्य करके कहा कि वहाँ अकेले जाओगे या ....। मल्लिका ने उसकी बात काटकर कहा कि आर्य विलोम, आज अपनी सीमा से आगे जाकर बात कर रहे हैं। मैं बच्ची नहीं हूँ, अपना भला - बुरा सब समझती हूँ .... आप सम्भवतः यह अनुभव नहीं कर रहे कि आप यहाँ इस समय एक अनचाहे अतिथि के रूप में उपस्थित हैं। विलोम ने जवाब दिया कि तुम कालिदास के बहुत निकट हो, परन्तु मैं कालिदास को तुम से अधिक जानता हूँ। कालिदास को शुभ कामनाएँ देने के पश्चात् विलोम ने जो बात कहा वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

मैं तो अब तुम्हारे लिए अनचाहा अतिथि हूँ। किन्तु शायद मैं पुनः इधर आ पहुचूँगा। तब केलिए भी क्षमा चाहता हूँ।

विलोम का कथन नाटकीय व्यंग्य (dramatic irony) का सुन्दर सबूत है। आखिर विवश होकर पेट की ज्वाला बुझाने के वास्ते विलोम, को स्वीकार करना पडता है। 'अनचाहा' 'अतिथि' वहाँ का अतिथेय भी बन जाता है। कुछ समय के बाद कालिदास और मल्लिका को व्यग्य बाणों से वह घायल भी करता है।

16. यह ग्राम प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा? यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते। वे सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं (Page 44)

मोहन राकेश के नाटकों में सर्वश्रेष्ठ है 'आषाढ़ का एक दिन'। कालिदास के जीवन के आधार पर रचित यह नाटक अपने ढंग का सुरुचिपूर्ण एवं अनोखा है। उज्जयिनी से राजकवि होने का निमंत्रण पाने के पश्चात् कालिदास मानसिक संघर्ष में पड जाता है। क्योंकि भूमि है। वह कई सूत्रों से इस भूमि से जुडा है। किन्तु मल्लिका ने वहाँ जाने की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए जो कुछ कहा वही प्रस्तुत प्रसंग है।

तुम यहाँ से जाकर भी मुझ से दूर नहीं हो सकते। ग्राम प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर नहीं मिलेगा। यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते क्योंकि 'अति परिचय ते होत अनादार भाय'। लोग यहाँ सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गाँव के लोग कालिदास की प्रतिभा और कविता को पहचानने की क्षमता नहीं रखते। अतः हमेशा उनकी उपेक्षा और अवहेलना ही हुई है। मातुल के गाँवों को चरानेवाला ग्वाल के रूप में ही लोग उसे निहारते हैं। मातुल ने भी कहा था 'कविता का मूल्य ही क्या है?'

17. यह क्यों नहीं सोचते कि नयी भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नयी भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे। (Page 45)

यह ग्राम प्रान्तर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा? यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते। वे सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं।

कालिदास को अपनी धरती से उज्जयिनी जाने का मन नहीं लगता क्योंकि यहाँ से जाकर वह अपनी भूमि से उखड जाएगा। किन्तु मल्लिका ने प्रेरणा एवं नयी आशा प्रदान करते हुए कालिदास के चंचल मन को स्थिर बनाकर उज्जयिनी जाने की उत्तेजना दी।

उसके विचार मे नयी भूमि अधिक सम्पन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से जो कुछ ग्रहण करना है उसे ग्रहण कर चुके हैं। आज उसको नयी भूमि की ज़रूरत है जो उसके व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दे।

मल्लिका की बातों में मानसिक संघर्ष से अकर्मण्य होनेवाले कालिदास को समुचित प्रेरणा देने की अदभुत क्षमता हैं। मल्लिका का त्याग, कर्तव्य - निष्ठा एवं प्रेम - भावना इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है।

अंक दो

18. व्यक्ति उन्नति करता है, तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद जुडने लगते हैं (Page 51)

स्वर्गीय मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी नाटक साहित्य में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

मल्लिका की प्रेरणा से कालिदास को उज्जयिनी गये कुछ साल बीत गये। इन सालों में मल्लिका की दशा बद से बदन्तर होती रही। कालिदास ने मल्लिका की उपेक्षा की। ऐसे में एक दिन कालिदास का शुभ चिंतक निक्षेप मल्लिका के घर आया। उसने मल्लिका से कालिदास के बारे में जो अपवाद सुन रखा था उस पर प्रकाश डाला। निशेप की बातों का मल्लिका ने जो जवाब दिया वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

व्यक्ति उन्नति करता है, तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद जुडने लगते हैं। लोग दूसरों की उन्नति देखकर ईर्ष्या करते हैं और उनपर कई अपवाद फैलाने लगते है। यह तो स्वाभाविक है। यद्यपि कालिदास के बारे में लोगों का कथन सत्य है तथापि मल्लिका इन अपवादों पर भरोसा नहीं करती क्योंकि उसका दृढ विश्वास है कि कालिदास ऐसी घृणित कार्यवाई नहीं करेगा। कालिदास पर मल्लिका दृढ विश्वास, अचंचल प्रेम उसकी बातों में झलकता है।

19. उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था। .... सुना है राजदुहिता बहुत विदुषी है (Page 52)

मोहन राकेश का सुप्रसिद्ध नाटक है 'आषाढ़ का एक दिन'। कालिदास उज्जयिनी चले गये। वे राजकवि ही नहीं राजा भी बन गये। वे 'तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग' में आमग्न हो गये। वे अपनी बाल्य काल सखी मल्लिका को एकदम भूल गये। निक्षेप एक दिन मल्लिका से मिला। उसके निर्देश के कारण ही मल्लिका ने कालिदास को उज्जयिनी जाने की प्रेरणा दी थी। अतः मल्लिका की दर्दनाक दशा देखकर निक्षेप को अपराध बोध हुआ। उसने मल्लिका से कहा कि कालिदास के बारे में कुछ अपवाद फैल गये हैं। सुना है कि कालिदास ने राजदुहिता से विवाह भी कर दिया है। प्रस्तुत सन्दर्भ में मल्लिका ने कालिदास के महत्व और अपनी नगणयता पर प्रकाश डाला है।

कालिदास इतना महान और प्रतिभा संपन्न है कि उनके साथ मेरा नाम जोडना अनुचित है। मैं तो अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। ऐसी दशा में उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था। सुना है राजदुहिता बहुत विदूषी है।

प्रस्तुत प्रसंग में मल्लिका के उज्वल व्यक्तित्व की झलक हमें मिलती है। उसकी उदारता, अटूट निस्वार्थ प्रेम, अपने प्रेमी के उत्कर्ष पर आनन्द, अनुपम त्याग विशेष दर्शनीय है।

20. राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें एक - एक क्षण का महत्व है। कभी एक क्षण केलिए भी चूक जायें, तो बहुत बडा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने केलिए व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पडता है। ... साहित्य उनके जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण में पहूँच चुके हैं। मेरा अधिक समय इसी आयास में बीतता है कि उनका बढा हुआ चरण पीछे न हट जाय। ..... बहुत परिश्रम पडता है इसमें। (Page 70)

'आषाढ़ का एक दिन' के दूसरे अंक में कालिदास अपनी पत्नी प्रियंगुमंजरी के साथ अपनी पार्वत्य भूमि में वर्षों के पश्चात् पहुँचते हैं। वे घोडे पर चढकर पहाडी प्रदेश में घूमने लगतेहैं। किन्तु बाल्यकाल सखी मल्लिका के यहाँ नहीं जाते हैं। उनकी पत्नी प्रियंगु मंजरी मल्लिका के घर में मातुल के साथ पधारती हैं। पावसऋतु है। पर्वत प्रदेश पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश से युक्त है। प्रियंगुमंजरी ने कहा भी इस सौन्दर्य के सामने जीवन की सब सुविधायें हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने केलिए जीवन - भर का समय भी पर्याप्त नहीं। प्रियंगुमंजरी मल्लिका के घर में मातृगुप्त की रचनाएँ देखकर दंग रह गयी। उसने मल्लिका से जान लिया कि यह कालिदास की रचनाएँ हैं। उनसे जान चुकी हूँ कि तुम बचपन से उनकी संगिनी रही हो। उनकी रचनाओं के प्रति तुम्हारा मोह स्वाभाविक है। इस सन्दर्भ में प्रियंगुमंजरी ने मल्लिका से यहाँ के जीवन की चर्चा जब तब करते हुए सब कुछ विस्मृत होनेवाले मातृगुप्त (कालिदास) का स्मरण किया है।

ऐसे अवसरों पर उनके मन को सन्तुलित रखने केलिए बहुत प्रयत्न करता पडता है। राजनीति साहित्य नहीं है। उसमें प्रत्येक पल का अपना महत्व है। कभी एक क्षण केलिए भी चूक जायें, तो बहुत बडा अनिष्ट हो सकता है। राजनीतिक जीवन की धुरी में बने रहने केलिए व्यक्ति को बहुत जागरूक रहना पडता है। साहित्य कालिदास के जीवन का पहला चरण था। अब वे दूसरे चरण में पहुँच चुके हैं। उनका बढा हुआ चरण पीछे न हट जाय, मेरा अधिक समय इसी आंयास में बीतता है।

प्रियंगुमंजरी की कर्मठता, अथक कोशिश, राजनीतिक बातों की सूझ बूझ इस प्रसंग में विशेष दर्शनीय है। एक आदर्श पत्नी के रूप में प्रियंगुमंजरी पाठक - प्रेक्षक के सामने प्रत्यक्ष होती है।

21. मैं किसी आनेवाले से बात भी नहीं कर सकती? दिन, मास, वर्ष मुझे घुटते हुए बीत गए हैं। मेरे लिए यह घर - घर नहीं, एक काल गुफा है जिसमें मैं हर समय बन्द रहती हूँ। और तुम चाहती हो, मैं किसी से बात भी न करूँ? (Page 74)

'आषाढ़ का एक दिन' के दूसरे अंक में प्रियंगुमंजरी कालिदास की बाल्यकाल सखी मल्लिकासे मिलने उसके घर पधारती है। प्रियंगुमंजरी मल्लिका से उज्जयिनी में जाने और अपनी सखी के रूप में रहने और किसी राजपुरुष से शादी करके सुखमय जीवन बिताने का निर्देश देती है। तब मल्लिका ने विनम्रता के साथ कहा कि इस विषय की चर्चा छोड दीजिए। प्रियंगुमंजरी को तब आश्चर्य हुआ। उसने कहा - 'क्यों? तुम्हारे मन में कल्पना नहीं है कि तुम्हारा अपना घर

परिवार हो?' यह बात सुनकर भावावेश में अम्बिका उठ पडी और बोली नहीं। इसके मन में यह कल्पना नहीं है। मल्लिका ने माँ को रोककर कहा कि तुम उठ क्यों आयी, माँ? तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। चलो, चलकर लेट रहो। इस समय दीना हीना दुखिया विधवा अम्बिका ने अपने रोष को व्यंजित करते हुए मल्लिका से जो बात कही वही प्रस्तुत सन्दर्भ है।

मैं किसी आनेवाले से बात भी नहीं कर सकती? दिन, मास, वर्ष मुझे घुटते हुए बीत गए हैं। मेरे लिए यह घर घर नहीं, एक काल - गुफा है जिसमें मैं हर समय बन्द रहती हूँ। और तुम चाहती हो, मैं किसी से बात भी न करूँ।

अम्बिका की बातों में उसकी विवशता, निराशा, विषमता एवं विषाद की भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई हैं।

22. यह अवसर देखने केलिए ही तो मैं ने आज तक का जीवन - जिया है! इतना बडा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है (Page 78)

'आषाढ़ का एक दिन' के दूसरे अंक में कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी अम्बिका के घर पहुँचकर मल्लिका से मिलती है। घर के परिसंस्कार, मल्लिका को अपनी सखी बनाकर ले जाना, मल्लिका की शादी किसी राजपुरुष से कराना आदि आश्वासन देने पर भी मानिनी मल्लिका ने प्रियंगुमंजरी से कहा कि आप इस विषय की चर्चा छोड दीजिए। प्रियंगुमंजरी के चले जाने के बाद अम्बिका क्षुब्ध हो गयी। खांसी उठ आने से वह आगे नहीं बोल पाती। उस समय विलोम ने बाहर से आकर कहा कि इस तरह क्षुब्ध क्यों हो अम्बिका ....? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे सौभाग्य पर तुम से स्पर्द्धा कर रहा है। राजकीय पगधूलि घर में पडती है, तो लोग गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर हर किसी के जीवन में कहाँ आता है? विलोम की बात पर रुद्ध - क्रुद्ध अम्बिका ने प्रति क्रिया स्वरूप जो बातें कही वही प्रस्तुत प्रसंग है।

यह अवसर देखने केलिए ही तो मैं ने आज तक का जीवन - जिया है। इतना बडा सौभाग्य हमारे क्षुद्र जीवन में कहाँ समा सकता है। अम्बिका के कथन में हास्य व्यंग्य है। साथ ही अपनी विवशता, विषमता एवं धनीभूत पीडा की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

23. कोई आश्चार्य नहीं है। प्रसन्नता है कि उसके सम्बन्ध में ठीक सौचती थी। जीवन एक भावना है। कोमल भावना बहुत - बहुत कोमल भावना। (Page 84)

मोहन राकेश का बहुचर्चित नाटक है "आषाढ का एक दिन"। "आषाढ का एक दिन" के दूसरे अंक में वर्षों के पश्चात् कालिदास अपनी जन्मभूमि में वापस आता है। अश्वारूढ होकर वह मल्लिका के घर के निकट से पहाडी प्रदेश में गया है। विलोम उससे मिलने अम्बिका के घर में उपस्थित हुआ था। उसको निराशा हुई। अंबिका जानती थी। आज नहीं, तब से जानती थी। वह आता, तो उसको आश्चर्य होता। अब उसको आश्चर्य नहीं है। प्रस्तुत प्रसंग में अम्बिका ने विलोम से कालिदास के न आने के कारण अपनी प्रति क्रिया अभिव्यक्त की है।

अब तो अम्बिका को कोई आश्चर्य नहीं है। प्रसन्नता है कि उसके संबंध में टीक सोचती थी। जीवन एक भावना है। कोमल भावना! बहुत - बहुत कोमल भावना! इस सन्दर्भ में अंबिका का रोष, आक्रोश, दर्द, निराशा, आशंका, व्यथा आदि कई भावों की व्यंजना हुई है। इसे भावशबलता कहने मात्र से हमें संतोष नहीं मिलता। पुत्री कहती थी कि मैं ने भावना में एक भावना का वरण किया है। भोली भाली मल्लिका यह नहीं जानती थी कि ज़िन्दगी भावना नहीं है, यथार्थ है। यथार्थ

से आँखें मूदकर हम जी नहीं सकते। प्रस्तुत प्रसंग विधवा माँ अम्बिका के आहत हृदय का चीत्कार है।

24. इन चिकने शिला - खण्डों से तो वह मिट्टी ही अच्छी रहते बेघर हो रहा हूँ। न बाहर रहते बनता है न अन्दर। उन श्वेत शिला - खण्डों के दर्शन से ही मुझे प्रासाद का स्मरण हो आता है। जहाँ रहकर एक पाँव तोड आया हूँ। (Page 89)

'आषाढ़ का एक दिन' नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मोहन राकेश की यह रचना सुगठित यथार्थवादी नाटक है। हिन्दी में यह पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आन्तरिक यथार्थ के अन्तर्द्वन्द्व को संवेदनशीलता के साथ देखता है। तीसरे अंक में वर्षा से भीगकर मातुल मल्लिका के घर में पहुँचता है। राजप्रसाद में रहकर वह एक एक पाँव तोड बैठा परन्तु अब यह स्थिति है कि बैसाखी आगे रखता है तो पैर पीछे को फिसल जाता है और पैर आगे रखता है तो वैसाखी पीछे को फिसल जाती है। इस सन्दर्भ में राजप्रासाद में रहने से अपने कटु अनुभव को मल्लिका से मातुल ने अभिव्यक्त किया है।

राजप्रासाद में रहकर पाँव तोड बैठेगा तो वह कभी ग्राम छोडकर वहाँ न जाता। अब पीछे से उसका घर भी उन लोगों ने ऐसा कर दिया है कि कहीं पैर टिकता ही नहीं। इन चिकने शिला - खण्डों से तो वह मिट्टी की अच्छी थी जो पैर को पकडती तो थी। वह तो अब घर के रहते बेघर हो रहा है। न बाहर रहते बनता है न अन्दर। उन श्वेत शिलाखण्डों के दर्शन से ही उसको प्रासाद का स्मरण हो आता है। जहाँ रहकर एक पाँव तोड आया है।

अपने ग्रामीण परिवेश को छोडकर राजप्रासाद में रहने से मातुल अस्वस्थ, अशांत एवं क्लान्त - श्रांत रहता है। रह - रहकर उसको अपने पहाडी प्रदेश का स्मरण हो आता है। प्रस्तुत प्रसंग उसके आहत हृदय का चीत्कार है। मातुल की निराशा, व्यथा, विवशता आदि की झलक इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है।

25. मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैं ने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। (Page 93)

नाट्यरूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' सुगठित यथार्थवादी नाटक है, जिसमें बाह्य ब्यौरे की बातों से अधिक परिस्थिति के काव्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। शायद हिन्दी का यह पहला यथार्थवादी नाटक है जो बाह्य और आंतरिक यथार्थ की समन्विति और अन्तर्द्वनद्व को संवेदनशीलता के साथ देखता और प्रस्तुत करता है।

वर्षा में बैसहारा होकर मातुल मल्लिका के घर आ पहुँचा। उसने मल्लिका से कहा कि कालिदास काशी में भाग गया है। उसने सन्यास लिया है। यह सूचना देने के बाद मातुल वैसाखी पटकता हुआ चला जाता है। उसके बाद मल्लिका का अन्तर्द्वन्द्व और स्वगत ही प्रस्तुत सन्दर्भ में अभिव्यक्त किया गया है।

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बना रहे हो। मैं ने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन में ही कुछ उपलब्धि है। मल्लिका के निष्काम प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति है यह स्वगत कथन। कालिदास के प्रति मल्लिका की हार्दिक ममता, आत्मीयता और उसकी उन्नति को अपनी

उन्नति समझना उसके उदान्त उज्वल व्यक्तित्व को व्यक्त करने में सक्षम है। जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' नाटक की देवसेना की भांति 'इस जीवन के देवता उस जीवन में प्राप्य समझनेवाली उदारमता, प्रेमाविह्वला और मृदु हृदया है मल्लिका'।

26. नहीं, स्वप्न नहीं है। यथार्थ है कि मैं यहाँ हूँ। दिनों की यात्रा करके थका, टूटा - हारा हुआ यहाँ आया हूँ कि एक बार यहाँ के यथार्थ को देख लूँ। (Page 96)

'आषाढ का एक दिन' नाट्य लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुतः हिन्दी के जिन एक - दो श्रीगणेश किया था, 'आषाढ का एक दिन' उसकी काव्यात्मकता का परिणति है। तीसरे अंक में विलोम के चले जाने के पश्चात् मल्लिका स्वगत कथन में संलग्न रहती है। रह - रहकर कालिदास की मधुर यादें उसको सताती हैं। अचानक कालिदास अन्दर आता है। मल्लिका जड - सी उसे देखती रहती है। कालिदास ने कहा कि और न पहुँचाना ही स्वाभाविक है, क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसे तुम पहले पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ। मल्लिका ने जवाब दिया कि मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा कि तुम तुम हो, और मैं जो तुम्हें देख रही हूँ, वास्तव में मैं ही हूँ। मुझे विश्वास नहीं हूँ .... प्रस्तुत सन्दर्भ में कालिदास ने मल्लिका की शंका को दूर कर असली स्थिति स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

नहीं, यह स्वप्न नही है। यथार्थ है कि मैं वहाँ हूँ। दिनों की यात्रा करके थका, टूटा हूआ यहाँ आया हूँ कि एक बार यहाँ के यथार्थ को देख लूँ। यात्रा करके टूटा - हारा और थका कालिदास सचमुच अपनी जीवन यात्रा में भी हारा हुआ व्यक्ति है। अब जीवन की इस वेला में श्रांति और क्लांति ही अधिक है। अब तो मोह के स्थान पर मोह भंग और आसक्ति और राग के स्थान पर विराग और विरक्ति ही अधिक है। इस सन्दर्भ में कालिदास ने अपनी विवशता एवं विषमता को ही अभिव्यक्त किया है।

27. मैं ने जब - जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान नहीं हूई। रघुवंश में आज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और ...। (Page 102)

मोहन राकेश के नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन' का शीर्ष स्थान है। यह नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य का मील का पत्थर कहा जा सकता है।

मल्लिका कालिदास की चिन्ता में मग्न रहती है। रह - रहकर कालिदास से संबंधित यादें उसको कचोटती रहती हैं। तभी अचानक दरवाज़ा को धक्का देकर कालिदास अन्दर आता है। जड - सी स्तब्ध मल्लिका और कालिदास थोडी देर के बाद बातचीत करने लगे। मल्लिका बोली कि तुम थके हुए हो और अस्वस्थ हो। बैठकर बात करो। उसके बाद कालिदास ने बीती बातें बतायीं। इस सन्दर्भ में कालिदास ने अपनी रचनाओं की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला है।

लोग सोचते हैं कि मैं ने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैं ने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा है। 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' के पक्ष की पीडा मेरी पीडा है और विरह विमर्दित यक्षिणी तुम हो। मैं ने जब - जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर - फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान नहीं हुई। 'रघुवंश' में आज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है।

इस प्रसंग में कालिदास के स्वगत कथन का तात्पर्य है कि कालिदास की कृतियों में आत्माभिव्यक्ति ही है। उनके पात्रों में स्वयं वे और मल्लिका ही प्रमुख हैं। अतः काव्य में संवेदनो क्षमता बहुत अधिक है। उनकी कृतियाँ अपनी और मल्लिका की ज़िन्दगी की गाथाएँ हैं। जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान नहीं हुई।

28. मुझे वर्षों पहले यहाँ लौट आना चाहिए था ताकि यहाँ वर्षा में भीगता, भीगकर लिखना - वह सब जो मैं अब तक नहीं लिख पाया और जो आषाढ़ के मेघों की तरह वर्षों से मेरे अन्दर धुमड रहा है परन्तु बरस नहीं पाता। क्योंकि उसे ऋतु नहीं मिलती। वायु नहीं मिलती। ...(Page 104)

कालिदास दिनों की यात्रा करके थका, टूटा हारा हुआ मल्लिका के घर आ पहुँचा। वह बारिश से बेहद भीग गया था। मल्लिका के उजडे घर और दुबले तन और दरिद्रता देखकर कालिदास को उसपर हम दर्दी हो गयी। कालिदास अपनी किताबों की प्रतिलिपियाँ देखकर आश्चर्य स्तब्ध हो गया और उसने पूछा - "और इसकेलिए धन"। मल्लिका ने जवाब दिया कि वर्ष दो वर्ष में एक प्रति मिल पाती थी। धन एकत्रित करने केलिए बहुत समय रहता था। प्रस्तुत सन्दर्भ में कालिदास ने अपनी आशाओं और महत्वकांक्षाओं पर प्रकाश डाला है।

जो अभाव वर्षों से मुझे सालते रहे हैं, वे आज और बडे प्रतीत होते है, मल्लिका! मुझे वर्षों पहले यहाँ लौट आना चाहिए था ताकि यहाँ वर्षा में भीगता, भीगकर लिखता - वह सब जो मैं अब तक नहीं लिख पाया और जो आषाढ़ के मेघों की तरह वर्षों से मेरे अन्दर घुमड रहा है। परन्तु बरस नहीं पाता। क्योंकि उसे ऋतु नहीं मिलती। वायु नहीं मिलती....

प्रस्तुत प्रसंग कालिदास के आहत हृदय का चीत्कार है। हृदय में बादलों की तरह भाव उमड - घुमडता है। सही समय और वायु के अभाव में ये बादल रूपी भाव बरस नहीं पाते। सुमित्रानन्दन पंत ने भी लिखा है -

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान

जयशंकर प्रसाद ने इसी आशय को "आँसू" में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

ओ घनीभूत पीडा थी
मस्तक में स्मृति - सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
आज स्वयं बरसने आयी।

29. स्थान - स्थान पर इन पर पानी की बूँदें पडी हैं जो निःसन्देह वर्षा की बूँदें नहीं है। लगता है तुम ने अपनी आँखों से इन कोरो पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और आँखों से ही नहीं, स्थान - स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद - कणों से मैले हुए हैं, स्थान - स्थान पर फूलों की सुखी पक्तियों ने अपने रंग इन पर छोड़ दिये हैं। कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इन्हें छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के - गहरे रंग, हेमन्त की पत्र धूलि और इस घर की सीलन ..... ये पृष्ठ अब कोरे कहाँ है मल्लिका? इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है ... अनन्त सर्गों के एक महाकाव्य की। (Page 104 -105)

मोहन राकेश ने अनेक नाटकों की रचना की है, जिनमें "आषाढ़ का एक दिन", "लहरों के राजहंस", "आधे अधूरे" और "पैर तले की ज़मीन" आदि है। इन नाटकों की विशेषता यह है कि

पाठक उन्हें पढकर तो आनन्दित होता ही है परन्तु रंगमंच पर इनका प्रदर्शन देखकर नाटककार की रचना - धर्मिता से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। किसी नाटक की यह विशेषता होती है कि वह रंगमंच के योग्य हो और उस पर खरा उत्तरे। इस दृष्टि से "आषाढ़ का एक दिन" श्रेष्ठतम सिद्ध हुआ है।

तीसरे अंक में नायक कालिदास काश्मीर का शासन छोडकर अपने गाँव भाग आए हैं और मल्लिका से मिल रहे हैं। मल्लिका अपने हाथों से सीकर बनाए एक ग्रन्थ को उन्हें देकर आशा करती है कि कालिदास अपना नया और सब से बडा काव्य उसमें लिखे।

कालिदास उसे उलट - पलट कर देखते है और बताते हैं कि उसमें अब तक एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है और उसके पृष्ठ कोरे नहीं, उनके अनंत सर्ग हैं। स्थान - स्थान इन पर पानी की बूँदें पडी हैं जो निःसन्देह वर्षा की बूँदे नहीं है। लगता है तुम ने अपनी आँखों से इन कोरे पृष्ठों पर बहुत कुछ लिखा है। और, आँखों से ही नहीं, स्थान - स्थान पर ये पृष्ठ स्वेद - कणों से मैले हुए हैं, कई स्थानों पर तुम्हारे नखों ने इसे छीला है, तुम्हारे दाँतों ने इन्हें काटा है। और इसके अतिरिक्त ये ग्रीष्म की धूप के हल्के गहरे रंग, हेमन्त की पगधूलि और इस घर की सीलन - ये पृष्ठ अब कोरे नहीं है मल्लिका?

मल्लिका के आहत हृदय की चारु अभिव्यक्ति इन कोरे पृष्ठों पर पहले ही हुई है। अतः इस पर और एक महाकाव्य कोई लिख नहीं पाता। क्योंकि ये कोरा कागज़ नहीं। महाकवि कालिदास ने मल्लिका के मृदु हृदय और सच्चे प्रेम की सुचारु अभिव्यक्ति का एक सुन्दर शब्द चित्र यहाँ खींचा है। वह अनुपम एवं नितांत सुन्दर बन पडा है।

30. जैसे तुम से बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है। अधिकार दिये हैं। उसने औरों को भी अवसर दिया है। निर्माण किया है। तुम्हें उसके निर्माण से वितृष्णा होती है?क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो, नहीं देख पा रहे?(Page 109)

मोहन राकेश का श्रेष्ठ नाटक है "आषाढ़ का एक दिन"। इस नाटक के तीसरे अंक में नायक कालिदास थका - हारा अपने गाँव वापस आया है। काश्मीर के राजा मातृगुप्त के कलेवर से पुनः कालिदास बनकर जीने की उसकी उत्कट इच्छा है। वह मल्लिका के घर में पहुँचा और उससे कुछ देर तक बातें करने लगा। इतने में विलोम वहाँ आ पहुँचता है। दोनों में व्यंग्य भरी बातें होती हैं। कालिदास नाखुश होकर विलोम से वहाँ से चले जाने को कहता है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में विलोम की प्रतिक्रिया और कटु आलोचना है। वह कालिदास से पूछता है कि वह किस अधिकार से विलोम को वहाँ से जाने केलिए कहता है? क्या उज्जयिनी सेवापस आने पर कालिदास का मल्लिका पर पहले जैसा अधिकार है? तुमने जिस प्रदेश को वर्षों पहले छोड दिया था उस पर तुम्हें अपना कोई अधिकार होता दीख पडता है? क्या तुम्हारा अधिकार शाश्वत है। जैसे तुम से बाहर जीवन की गति ही नहीं है। तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्दय नहीं है। उसने दूसरों को भी सत्ता दी है। अधिकार दिये हैं। उसने औरों को अवसर दिया है! निर्माण किया है। तुम्हें उंसके निर्माण से वितृष्णा होती है? क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो, नहीं देख पा रहे।

इस सन्दर्भ में विलोम की कटु आलोचना तीखा हास्य - व्यंग्य और कटूक्तियाँ हम सुनते हैं। कालिदास के हृदय में उसकी बातें चुभेगी। नाटक में संघर्ष की सृष्टि करने में विलोम की बातें सहायक सिद्ध हुई हैं।

31. मैं ने कहा था मैं अथ से आरम्भ करना चाहता हूँ। यह सम्भवतः इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था। परन्तु देख रहा हूँ कि समय अधिक शक्तिशाली है क्योंकि ..... (Page 110)

हिन्दी के ढेरों तथाकथित नाटकों से "आषाढ का एक दिन" इसलिए मौलिक रूप में भिन्न है कि उसकी दृष्टि कहीं ज़्यादा आधुनिक और सूक्ष्म है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की शुरुआत का सूचक है।

विलोम के चले जाने के पश्चात मल्लिका ने कालिदास से पूछा कि क्या सोच रहे हो। कालिदास ने बीती बातों का स्मरण किया और कहा कि सोच रहा हूँ कि वह आषाढ़ का ऐसा ही दिन था। ऐसे ही घाटी में मेघ भरे थे और असमय अंधेरा हो आया था। मैं ने घाटी में एक आहत हरिणशावक को देखा था और उठाकर यहाँ ले आया था। तुम ने उसका उपचार किया था। मल्लिका ने फिर स्मरण कराया कि तुम कह रहे थे कि तुम फिर अथ से आरम्भ करना चाहते हो। प्रस्तुत सन्दर्भ में मल्लिका से कालिदास का कथन है।

कालिदास ने कहा था कि मैं अथ से आरंभ करना चाहता हूँ। शायद यह इच्छा का समय के साथ द्वन्द्व था। परन्तु समय इच्छा से ही अधिक शक्तिशाली है। क्योंकि वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता कालिदास ने कई बार अपने ग्राम प्रान्तर में वापस आकर अथ से शुरु करना चाहा था। किन्तु समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता है। हाँ, कहा गया है कि समय और लहर किसी की प्रतीक्षा नहीं करते। अंग्रेज़ी में एक लोकोक्ति है Time and tide want for no man. कालिदास की निराशा, व्यथा, गृहातुरता इस सन्दर्भ में विशेष दर्शनीय है।

Books for reference

1. Prasad ke Natakam ka Shastríya Adhyan - Dr. Jagannath Prasad Sharma
2. Hindi ke Samasya Natak - Dr. Manthrothe Otha.
3. Natakkar Jagadish Chandra Mathur - Govind chethak
4. Mohan Rakesh aur Unka Natak - Girish Rashtrogi
5. Natakkar Lakshminarayanan Misre - Narayan Rai
6. Hindi Natak Udbhev aur Vikas - Dr. Dasarath Ojra
7. Hindi Natakam ka Roopvidhan aur Vasthuvikas - Chandulal Dube
8. Prasadottar Hindi Natak - Silppagatha Adhyayon - T.N. Viswambharam

आधुनिक निबंधावलि

सं.विद्यानिवास मिश्र

(1) साहित्य विटप - श्री विनोद शर्मा

(2) कुटज - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

(3) समाज और व्यक्ति - महादेवी वर्मा

(4) भारतीय विश्वविद्यालयों में खोजकार्य - राममनोहर लोहिया

(5) बन्दी की चेतना - पं. कमलापति त्रिपाठी

(6) झूठ बोलने की कला - इन्द्रनाथ मदान

साहित्य - विटप

श्रि.विनोद शर्मा (श्री. नारायण चतुर्वेदी)

लेखक परिचय

श्री. विनोद शर्मा (श्री. नारायण चतुर्वेदी) शुक्लोत्तर युग के प्रमुख निबंधकार हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका बडा योगदान रहा है। वे मशहुर हिंदी पत्रिका "सरस्वती" के संपादक भी रहे हैं। उन्होने कई संस्मरण और रेखाचित्र भी लिखे हैं। उनके संस्मरणों का निर्मल विनोद भाव विशेष रूप से प्रीतिकार है, जो कहीं - कहीं दो टूक शैली में हो जाता है।

सारांश

साहित्य - विटप श्री. विनोद शर्मा का एक प्रसिद्ध व्यक्ति व्यंजक निबंध है, जिसमें उन्होंने साहित्य को एक विपट (वृक्ष) कहा है जिसके तने, डालियाँ, पल्लव, पत्ते कुसुम इत्यादि साहित्य - रचना में रत बडे - छोटे या पुराने - नये साहित्यकार हैं।

श्री. विनोद शर्मा ने अपने व्यक्तिव्यंजक निबंध साहित्य -विटप में अपनी बात को अपने ही उदाहरणों के ज़रिए व्यक्त किया है। खुद के उदाहरणों के ज़रिए सामान्य की बात व्यक्ति व्यंजक निबंध में की जाती है। अखण्ड विश्वदृष्टि, मुक्त निर्बध पक्कट भाव और सामान्य में निगूढतम वैशिष्ट्य की तलाश आदि वस्तुएँ व्यक्ति - व्यंजक निर्बध में मिलती हैं। उनमें "मैं" के ज़रिए "हम" का आह्वान उपलब्ध है। श्री.रामशर्मा ने प्रस्तुत निबंध में अपने समय के साहित्यिक परिवेश को प्रस्तुत किया है और कहा है कि साहित्य एक विटप है, जिसके फूल और पत्ते यानी छोटे - बड़े साहित्यकार का समान महत्व है।

शर्मा जी लिखते हैं कि उन्हें साहित्य रूपी मन्दिर में स्थित शलिग्राम की सभी छोटी - बडी बंटियों में समान भक्ति है। उनके संबंध में भेद बुद्धि रखना धर्म का अपमान होगा। भक्तों में भेद बुद्धि पाप है। लेकिन देवताओं में उँच - नीच, छोटे - बडे की भावना स्वाभाविक है। हमारे साहित्यिक देवताओं में भी यह देवसुलभ भेद - बुद्धि पायी जाती है। यहाँ लेखक ने छोटे - बडे भाव को लेकर साहित्यकारों में जो भेद - भाव है, इस ओर इशारा किया है।

साहित्याकाश के सूरज, चन्द्रमा, अरुंधती, सप्तर्षि, ध्रुव, बुध, मंगल शुक्र, बृहस्पति, और शनि जैसे बडे साहित्यकार उन लघुतर एवं लघुतम तारों, नक्षत्रों जैसे छोटे याने नवोदित साहित्यकारों को हीन दृष्टि से देखते हैं। सच तो यह है कि इन के बिना रजनी निष्प्रभ हो जाती है और चन्द्रमा विधुर हो जाता है। इन साहित्यकारों को निम्न कोटि के जीव समझे जाते हैं। इन्हें स्वप्निल साहित्य स्वर्ग के स्वर्णिम द्वार के पास भटकने योग्य भी नहीं समझे जाते हैं।

लेखक के अनुसार साहित्य एक पेड़ (विटप) है और ये छोटे साहित्यकार इस पेड के अज्ञात, एवं अनभिनंदित पल्लव हैं तथा बडे साहित्यकार कमनीय, प्रस्फुटित, मदिरगंध एवं नयनाभिराम कुसुम हैं। यहाँ लेखक ने नयी पीढी के नवोदित साहित्यकार और पुरानी पीढि के बहुसम्मानित बडे साहित्यकारों के बिच के संघर्ष की ओर इशारा किया है। बहुधा ऐसा होता है कि बडे साहित्यकार नयी पीढ़ि के नवोदित साहित्यकारों को अपेक्षित सम्मान या प्रोत्साहन नहीं देते। लेखक के अनुसार इन छोटे साहित्यकार रूपी पल्लवों के बिना साहित्य - विटप ठूंठ सा रह जाता है। पल्लवों के बिना वृक्ष बसनहीन बन लज्जा के कारण स्तब्ध होकर सुषुप्तावस्था को प्राप्त करता है। पल्लवहीन पेड बसनहीन नारी के समान बुरा लगेगा।

ये नये युवा साहित्यकार साहित्य विटप के असंख्य किन्तु नगण्य पल्लव हैं। श्रीनारायण चतुर्वेदी जैसे लेखक श्रीवर व श्री विनोद जैसे कवि इस प्रकार के साहित्य - पल्लव हैं जो समाज रूपी वातावरण और वायुमंडल से जीवनदायिनी वायू खीचकर साहित्य - विटप को साँस देने में सहायता देते हैं। इससे वह समाज की प्राणदायिनी शक्ति पाकर जीवित रहता है और बडे - बडे साहित्यकार जैसे रमणीय कुसुमों को उतपन्न करता है। ये पल्लव वास्तव में उसकी शोभा ही नहीं बढाते, प्राण ही नहीं देते, बल्कि उसे संसार में अभिन्दनीय और वन्दनीय बनाते हैं। ये पल्लव ही समान रूप से भेल -बुरों को आश्रय देते हैं।

ये पल्लव तो हैं, लेकिन दीन, हीन या दयनीय नहीं हैं। इनके बिना बन्दववार असंभव है। ये वसन्त की श्री अवश्य हैं किन्तु इन्हें वसन्त की श्रीवृद्धि करने का अभिमान ज़रा भी नहीं हैं। आश्रयहीन दीनजनों की पर्णकुटी छाकर प्रकृति - कोप से उन्हें बेचाने से ये पल्लव सन्तोष का अनुभव करते हैं। इन्हें सेवा का अवसर मिलता रहता है। ये साहित्य - पल्लव ही देश के दरिद्रतम लोगों की भूख को शान्त करते हैं। इससे ये इनके जीवन को धन्य समझाते हैं। यहाँ लेखक ने यह रेखांकित करते हुए कहा है कि ये पल्लप रूपी नवोदित साहित्यकार ही कुसुम रूपी प्रतिष्ठित साहित्यकारों की अपेक्षा दीन दुःखियों के दुःख - दर्द को सही ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

ये नवोदित साहित्यकार रूपी पल्लव उपयोगिता, सेवा और नम्रता की मूर्ति हैं। लेकिन प्रतिष्ठा - सम्मान प्राप्त कुसुम रूपी साहित्यकारों को पत्तियों के उपर ऐंठकर खडे होने और अपनी उभरी खंड से अपनी ऊपरी रूप - राशि प्रकाशित और विज्ञापित करने में ही आनंद आता है। पल्लवों का गवक्ष बनाकर ये संसार को झांक लेते और झांकी दिखला देते हैं। कभी - कभी माली रूपी निष्ठूर सभालोचकों की निगह से बचने केलिए पल्लवों की ओट में छिप जाते हैं। दूसरों का सिर चढना इन कुसुमों को बहुत प्रिय हैं। विवेक शून्य होकर देवता से लेकर शव पर चढने में तैयार रहते हैं।

साहित्य विटम के ये कुसुम कामिनियों के श्रृंगार के अन्यतम साधन हैं। इनकी पहूँच सब कहीं हैं। यह देखकर ही शायद समझदार लोगों ने कहा होगा कि जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि। सभ्य समाज के जीवन में इनका कोई स्थान या उपयोग नहीं है।

ये कुसुम रूपी साहित्यकार अपने रूप से लोगों को लुभाते और अपनी गंध से उनमें मादकता लाते हैं। यहाँ लेखक ने इस ओर इशारा किया है कि रीतिकालीन मानसिकता वाले ये प्रौढ़ रचनाकार अपनी रचनाओं में श्रृंगार रस का उद्दीपन ही करते हैं। नियति या ईश्वर ने पल्लवों का कर्त्तव्य कुछ और निर्धारित किया है और कुसुमों का कुछ और। ये प्रतिष्ठित साहित्यकार सेवा माली रूपी आलोचक इन्हीं कुसुम रूपी साहित्यकारों को ही सींचते हैं यानि उनकी तारीफ़ की आलोचना लिखते हैं। लेकिन पल्लव रूपी साहित्यकार ही वास्तव में असली जनजीवन और उनकी समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं।

उपसंहार

"साहित्य - विटप" शीर्षक निबंध में व्यंग्य और प्रतीक के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं एवं सच्चाइयों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साहित्य के क्षेत्र में नवोदित या नयी पीढ़ि के रचनाकारों को कभी भी प्रतिष्ठा, आदर या सम्मान नहीं दिया जाता। आलोचक भी पुरानी पीढ़ि के प्रतिष्ठित साहित्यकारों को ही अधिक महत्व देते हैं। उनकी मानसिकता आज भी रीतिकालीन श्रृंगारिकता की है। जीवन की सच्चाइयों और समस्याओं को उसकी असलियत के साथ पल्लव रूपी नवोदित रचनाकार ही प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने इसमें इस प्रकार साहित्यकारों के बीच के संघर्ष को प्रस्तुत किया है।

कुटज - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का शुक्लोत्तर युग के सशक्त निबंधकारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी निबंध साहित्य की जिस स्तर पर प्राण - प्रतिष्ठा की है, वहीं से उसे भरतीय परम्परा और उनमुक्त वातावरण के क्षेत्र में लाने का श्रे. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी को ही है। उन्होंने निबंध की सीमा का विस्तार किया है और इसमें ऐसे विषयों को भी विवेच्य समझा है जो इसके पूर्व निबंध की सीमा में स्वीकृत नहीं थे। इसके अतिरिक्त जन - जीवन को प्रभावित करनेवाले उपकरणों की व्याख्या के साथ "व्यक्ति" के आंतरिक भावों की उद्भावना एवं उसके औचित्य का प्रश्न भी डा. द्विवेदी के निबंध का विषय बना है।

द्विवेदी ने सभी विषयों को अपने निबंधों में समान महत्व दिया है चाहे वह व्यष्टि मानव हो या समष्टि मानव, राजनीति हो अर्थनीति, समाज नीति हो या धर्मनीति, भौतिक विज्ञान हो या मनोविज्ञान, लौकिक चेष्टाएँ हो या अध्यात्मिक विचार,प्रतिपल परिवर्तित प्रकृति हो अथवा शाश्वत ब्रह्म। विषय की विविधता, व्यक्तिपरकता, मानवधर्मिता, समन्वयमूलकता, प्रकांड पाण्डित्य और अनुसंधान वृत्ति विनोद वृत्ति, प्रकृति प्रेम, विषय प्रतिपादन की अध्यापकोचित शैली, सहज भाषा, विषयानुकूल शैली आदि द्विवेदी के निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। "अशोक के फूल", "कुटज", "विचार और वितर्क", "विचार प्रवाह", "कल्पलता" और "आलोक पर्व" द्विवेदी के प्रमुख निबंध संग्रह है।

CUP/8647/11/500/SDE—7

कुटज

अध्ययन अध्यापन की खुश्क समझी जानेवाली दुनिया में रहते हुए द्विवेदी को प्रकृति से गहरा लगाव था। "कुटज", "शिरीष के फूल", "आम फिर बौरा गए", "अशोक के फूल", "वसन्त आ गया है" आदि प्रकृति वर्णन पर केन्द्रित निबंध हैं। इनमें कुटज का अपना अलग महत्व है। इस निबंध में द्विवेदी जी कुछ ऐसी विशेष भंगिमा की प्रतिस्थापना करते हैं जो संघर्षरत मनुष्य का इष्ट है। शिवालिक श्रृंखला पर उत्पन्न पुष्प ही कुटज है जिसे वे कुटज कहकर संबोधित करते हैं।

ऐसे उजाड स्थल पर पुष्पित फूलों को देखकर वे चकित हो जाते हैं क्यों कि चट्टानों से रस खींचकर ही ये जीवित रहते हैं। कुटज का महत्व कालिदास के "मेघदूतम्" में प्रतिष्ठित है। यक्ष ने सन्तप्त हृदय से मेघ की अभ्यर्थना कुटज पुष्पों से की थी। इसलिए कुटज गाढे का साथी है। इस निबंध का सारांश नीचे दिया जा रहा है।

कुटज का उत्पत्ति स्थान

कुटज पर्वत पर उत्पन्न होता है। उसका उत्पत्ति स्थान हिमालय पर्वत की शिवालिक श्रृंखला है। शिवालिक नाम को लेखक "[शिवालक" (शिव अरस) शिवजी की जटाएँ मानता है। हिमालय पर्वत की भूमि श्रृंखलाओं में जहाँ हरियाली नहीं होती वहाँ यह वृक्ष उत्पन्न होता है। यंह काली चट्टानों की दरारों में उग आता है।

कुटज का स्वरूप

कुटज का वृक्ष बहुत उँचा और विकासशील नहीं होता। यह छोटा - सा, टिगना - सा पेड़ है, किन्तु पत्ते चौडे भी होते हैं और बडे भी। यह फूलों से लदा रहता है।

कुटज का नाम

कवि अनेक प्रकार से नाम और रूप का वर्णन करता है। मनुष्य को रूप से काम रखना चाहिए, नाम में क्या रखा है। किन्तु नाम का भी महत्व है। नाम किसी वस्तु की सामाजिक स्वीकृति है। इसे अंग्रेजी भाषा में स्पेशल सेंक्शान कहा जा सकता है। रूप व्यक्तिगत सत्य है जबकि नाम सामाजिक सत्य है। इसलिए नाम बड़ा होता है।

लेखक को उस पैधे का नाम याद आ गया। इसे कुटज कहते हैं। इसका नाम कुटज है।

कालिदास द्वारा कुटज का उल्लेख

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने अपने "मेघदूत" में कुटज के पुष्पों से ही मेघ की पूजा करायी है।

रहीम के दोहे में कुटज का वर्णन

मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि रहीम ने अपने एक दोहे में कुटज को हीन वृक्ष माना है। उस समय वे दुःखी रहे होगे अथवा उनका मूड़ खराब रहा होगा। इसलिए उन्होंने ऐसा कहा होगा। और तो और, वे दरियादिल आदमी थे और जो कुछ उन्होंने पाया, उन्हें दोनों हाथों से लुटाया। जिस समय वे दीन बन गये होगे, उस समय वे सायद कुटज के प्रति अपनी वितृष्णा उन्होंने व्यक्त किया होगा।

कुटज का उत्पत्ति अर्थ

घड़े को कूट कहते हैं और जो घड़े से उत्पन्न हुआ है उसे कुटज कहते हैं। ऋषि अगस्त्य को भी घडे से उत्पन्न माना जाता है। इसलिए उनका भी नाम कुटज है, किन्तु घड़े से कोई उत्पन्न नहीं होता। संस्कृत में कुट का दूसरा अर्थ घर है। इससे कुटी, कुटिया और कुटीर शब्द बने हैं। घर का कामकाज करनेवाली दासियों को "कुट हारिका" और कुटकारिका कहा जाता था। अधिक बोलनेवाली, इधर की उधर लगानेवाली और गलत ढंग से काम करनेवाली दासी को कुट्टनी कहते थे। अगस्त्य ऋषि भी दासीपुत्र थे। किन्तु इस कुटज वृक्ष का घडे से कोई संबंध नहीं है। यह तो पर्वतों पर उत्पन्न होता है।

यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कुटज आर्य जाति का शब्द ही है। सिलवां लेवी ने कहा कि संस्कृत में अनेक शब्द आग्नेय भाषा परिवार के हैं। किसी युग में एशिया और ऑस्ट्रेलिया मिले हुए थे और किसी भयंकर प्राकृतिक विस्फोट से अलग हो गये थे। अब भी बहुत से शब्द ऑस्ट्रेलिया और एशिया एवं भारत के आदिवासियों की भाषा में मिलते - जुलते हैं। उनका उद्‌गम एक है। दक्षिण पूर्व (आग्नेय दिशा) दिशा की भाषा होने से ही सिलवा लेवी ने इसे आग्नेय भाषा कहा है।

कुटज का संदेश

कुटज विपरीत परिस्थितियों में भी निर्भयतापूर्वक जीने का उपदेश देता है। वह पत्थरों के बीच भी राह निकालने की प्रेरणा देता है। कुटज अपनी जड़ों द्वारा बहुत गहराई से जल खींचता है और पुष्पित एवं पल्लवित होता है।

कुटज की जीवनी - शक्ति

कुटज में बहुत अधिक जीवनी - शक्ति है। वह विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रहता है।

स्वार्थ का महत्व

संसार में जीवित रहना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि संसार में सभी अपने मतलब केलिए दूसरे को प्रेम करते हैं। ऐसे ही विचार पश्चिमी विचारक हॉब्स, हैल्वेशशियस आदि है। स्वार्थ का दायरा बहुत बडा है। देशोद्धार, अन्य जनों का कल्याण, साहित्य और कला की महिमा आदि में लोगों का व्यक्तिगत स्वार्थ होता है।

स्वार्थःएक खण्ड सत्य

यद्यपि स्वार्थ का दायरा बहुत बडा है फिर भी यह खण्ड सत्य है। स्वार्थ व्यापक होकर परमार्थ बन बन जाता है। तभी व्यक्ति को सुख और आनंद प्राप्त होता है।

कुटज का स्वाभिमानी जीवन

कुटज स्वाभिमान से जीता है। वह किसी के पास भीख मांगने नहीं जाता। वह किसी का खुशामद नहीं करता। अपना प्राप्य वह बलपूर्वक खींच लेता है। वह जो कुछ मिल जाता है उसे उल्लासपूर्वक ले लेता है। सुख और दुःख में कभी दीन नहीं बनता।

वह कभी गर्व नहीं करता। सदा अपराजित भाव से रहता है।

उपकार का अभिमान व्यर्थ

जो लोग समझते हैं कि उन्होंने किसी उपकार किया है, उसका अभिमान करना व्यर्थ है; किसी को सुख पहूँचाने का या दुःख देने का गर्व करना तो बिलकुल व्यर्थ है। कोई किसी का उपकार नहीं करता। सभी ईश्वर की इच्छा से अपना कर्म करते हुए जी रहे हैं।

सुख और दुःख से परे

सुख - दुःख तो मन की कल्पना मात्र है। जिसका मन अपने वश में होता है, वे ही सुखी हैं और जो दूसरों के अधीन में वे दुःखी। जनक ने भी कहा है कि अपने स्वार्थ केलिए अपने मन को दूसरों के मन में न घुमांना ही सुख है और इसी प्रकार अपने मन को वश में किया जा सकता है।

विशेषताएँ और सन्देश

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध "कुटज" में स्वावलंबन और स्वाभिमान से जीने का सन्देश प्रस्तुत किया है। "कुटज" के माध्यम से उन्होंने कहा है कि विपरीत परिस्थितियों में भी सदा निर्भय और उल्लासपूर्वक रहना चाहिए। क्यों कि कुटज जीवन शक्ति का प्रतीक है। उसकी प्रेरणा है कि विपरीत परिस्थितियों में शान सें जिओ, किसी के सामने दीन मत बनो और अपना अधिकार बलपूर्वक प्राप्त कर लो। जीवन, दरअसल एक तपस्या है। यह मात्र कला ही नहीं है। जीवन में सुख - दुःख के धपेडे आते है। उन्हें तपस्वी की भाँति शांति - पूर्वक झेलो। जीवन को उसकी वास्तविकता के साथ जिओ। जिन्दगी में प्राण डाल दो, उसे रस से भर दो। प्राणवान और साहसी जीवन ही यथार्थ जिन्दगी है। अपने प्राप्य के प्रति कभी भी गाफिल मत रहो, क्यों कि सभी अपने स्वार्थ केलिए जी रहे हैं। इसलिए हमें इस प्रकार बनाना चाहिए कि हमारे सभी हित सिद्ध हो जाए। इसके अलावा इस निबंध से यह भी संदेश भी मिलता है कि हमें उपकार का गर्व नहीं करना चाहिए। गलत व्यवहार बुरा है। मन को वश में रखना चाहिए और सदैव अविचलित जीवन दृष्टि रखनी चाहिए।

अतिरिक्त अध्ययन के लिएः-

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध - कला
2. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों की भाषाशैली

समाज और व्यक्ति

महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय

महीयसी महादेवी वर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख कवयित्री, निबंधकार, संस्मरणकर्ता, और रेखाचित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। महादेवी का संपूर्ण साहित्य मानवीय भावना से ओतप्रोत है।

हिन्दी छायावादी कविता का उन्नयन करनेवाले कवियों में उनका स्थान उल्लेखनीय है। अपनी कविताओं में उन्होंने कल्पना, प्रकृति - सौन्दर्य, सूक्ष्म अभिव्यंजना आदि छायावादी तत्वों का समचित समावेश किया। "नीहार", "नीरजा", "सांध्यगीत", "रश्मि", "संधिनी", "यामा", "दीपशिखा", "सप्तपर्णा" आदि उनके काव्य संकलन हैं। "यामा" में उनकी प्रारंभिक काव्य -

कृतियाँ "नीहार", "नीरजा", "रश्मि" और "सांध्यगीत" संकलित हैं। "यामा" पर उन्हे भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

संस्मरण और रेखाचित्र को विधाओं के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी महादेवी वर्मा को है। "अतीत के चलचित्र", "स्मृति की रेखाएँ", "पथ के साथी", "मेरा परिवार" उनके प्रमुख रेखाचित्र और संस्मरण हैं। "श्रृंखला की कडियाँ", "क्षणदा", "समाज और व्यक्ति" उनके निबंध संग्रह हैं।

सारांश

"समाज और व्यक्ति" श्रीमती महादेवी वर्मा का एक प्रमुख व्यक्ति - व्यंजक निबंध है जिसमें उनके विचारक - व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

अपने निबंध के प्रारंभ में उन्होंने समाज की परिभाषा इस प्रकार दी है समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थों की सार्वजनिक रक्षा के लिए, अपने विषम आचरणों में साम्य उत्पन्न करनेवाले कुछ सामान्य नियमों से शासित होने का समझौता कर लिया है।

समूह बनाकर रहने की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति से मिली है। उसका क्रमिक विकास विवेक पर आश्रित है। मानसिक विकास के साथ - साथ उत्पन्न और विकसित नैतिकता ने उसे पशु - जगत् से अलग कर दिया। इसी से मनुष्य समाज समूह मात्र नहीं रह सका। यही एक ऐसी संस्था में परिवर्तित हो गया जिसका ध्येय भिन्न - भिन्न सदस्यों को लौकिक सुविधाएँ देकर उन्हें मानसिक विकास के मार्ग पर आगे बढाते रहना है।

मनुष्य जाति जब जीवन के लिए अधिक सुविधाएँ प्रदान करनेवाले प्रदेशों में फैलने लगी तब उसके भिन्न - भिन्न समूहों को अपनी शक्तियों का दृढतर संगठन करने की आवश्यकता महसूस हुई ताकि वे नई परिस्थितियों और नये शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सके। भिन्न - भिन्न व्यक्तियों में बिखरी उच्छृंखल शक्ति जाति केलिए दुर्बलता बन जाती है, इसी से वह एकता के सूत्र में बाँधकर अपने आपको सबल बना सका। अनेक व्यक्ति एक दूसरे के निकट बसने लगे, परस्पर सहानुभूति और सद्भाव उत्पन्न करने केलिए एक - दूसरे का खाध और आच्छादन छीन लेने की प्रवृत्ति को रोकने लगे। विजातियों से युद्ध के समय शक्ति को संगठित रखने केलिए अपने समूह विशेष के किसी अग्रगण्य वीर को नेता चुन उसका शासन मानना सीखने लगे। विशेष सुविधाओं के लिए एकत्र यह मनुष्य - समूह ही आज के हमारे सभ्य समाज का आदि रूपथा पूर्व रूप है।

स्थान विशेष की जलवायु और वातावरण के अनुरूप एक जाति रंगरूप एवं स्वभाव में दूसरों से भिन्न रही है। अपनी जातिगत विशेषताओं और व्यक्ति की सुरक्षा केलिए विशेष नियम बनने लगे। इन नियमों का उल्लंघन करनेवालों को दंडविधान भी तैयार किया गया। परन्तु इन नियमों के विरुद्ध छिपाकर आचरण करनेवालों को न रोक पाने के कारण वातावरण में उन नियमों के साथ पारलौकिक सुख - दुःख की भावना भी जोड़ दी गयी। यही भावना मानसिक संस्कार का आधार बन गयी। इस प्रकार लौकिक सुविधा की नींव पर, नैतिकता के उपकरणों से धार्मिकता का रंग देकर हमारी सामाजिकता का प्रासाद निर्मित हो गया। जिस क्रम से मनुष्य सभ्यता के मार्ग पर आगे बढे, उसी क्रम से समाज के नियम अधिकाधिक परिष्कृत होते गये और पूर्ण विकसित तथा व्यवस्थित समाज में वे केवल व्यावहारिक सुविधा के साधन मात्र न रहकर सदस्यों के नैतिक धार्मिक विकास के साधन भी हो गये।

व्यक्ति और समाज का सापेक्षिक संबंध है। एक के बिना दूसरे की उपशस्थिति संभव नहीं। व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा केलिए समाज बना है और समाज के अस्तित्व केलिए व्यक्ति की ज़रूरत रहती है। समाज में व्यक्ति स्वतंत्र और परतंत्र दोनों ही है। वैयक्तिक हितों की रक्षा के लिए निर्मित नियमों के अनुसार व्यक्ति परतंत्र है और अपने समाज के व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक विकास के क्षेत्र में व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतंत्र है।

मनुष्य जाति का बर्बरता से निकलकर मानवीय गुणों तथा कला - कौशल की वृद्धि करते हुए सभ्य और सुसंस्कृत होते जाना ही उसका विकास है। इस विकास की ओर अग्रसर होकर व्यक्ति समाज को भी अग्रसर करता है। लेकिन व्यक्ति जब निजी हानि - लाभ पर ध्यान केन्द्रित करके अपनी सामाजिक उपयोगिता को भूल जाता है तो समाज की व्यवस्था और उसके सामूहिक विकास में बाधा पड़ने लगती है। तब समाज की प्रगति दुर्गति में परिवर्तित होने लगती है। इसके पलस्वरूप बढ़ती विषमता क्रान्ति को जन्म देत है, जिससे समाज की व्यवस्था को नई रूप - रेखा मिलती है।

व्यक्ति और समाज के बीच के पारस्परिक संबंध के सन्दर्भ में उभरनेवाली एक प्रमुख समस्या है - क्या व्यक्ति समाज से पृथक रह सकता है? समाज से बिलकुल अविच्छिन्न होकर व्यक्ति नहीं रह सकता। भले ही व्यक्ति किसी संप्रदाय विशेष से अलग होकर रह सकता है, मगर समाज का अर्थ उतना सीमित नहीं है। चिन्तन या मानसिक जगत् में वह एकाकी होकर रह सकता है मगर भौतिक जगत या व्यावहारिक जीवन में ऐसा रहना संभव नहीं है। आपसी सहयोग के बल पर समाज के अंग बनकर जीवन बिताना व्यक्ति की अनिवार्यता ही नहीं नियति भी है। मनुष्य यदि मनुष्य को सहयोग देना स्वीकार न करता तो न मानवता की ऐसी अद्‌भुत कहानी लिखी जाती और न मनुष्य अपनी आदिम अवस्था से आगे बढ़ सकता। इसके अतिरिक्त मनुष्य प्रकृति से ही सामाजिक प्राणी है। अपने स्वभाव में आमूल परिवर्तन किये बिना समाज से उसका पृथक होना न संभव है और उचित भी।

फिर भी यह कहना सत्य की उपेक्षा है कि समाज व्यक्ति के संपूर्ण जीवन में व्याप्त है। साधारणत या मानवीय स्वभाव का अधिकांश समाज के शासन में नहीं रहता क्यों कि वह बंधन से परे है। वह धर्म, शिक्षा आदि की भिन्न - भिन्न सामाजिक संस्थाओं के संपर्क में आता है उतना ही समाज द्वारा शासित समझा जाता है। मनुष्य स्वभाव से ही मुक्ति कामी है। मनुष्य - जीवन की सफलता बाह्य - जगत् के नियमों से अनुशासित रहने में नहीं, बल्कि मनुष्यता की मरुस्थली को आर्द्र करके पूर्णता को प्राप्त करने में है।

समाज की सत्ता दो रूपों में विभक्त है। एक के द्वारा वह अपने सदस्यों के व्यवहार और आचरणों पर शासन करता है और दूसरे द्वारा वह व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए अनुकूल माहौल तैयार करता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए वह माहौल समाज में उपस्थित है। लेकिन अधिकांश उससे अनभिज्ञ है। जब कोई सजग होकर अपने आपको देखना शुरु करता है और वर्तमान रूप से असन्तुष्ट होकर असहमति देता है तभी वह सजग होकर अपना अर्थ ढूँढ लेता है। नहीं तो वह एक निर्जीव पिंड ही कहा जाएगा। वास्तव में इन्हीं असन्तुष्टियों और असहमतियों से ही समाज को अपने पुराने सिद्धान्तों को कालानुसार परिवर्तित करना पड़ता है। उसकी प्रगति भी इस पर निर्भर है। कहना न होगा कि सभी प्रगतिशील समाज में व्यक्ति और समाज इस प्रकार अन्योन्याश्रित होकर आपस में आदान - प्रदान करके ही विकास के पडावों को मार कर सकते हैं।

समाज की दो आधार शिलाएँ हैं - अर्थ का विभाजन और स्त्री - पुरुष संबंध। इन में से किसी एक की भी स्थिति में विषमता है तो वह समाज के संपूर्ण सन्तुलन को बिगाड़ देगी। समाज का आर्थिक आधार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस समाज में बिना परिश्रम करनेवाले को ज़्यादा सुविधाएँ और बहुत परिश्रम करनेवाले बहुत परिश्रम के उपरान्त भी जीवन की बुनियादी अवश्यकताओं से वंचित रह जाते हैं तो उसे "लक्ष्य भ्रष्ट" समाज ही कहना चाहिए। यह उस समझौते का उल्लंघन है जिसके द्धारा आदमी ने आदमी को सहयोग देना स्वीकार किया था। इसके विपरीत, समाज में जब सबल, दुर्बलों पर अपनी बर्बर शक्ति के द्वारा अधिकार स्थापित करते हैं तो वह सहयोग नहीं, विवशता से स्वीकृत दासता है। इतिहास साक्षी है कि ऐसी दासता कालान्तर में क्रान्ति को जन्म देगी। मामले को क्रान्ति तक ले जाना समाज की मनोविज्ञान - शून्यता का परिचायक है। क्रान्ति युग की प्रवर्तिका होने के बावजूद हिंसात्मक है। उसका कार्य प्रवाह को एक दिशा से होकर दूसरी में ले जाने के समान है। इसलिए सुव्यवस्थित समाज विकास - मार्ग में रुक - रुक कर अपने गन्तव्य और दिशा की परीक्षा करना आवश्यक समझते हैं। यहीं नहीं, क्रान्ति के आघात से वही समाज बच सकेगा जो क्रान्ति के उद्गम और दिशा से परिचित हो और उसे सहन करने की क्षमता रखते है। क्रान्तियों से ऐसा समाज और भी निर्मल हो सकता है।

स्त्री - पुरुष संबंध भी अर्थ के समान महत्वपूर्ण है। विकास के क्रमिक इतिहास से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज को बाँधनेवाला यह सूत्र कितना सूक्ष्म और दृढ है। नैतिक दृष्टि से समाज वृक्ष का पहला अंकुर स्त्री, पुरुष और उसकी संतान के रूप में पनपा। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि "स्त्री" यानी "आधी दुनिया" हाशिये में ही रही है। जाति की वृद्धि और पुरुषों के मनोविनोद का साधन होने के अतिरिक्त स्त्री का कोई उपयोग नहीं था। पहली आनंद के अन्य उपकरणों के समान उन्हें विपक्षियों से जीत लाना या सुयोग पाकर उनका अपहरण कर लाना साधारण सी बात थी। स्त्री के हृदय है या उसकी इच्छा - अनिच्छा भी हो सकती है, यह आदिम युग के पुरुष की सहज बुद्धि से परे था। परन्तु जैसे - जैसे मानव जाति पशुत्व की परिधि से बाहर आती गयी, स्त्री की स्थिति में भी अन्तर आता गया। जब मानव समाज ने अपेक्षाकृत शान्ति से रहने का स्थान खोज निकाला और कुछ बुनियादी सुविधाएँ भी प्राप्त कर लीं तब स्त्री की स्थाई उपयोगिता होने लगी। परिवार की नींव डालने में इस स्थिति ने मुख्य भूमिका निभाई। लेकिन वहाँ भी स्त्री - पुरुष के अधीन थी जैसे तलवार या धनुषबाण हैं। वैदिक युग तक आते - आते समाज में और भी परिवर्तन आये। परिवार के बिना पुरुष का और पुरुष के बिना परिवार का कोई सामाजिक दायित्व नहीं रहा। अब स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी बन गई। कालान्तर में पुरुष की अधिकार - भावना ने स्त्री के सामाजिक महत्व को नज़र अन्दाज़ कर दिया। एक बार कोई स्त्री पुरुष के आधिकार - अधीन में आयी तो वह जीवन में ही नहीं मृत्यु में भी स्वतंत्र नहीं रहेगी। यह विधान ही विधवाओं की दयनीय स्थिति का कारण है। स्त्री की इस दयनीय स्थिति का उत्तरदायी पुरुष वर्चस्वप्रधान समाज - व्यवस्था ही है।

प्रत्येक युग की सुविधा - असुविधाओं ने स्त्री - पुरुष को विशेष रूप से प्रभावित किया है और वह प्रभाव स्त्री की स्थिति में अधिक अन्तर लाया। पुरुष और स्त्री का संबंध केवल आध्यात्मिक न होकर व्यावहारिक भी है। जब तक दांपत्य सम्बध में पशुत्व में देवत्व में घुलकर नहीं आता और देवत्व साकार बनकर नहीं अवतीर्ण होता, तब तक वह अपूर्ण रहेगा। हमारा समाज अपने आधे सदस्यों से बलिदान और आत्म समर्पण लेता रहा है, वैसे - वैसे वह भी अपने अधिकार खोता जा रहा है। यह समाज के असन्तोषपूर्ण वातावरण से प्रकट है। स्त्री की स्थिति समाज के विकास को नापने का मापदंड है।

वर्तमान समाज की सच्चाई यह है कि उसको परिभाषित करना मुश्किल है। क्यों कि वर्तमान समाज कुछ विशेष संपन्न और कुछ विशेष अधिकार संपन्न और कुछ नितान्त अधिकारशून्य व्यक्तियों का समूह है, जो उपयोगिता से नहीं, परम्परागत धारणा से बंधा है। बढती असमानताओं की वजह से सामाजिक जीवन का सामंजस्य नष्ट होता जा रहा है।

सामाजिक बंधन में आई शिथिलता वर्तमान समाज का एक दोष है। सत्ता केन्द्रों पर समाज का प्रभुत्व कम हो रहा है। इसका प्रमुख कारण धर्म का प्रभुत्व है। बुद्धि पर बलात् डाले जानेवाले धर्म का प्रभुत्व जीवन का सबसे बडा अभिशाप है। व्यक्तिवाद और सामाजिक जीवन की अव्यावहारिकता इस शिथिलता का एक अन्य कारण है। आजकल समाज से अभिप्राय संप्रदाय विशेष या जातिविशेष ही रहा है। प्रत्येक जाति और संप्रदाय में कुछ उग्रपंथी, रूढिवादी और नवीन विचारवाले अवस्य मिलते हैं। इनके बिखर जाने के कारण कुछ समाज ऐसे भी बने गये हैं जिना आधार विचारधारा है, जाति या संप्रदाय नहीं।

समाज को ऐसा अपरूप देने में पाश्चात्य सभ्यता का भी योगदान है। किसी जाति की संस्कृति उसके शरीर का वस्त्र न होकर उसकी आत्मा का रस है। इसी से न हम उसे बलात् छीन सकते हैं और न चीर फाड़कर फेंक सकते हैं। उस रस का स्वाद बदलने केलिए हमें उससे अधिक औषधी पिलानी पड़ेगी। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में आने के पहले किसी समय भारतीय समाज और संस्कृति को मुस्लीम संस्कृति से लोहा लेना पड़ा। पश्चिमी संस्कृति ने युद्ध की चुनौती न देकर मित्रता का हाथ बढ़ाया और इसलिए उससे कोई संघर्ष नहीं हुआ। उसने हमारे सामाजिक दृष्टिकोण को बहुत बदल दिया। शासक संस्कृति होने के कारण अन्य संस्कृतियों के समान हमारी संस्कृति में विलीन नहीं हुई! लेकिन उसने हमारे शिथिल समाज का निर्माण किया, जिसकी आत्मा भारतीय और शरीर विदेशी है।

सामाजिक संगठन की असुविधाओं के साथ - साथ विषम अर्थ - विभाजन, और स्त्री की स्थिति ने समाज की नींव को खोखला किया है। इसकेलिए समाज और शासन विभाग दोनों उत्तरदायी हैं। उससे उत्पन्न अव्यवस्था का अधिकांश हिस्सा समाज को ही मिलता है। समाज की स्थिति मनुष्य के स्वच्छंद सहयोग पर निर्भर है। केवल शक्ति से शासन हो सकता है, समाज नहीं बन सकता। निरंकुश शासन शासक का अन्त कर सकता है किन्तु निरंकुश समाज मनुष्यता को समाज कर देता है।

उपसंहार

महादेवी वर्मा का "व्यक्ति और समाज" विचारोत्तेजक निबंध है। इसमें उन्होंने व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध की विस्तृत चर्चा की है। विशेष सुविधाओं केलिए एकत्रित मनुष्य समूह ही हमारे आज के सभ्य समाज का आदि रूप है! व्यक्ति के स्वतों की रक्षा के लिए समाज बना है। अर्थ का विभाजन और स्त्री - पुरुष संबंध ये दोनों समाज की आधार शिलाएँ हैं। जिस समाज में परिश्रम न करनेवाले को अधिक सुविधाएँ मिलती है और बहुत परिश्रम करनेवाले को बुनियादी सुविधाएँ नहीं मिलती है, वह लक्ष्यभ्रष्ट समाज है। महादेवी के अनुसार शक्ति से शासन हो सकता है किन्तु समाज नहीं बन सकता। उसकी स्थिति मनुष्य के स्वच्छन्द सहयोग पर आधारित है। निरंकुश समाज मनुष्यता का अन्त कर देता है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में खोजकार्य

राम मनोहर लोहिया

लेखक परिचय

राम मनोहर लोहिया आधुनिक भारत के प्रतिष्ठित विचारक हैं। उन्होंने आज़ादी के बाद देश को, विशेषकर युवजनों को सचमुच उद्वेलित किया था। वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने गाँधी के बाद सच्चे अर्थों में गाँधी सूत्रों को आगे बढायी। इसलिए आज भी लोहिया की सार्थकता है शायद पहले से अधिक।

इतिहास चक्र () अर्थशास्त्रः मार्क्स के आगे, भारत के शासक हिन्दू बनाम हिन्दू आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

भारतीय विश्वविद्यालयों में खोजकार्य शीर्षक में लोहिया ने भारतीय विश्वविद्यालयों में हो रहे अनुसंधान - कार्य की चर्चा की है। उनके अनुसार आज भारतीय विश्वविद्यालयों में सामाजिक विषयों के शोध पर अधिक बल देना चाहिए। भारत के सन्दर्भ में हमारे इतिहास, भूगोल, पुराकथाएँ और साहित्य की खोज के नतीजों को एकत्रित करना चाहिए।

भारतीय विश्वविद्यालयों में खोज - कार्य

विश्वविद्यालय ज्ञान और शक्ति का भण्डार है। इस के अतिरिक्त वह ऐसी सोद्देश्य जिज्ञासा का भी केन्द्र है जो ज्ञान और शक्ति को बढाता है। युवा लोग दिमाग और शक्ति की रसमयता से आकर्षित है और इससे राष्ट्र कोलाभ भी मिलता है। भारतीय विश्वविद्यालयों को इन दिशाओं में प्रयत्न करना चाहिए। दिमागी शक्ति को जगाने का उपाय यह है कि विश्वविद्यालयों के विद्वान अध्यापक अपनी विशिष्ट बुद्धि और ज्ञान से विषय की बडी बातों पर प्रकाश डालें। उन्हें और अधिक पत्र - पत्रिकाओं का भी अध्ययन करके उस पर ज्यादा चिन्तन और मनन करना चाहिए। जब विश्वविद्यालयों में महत्वपूर्ण खोजकार्य, खोज की योजनाएँ और उनमें लगन से काम करनेवाले लोग नहीं है तो इस में कोई मज़ा नहीं रह जाता। लेखक के अनुसार सौन्दर्य, शक्ति या ज्ञान के क्षेत्रों को उजागर करनेवाली खोज और दिमाग की व्यवस्थित जिज्ञासों में ही सबसे अधिक रसमयता है। प्राकृतिक विज्ञानों के खोज - कार्य में जितना आकर्षण है उतना किसी अन्य विषय के खोज - कार्य में नहीं। लोहिया के अनुसार खोज कार्य के बिना आधुनिक काल का विश्वविद्यालय निष्प्राण है। इस लेख में लेखक ने अधिक सामाजिक विज्ञानों की कम रसमयता की विस्तार से चर्चा की है। लेखक के विचार में सामाजिक विज्ञानों की कम रसमयता अधिक महत्व की है क्यों कि इसकी प्रतिध्वनियाँ जन - चेतन की गहराइयों तक जाती हैं और यह आंशिक रूप में आधार पर प्रदान करती है। इस पर ही प्राकृतिक विज्ञान निर्मित होते हैं। सामाजिक विषयों में खोज वर्तमान - अतीत, आधुनिक - प्राचीन में करना चाहिए। आधुनिक - वर्णन, आधुनिक - सिद्धान्त और प्राचीन जैसे तीन अंगोंवाले इतिहास, साहित्य आदि विषयों को एक केन्द्र में समन्वित करना चाहिए। अगर विश्वविद्यालय दिमागी रसमयता का सच्चा केन्द्र बनना चाहता है तो केवल किसी जिले में मज़दूरों के रहन - सहन या रेलवे वित्त जैसे विषयों पर खोज न करके विस्तृत क्षेत्र और व्यापक अवधियों पर करनी चाहिए। एक ही विषय की गहराई में जाकर या उनके कई पहलुओं पर खोज की जा सकती है। एक ही विषय के विभिन्न स्तर पर होनेवाली समस्याओं को या नये उभरते विषयों पर भी खोज की जा सकती है।

नयी उभरती हुई और परिपक्व हेने पर समाप्त होनेवाली अतिघटनाओं का विषय व्यापक अद्‌भुत और बहुत सी सम्भावनाओं से युक्त हैं। इनके अध्ययन से न सिर्फ रहस्योद्‌घाटन की खुशी होगी बल्कि ज्ञान भी मिलेगा। हिन्दुस्तान की वर्ण व्यवस्था ऐसा एक विषय है। इसकी खोज से बहुत नई बातें मालूम होंगी। सैद्धान्तिक - विश्लेषणात्मक खोज के बिना केवल वर्णनात्मक खोज खोजकार्य का मूल्य नष्ट करके प्रतिष्ठा व आमदनी की दृष्टि से घटिया डाक्टर उपाधिधारियों का नीरस प्रवचन रह जाती है। यूरोपीय देशों की भांति प्रौढ सैद्धान्तिक औजारों का सही इस्तेमाल करके गौर यूरोपीय देशों की भी सैद्धान्तिक विश्लेषणात्मक खोज गहरी होनी चाहिए। केवल डाक्टर की उपाधि के युवा उम्मीदवार से इसकी आशा करना उचित नहीं, लेकिन वे इन औजारों का अध्ययन अच्छी तरह करके उनकी कमियों को सामने ला सकता हैं। पूँजीवाद, प्रगति, समृद्धि, समाजवाद या साम्यवाद, सामन्तवाद आदि आंशिक वैध धारणाओं से मनुष्य के विचार भरे पडे हैं।

पूँजीवाद, साम्यवाद आदि वास्तव में सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं की पहचान करानेवाली कल्पनाएँ है। आबादी का घनत्व और मशीनों का प्रकार और परिमाण महत्वपूर्ण निर्णायक पहलू है जिनकी मात्रा कम-ज़्यादा होने पर साम्यवाद का चरित्र बिलकुल भिन्न हो जाएगा। इसलिए पूँजीवाद और साम्यवाद की प्रचलित धारणाओं की समीक्षा करना ज़रूरी है। तब इतिहास और अर्थशास्त्र को पूँजीवाद और साम्यवाद के यूरोपीय प्रसंग में नहीं, विभिन्न क़ालों की क्षेत्रीय सभ्यताओं के प्रसंग में समझा जाएगा।

इसी प्रकार प्रगति और समृद्धि इन संकल्पनाओं की बहुत व्यवस्थित और वैज्ञानिक जाँच करने की आवश्यकता है, क्यों कि इस अंधविश्वास का बडा प्रचार हुआ है कि विज्ञान के द्वारा प्रगति और समृद्धि बढ़ती रहती है। जाँच करने पर पता चलेगा वह प्रगति और समृद्धि कहाँ तक हानिकारक बनी है।

प्राचीन के भी अध्ययन की आवश्यकता

वर्णन - विश्लेषण और सिद्धान्त - विश्लेषण के साथ - साथ प्राचीन के भी गंभीर अध्ययन की ज़रूरत है। सारी दुनिया के समान हिन्तुस्तान भी अपने अतीत का फल है। समकालीन से ज्यादा विगत बातों को लेकर लोग चिन्तित हैं, फिर भी सही अध्ययन नहीं होते। अतीत की खोज करने पर इतिहास, भूगोल, पुराकथाएँ और साहित्य की खोज के नतीजों को एकत्रित करना होगा। साथ ही, समान विषयों पर विभिन्नों की राय की भी खोज आवश्यक है। जैसे तुलसी की सीता की तरह वाल्मीकी की भी सीता थी और लोक - गीतों की सीता भी।

कुछ पुराकथाएँ, प्रतीक और खयाल जो आज भी इस्तेमाल होते हैं। ज्ञान की कमी के कारण बहुत अधिक झंझट के साथ अपव्यय भी होता है। हिन्दुस्तान की वर्णमालाएँ इसका उदाहरण है। ये नागरी वर्णमाला वर्णमाला के ही हेरफेर हैं। इसके अलावा हिन्दुस्तानी भाषाओं के अंगों और उनकी व्यापक अभिव्यंजना शक्ति का भी अध्ययन करके डाक्टरी की उपाधियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

हिन्दुस्तान के लोगों की भलाई का काम करनेवाला विश्वविद्यालय वही है जो वर्मन - विश्लेषण, सिद्धान्त - विश्लेषण और प्राचीन विषय में खोज का सुगठित कार्यक्रम चलाता है। ऐसी खोज की भाषा अंग्रेज़ी न होकर हिन्दी या हिन्दुस्तान की अन्य भाषा होनी चाहिए। लेखक आशा करते है कि किसी न किसी दिन सभी हिन्दुस्तानियों की मातृभाषा हिन्दी होगी।

उपसंहार

राम मनोहर लोहिया ने भारतीय विश्वविद्यालयों में खोज - कार्य शीर्षक अपने निबंध में कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया है, जो विचारणीय है। विश्वविद्यालय ज्ञान और शक्ति का भण्डार है। वह ऐसी सोद्देश्य जिज्ञासा का भी केन्द्र है जो ज्ञान और शक्ति बढाने की ओर ले जाती है। शोध के बिना विश्वविद्यालय अनाकर्षक है। उनके अनुसार आज भारत जैसे देशों के विश्वविद्यालयों में सामाजिक विषयों में शोध - कार्य की आवश्यकता है। उनका यह भी कहना है कि इस बात के भी सोध - कार्य की ज़रूरत है कि विज्ञान के द्वारा निरन्तर प्रगति और स्मृद्धि बढ़ती है। इसके अलावा प्राचीन के शोध - कार्य की आवश्यकता है। इतिहास भूगोल, पूरा कथाएँ और साहित्य के शोध कार्य के नतीजों को एकत्रित करने की नौबत आयी है। वे आशा प्रकट करते हैं कि कोई दिन ऐसा आएगा जब हिन्दुस्तान के सभी लोगों के लिए हिन्दी मातृभाषा होगी।

बन्दी की चेतना

पं.कमलापति त्रिपाठी

लेखक परिचय

पंडित कमलापति त्रिपाठी प्रमुख राजनीतिज्ञ एवं पत्रकार रहे हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने अपनी तर्क - शक्ति, अनुभव और दूरदृष्टि का परिचय दिया है। पत्रकार के रूप में अपने अनुभवों का आकलन उन्होंने अपनी किताब "पत्र और पत्रकार" में किया है। वे स्वातंत्र्योत्तर युग के सफल निबंधकार भी रहे हैं। "बन्दी की चेतना" निबंध उन्होंने जेल में बैठकर अपने बेटे लाला के नाम पत्र के रूप में लिखा है।

बन्दी की चेतना

"बन्दी की चेतना" पं.कमलापति त्रिपाठी द्वारा लाला जी को लिखा गया एक पत्र है। इसमें उन्होंने नैनी सेंट्रल जेल के अपने अनुभवों को बडी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर त्रिपाठी जी ने कई बार जेल यात्राएँ भी की है। इस बार वे 1942 के "भारत छोडों" आन्दोलन में भाग लेने से जेल में बन्दी हो गये थे।

1942 के नवम्बर महीने में पं.कमलापति त्रिपाढी नैनी सेन्ट्रल जेल में बंदी थे। कारा की कंदरा जैसी कोठरी में बैठकर वे अपने प्रिय पुत्र लाल जी को लिख रहे थे। पहले कोठरी का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि करीब 8 फुट लम्बी और उतनी ही चौडी वह कोठरी छोटी नहीं हैं। उस कमरे में एक छोटी सी है जिसमें मोटे लोहे के छडों जंगला फिट है। प्रवेश द्वार भी मोटे छडों से भरा है। जेल में लोहे का ही साम्राज्य होता है। जँगल, दरवाज़े, ताले, हथकडी, बेडियाँ, पैर में पडे कडे, गले की हंसुलिया से लेकर कायदा कानून तथा अधिकारियों तथा कर्मचारियों के हृदय भी लोहे के लगते हैं। इस लोहे के साम्राज्य में बैठकर त्रिपाठी जी लिखने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्रचण्ड क्रूर शानि का प्रभाव जिस प्रकार हमारी ग्रहदशा पर पड़ता है, उसी प्रकार यह लोहा उनके मस्तक पर सवार कर रहे हैं। लिखने केलिए बैठकर भी क्या और क्यों लिखना है वह तो वे नहीं जानते। पत्र ही नहीं कुछ भी लिखना या पढना इनकेलिए आसान नहीं। राजनीतिक बन्दी होने के कारण सरकार की तरफ से इसकी इजाजत नहीं थी। कोई दर्खास्त देने केलिए भी नियमानुसार कागज और कलम माँगने पड़ते थे।

पत्र लिखने की प्रेरणा

विरोधी द्वन्द्वात्मक तथा रहस्यमय पदार्थों से बना मनुष्य जटिल प्राणी है। विचित्रता में उसके बराबर कोई नहीं। वह अपनी इस छोटे से जीवन में जो कुछ करता है उसका ज्ञान उसे स्वयं नहीं है। उसी तरह कठिन प्रयत्न के बाद लिखने के साधन एकत्र करके लेखक भी सोचने लगे कि क्या करें। प्रबल चाह के मोर कुछ लिख रहा है। तर्क करना मानव स्वभाव की विचित्रता है। सहज प्रवृत्तियाँ उसे प्रेरित करके कठपुतली की भाँति नचाती हैं फिर भी उसकी अनुभूति उन्हें नहीं होती। वह तो अहं के दंभ और व्यक्तित्व के अभिमान से मोहाच्छन्न है। इससे वह सही रास्ता खोजने में असंभव हो जाता है। इसी अहंकर के कारण लेखक ने भी तर्क करके लिखने के अनेक उचित कारण ढूँढ निकाले। त्रिपाठी जी कहते हैं कि वे प्रवृत्तियों की दुर्दान्त शक्ति से वशीभूत होकर अपने हृदय - भार को हल्का करने केलिए लाला जी को लिख रहे हैं। वे लाल को रोगशय्या पर विकल छोडकर गये थे जिससे उत्पन्न हृदय का भार वे हल्का करना चाहते हैं। राग और घृणा के द्वन्द्वों का निवास तथा संघर्ष मानव जीवन की रहस्यमयी ग्रन्थी है जिसके कारणों की व्याख्या में अभी तक न विज्ञान सफल हुआ है न दर्शन। बच्चे को देखने की लालसा के कारण विचित्र प्रकार की कसक और पीडा का अनुभव होता था। लेकिन उस पीडा का उपचार सात तालों में बन्द किसी एक बन्दी केलिए असंभव था। इसलिए वे पत्र द्वारा उसकी कोशिश कर रहे थे।

माता का शुभ्र वात्सल्य मानव की बहुमूल्य निधि है।

आशंका, भय तथा मोहग्रस्त हृदय में गतकालीन स्मृतियां उमड आना स्वाभाविक है। वे स्मृतियां सहज ही भावोदेक जाने किस करने लगेंगी। आठ वर्ष पूर्व की बात है। लाला तब आठ साल का बच्चा था। तब उसकी माँ मौत की घाट में उतरना चाहती थी। उस अन्तिम वेला में त्रिपाठी जी उनके सर के पास बैठकर मृत्यु की अद्‌भुत लीला देख रहे थे। जीवन अपने अन्दर मृत्यु का बीज क्यों लेकर आता है? मृत्यु की क्रूर लीला का लक्ष्य क्या है? आदि प्रश्नों को लेकर वे सोच रहे थे। विचारों में मग्न लेखक ने देखा कि लाला की माँ अपनी आँखें खोलकर कुछ कहने का प्रयास कर रही हैं। उसकी दयनीय स्थिति देखकर पत्थर की भाँति बैठे लेखक के हृदय में धक्का - सा लगा। इस दुःख स्थिति ने उन्हें जड अवस्था में डाला और इसने उन्हें धैर्य प्रदान किया। माँ ने बच्चों का जिक्र किया तो लेखक को लगा कि मातृत्व ही इस क्षतबीक्षत, दुःखपूर्ण धरातल का सर्वोत्तम वरदान है। पवित्रता, सौन्दर्य, सत्य, स्नेह और कला का उच्चतम विकास माँ के हृदय में ही हुआ है, जिसमें सीमा और स्वार्थ नहीं, प्रतिफलाकांक्षा नहीं, माता का यह शुभ्र वात्सल्य मानव की बहुमूल्य विभूति है।

समाज, देश, और संस्कृति केलिए सहायक कार्य करना हरेक भारतीय का कर्त्तव्य है।

लेखक ने माँ के उत्सुक हृदय को आश्वासन देते हुए कहा जब तक वे जीवित हैं तब तक बच्चों का परिपालन करना उनकी एकमात्र साधना होगी। लाल की माँ की आन्तरिक पीडा को कम करने का अवसर मिला यह सोचकर उन्हें बहुत संतोष महसूस हुआ। लेखक के संघर्षात्मक राजनीति का निराकरण नहीं कर सकते यह अपने देश, समाज, संस्कृति केलिए सहायक कार्य करना हर भारतीय का अनिवार्य कर्तव्य है। इससे विमुख होना तो मानवता के प्रति विश्वासघात है। इस कारण वे अनिवार्य कर्त्तव्यों और नियति के बीच तडप रहा थे। संघर्ष के इस बोझ को हल्का करने केलिए ही वे कुछ लिखना चाहते थे।

जिन्दगी ही सबसे बडी पुस्तक है।

लाल केलिए केवल एक पत्र लिखना लेखक केलिए सरल था लेकिन पत्र उसके काम का भी होना चाहिए,क्योंकि लाल जीवन के उस काल में थे जिसे विकास का काल कहते थे। इस काल में स्वतंत्रता और प्रौढ विचार करने की शक्ति नहीं होती और न स्थिरता तथा विवेक का विकास होता है फिर भी मनुष्य के आनेवाले समस्त जीवन के निर्माण का बीज इस समय में बोया जाता है। स्वच्छ और निर्मल मस्तिष्क और हृदय में बाह्य परिस्थितियो तथा आन्तरिक भावों की छाया पडती है और ये प्रतिबिम्बित भी होती है। ये उनकेलिए संस्कार बन जाते हैं जो जीवनपर्यन्त साथ रहते हैं। ये भावना, स्वभाव, चरित्र, प्रवृत्ति आदि को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रभावित करते रहते हैं। इसलिए लेखक ऐसा कुछ लिखना चाहते थे जिससे उनके हृदय का भार हल्का हो जाए साथ ही जीवन के अनुभवों के प्रभाव से चरित्रनिर्माण और भावी जीवन संघर्ष में कुछ मदद कर सकें। इस दुनिया में पढ़ने को कुछ नहीं। पर सबसे बडा ग्रन्थ जीवन है जिसका अध्ययन करने की ओर कोई ध्यान नहीं देता। मनुष्य तो बडे - बडे रहस्यों की खोज में लगे रहते हैं पर सबसे अधिक स्पष्ट और अधिक निकटवाले जीवन की गुत्थियों के बारे में उन्हें या तो अधिक मालूम नहीं हैं या अधिक जानने की चेष्टा करते हैं।

लिखना लेखक का पेश है और यह आदत ही उन्हें लिखने केलिए बाध्य करती है। दुनिया में घटनाएँ ऐसी घटती हैं जिसके बारे में लिखी पंक्तियों की स्याही सूखने से पहले विपरीत परिस्थिति बडी होती है, जिससे संपादक को इतना समय नहीं मिलता कि वह आराम से बैठकर कुछ काम करे। बाहर तो लिखने केलिए इतनी घटनाएँ हैं पर यहाँ इस कोठरी में जीवित रहते हुए भी शव हो गया है। यौवनारंभ के किशोर को मित्र समझना चाहिए और उसके साथ ऐसा व्यवहार भी होना चाहिए। इसलिए जो कुछ लिखेगा मित्र के नाते होगे और ऐसा ही समझना। किसी क्रम या व्यवस्था के बिना जो कुछ मन में आयेगा वही लिखेगा। इतना लिखकर लाल केलिए लेखक का यह पत्र समाप्त होता है।

उपसंहार

बन्दी की चेतना पं.कमलापति त्रिपाठी का एक आकर्षक निबंध है। इसकी रचना उन्होंने पत्र शैली में की है। वास्तव में यह अपने बेटे लाल को लिखा एक पत्र है। जेल में कैद लेखक ने अपनी आन्तरिक पीडा को कम करने केलिए यह पत्र लिखा। उन्होंने मृत्यु शय्यों में पडी अपनी पत्नी को बच्चों की देखभाल और परवरिश का वादा दिया था। लेकिन स्वतंत्रता संग्राम से जुड कर वे अपना वादा पूरा नहीं कर सके। इस बीच वे जेल में बन्द हो गये। वे अनुभव करते हैं कि अपनी पत्नी को वादा देकर उसकी आन्तरिक पीडा को कम करने का अवसर उन्हें मिला है। उन्हें लगता है कि माता का शुभ्र वात्सल्य मानव जीवन की बहुमूल्य निधि है। वे अपने बेटे को उपदेश देते हैं कि जीवन ही सबसे बडी पुंस्तक है। देश प्रेमी होने के नाते उनका कथन है कि संकट और दुःख के प्रचण्ड आघात से हमें न टूट जाना चाहिए।

झूठ बोलने की कला

इन्द्रनाथ मदान

लेखक परिचय

डॉ. इन्द्रनाथ मदान स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख निबंधकार और आलोचक हैं। उन्होंने साहित्य को किसी वाद - विशेष के ज़रिए आंकलित नहीं किया। कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि से संबद्ध उनकी कई पुस्कें हैं - "प्रेमचंदः एक विवेचन", "आलोचना और काव्य", "आधुनिक कविता का मूल्यांकन", "हिन्दी साहित्य समकालीन परिदृश्य" आदि उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। "झूठ बोलने की कला" उनका एक प्रमुख निबंध है। व्यंग्य धर्मिता इस निबंध की सबसें बडा विशेषता है।

इस निबंध में लेखक ने झूठ बोलने को एक कला के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। लेखक ने झूठ बोलने को अन्य कलाओं से कठिन माना है। झूठ बोलना आदि काल से कलात्मक रहा है। झूठ और झूठ बोलने में भारी अन्तर रहता है। झूठ बोलने केलिए अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक साधना की ज़रूरत है। लेखक ने सत्यावादी युधिष्ठिर को लेकर कहा है कि झूठ बोलना और वास्तविकता को छिपाना दोनों समान है।

झूठ के विभिन्न नाम और रूप

झूठ बोलने केलिए किसी एक कला का आश्रय लेना पड़ता है। झूठ बोलने के अनेक नाम तथा रूप हैं। इसको सिद्ध करने केलिए सब शक्तियाँ जैसे कल्पना - शक्ति, स्मरण - शक्ति और अभिव्यंजना शक्ति को संचय करना चाहिए, जो अन्य कलाओं केलिए उतना आवश्यक नहीं। इनके समन्वित उपयोग से ही झूठ बोलने में कुशलता हासिल की जा सकती है। किसी योगी या प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ही झूठ बोलने का जोखिम उठा सकता है। झूठ बोलने केलिए कल्पना - शक्ति, अभिव्यंजना शक्ति और स्मरण शक्ति की आवश्यकता है। इन में किसी शक्ति का अभाव है तो वह झूठ भी नहीं रह जाएगा। सत्य बोलने केलिए स्मरण शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन मिथ्यावादी की स्मरण शक्ति तेज़ होनी चाहिए। यदि झूठ पकडा जाए तो बदनाम हो जाएगा साथ ही असफल कलाकार बन जाएगा। इसलिए इन तीनों शक्तियों के समन्वित उपयोग करना इस कला केलिए आवश्यक है।

झूठ की कला का क्षेत्र और झूठ के विभिन्न रूप

इस कला के क्षेत्र विस्तृत है। झूठ बोलने केलिए झूठ बोलने वाले की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शैलियाँ चुन सकते है। इसमें कलाकार का व्यक्तित्व झलकता है। लेखक ने सुविधानुसार झूठ को शुद्ध झूठ, अशुद्ध झूठ, और मिश्रित झूठ आदि तीन रूपों में विभक्त किया है। शुद्ध झूठ में कल्पना शक्ति की अधिक अपेक्षा होती है। और इसमें वास्तविकता का नितान्त अभाव है। इसे सफेद झूठ भी कहा जाता है, साहित्यिक क्षेत्र में परियों की कथाएँ इसके उदाहरण हैं। अशुद्ध झूठ केलिए स्मरण शक्ति की अधिक अपेक्षा होती है इसमें वास्तविकता का पुट होता है और यह सत्य के निकट होता है। यथार्थवादी साहित्य इसका उदाहरण है। शुद्ध और अशुद्ध झूठ का मधुर मिलन से बने झूठ मिश्रित झूठ है। इससे सत्य झूठ लगता है और झूठ सच का अभास देता है। परियों का चित्रण शुद्ध झूठ और शेक्सपियर एवं कालिदास के नाटकों में समन्वित जीवन का चित्रण मिश्रित झूठ है। झूठ बोलने को कल्पना - शक्ति, अनुभव सम्पन्न तथा समन्वयसील प्रतिभा की

आवस्यकता है। आधुनिक युग में मिश्रित झूठ बोलने की कला का ह्रास हो रहा है। अशुद्ध झूठ विकसन शील रहा है। विज्ञान ने शुद्ध झूठ को समाप्त कर दिया है।

झूठ बोलने के तीन रूप साहित्य - क्षेत्र में उपलब्ध है लेकिन जीवन में इसके अनेक रूप मिलते हैं।

झूठ की प्रेरक शक्तियाँ

झूठ की प्रेरक शक्तियाँ अनेक हैं जो मनोवैज्ञानिक और सामाजिक हैं जैसे अहं की तुष्टि, स्वार्थ की सिद्धि, आत्मरक्षा की भावना, हीनता की ग्रन्थी, समाज का भय, यश की कामना आदि। झूठ बोलना जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए सच कहने केलिए इतने उपदेश दिये गए हैं। कलाओं के समान झूठ बोलने में भी रस की अनुभूती होती है। झूठ के बिना जीवन नीरस है। झूठ बोलनेवाले और सुननेवाले दोनों खुश होते हैं। कला का उद्देश्य ही हृदय का विस्तार और बुद्धि का परिष्कार करना है। इसलिए झूठ बोलना और प्रिय झूठ बोलना एक कला है। अनृतं बूयात प्रियं बूयात यानि अप्रिय सत्य न बोलना। झूठ अप्रिय भी होता है इसकी अभिव्यक्ति निन्दा द्वारा होती है। आजकल निनादा को भी रसों की कोटी में रखने का प्रयास हो रहा है। झूठ बोलने को कला के रूप में स्वीकार करने में इतनी अधिक बाधायें नहीं है। इसकी उपलब्धि आदिकाल से चल रही है। झूठ बोलने का अभी तक काव्य शास्त्र नहीं लिखा गया है, पर इसके सूत्र साहित्य और जीवन में भी मिलता है। सत्य और माया झूठ है। सत्य ज्ञान - विज्ञान का विषय है और माया या झूठ साहित्य या कला का विषय है। जीवन में माया का स्थान है साहित्य में झूठ का। झूठ बोलना कला तक सीमित नहीं है, उसका विस्तार जीवन में भी पाया जाता है, वह स्वयं एक कला है।

उपसंहार

"झूठ बोलने की कला" शीर्षक व्यंग्य - निबंध में इन्द्रनाथ मदान ने झूठ को एक कला के रूप में प्रस्तुत करके उसके विविध रूप, उसकी प्रेरक शक्तियों की चर्चा करने की कोशिश की है।

चिन्तामणि - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

पाठ्य निबंध - 1. भाव या मनोविकार
2. उत्साह
3. श्रद्धाभक्ति

लेखक परिचय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य के शीर्षस्थानीय निबंधकार हैं। उनके साथ ही हिंदी निबंध साहित्य में एक नये युग की शुरुआत होती है। उनकी साहित्य साधना का युग हिंदी निबंध का स्मृद्धिकाल है जिसे "शुक्ल युग" कहलाता है। यह हिन्दी निबंध की पूर्ण परिपक्वता का काल है। शुक्ल जी के निबंध अन्तःप्रयास से निकली हुई सहज विचारधारा के प्रतिरूप हैं। उनके आगमन से हिंदी - जगत् को नयी अनुभूति, नये विचार और नयी भावाभिव्यक्ति शैली के दर्शन हुए। उन्होंने मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक तथा सैद्धान्तिक सभी प्रकार के निबंध लिखे। इन तीनों प्रकार के निबंध "चिन्तामणि" में संकलित हैं। डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है - (चिन्तामणि के निबंधों में एक ओर चिन्तन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता एंवं प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है तो दूसरी ओर उनमें लेखक की वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता का दर्शन भी स्थान - स्थान पर है। उनके निबंधों में विषय और व्यक्ति का ऐसा समन्वय हुआ है कि इस बात का निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उन्हें विषय प्रधान कहें?

शुक्लजी के निबंध चिन्तामणि -1 और चिन्तामणि - 2 में संकलित हैं। चिन्तामणि -। में कुल सत्रह निबंध हैं। इन्हें क्रमशः तीन भागों में बाँट सकते हैं - (1) भाव या मनोविकारों से संबंधित निबंध (2) काव्य - शास्त्र से संबंधित निबंध, और (3) समीक्षा से संबंधित निबंध। चिन्तामणि - 2 में कुल 3 निबंध हैं और तीनों आलोचनात्मक हैं - काव्य में प्राकृतिक दृश्य (2) काव्य में रहस्यवाद और (3) काव्य में अभिव्यंजनावाद। 1983 में चिन्तामणि का तीसरा भाग भी नामवरसिंह के संपादन में प्रकाशित हुआ। इनमें संकलित उनके मनोवैज्ञानिक निबंधों में लोभ, प्रीति, ईर्ष्या, श्रद्धा और क्रोध आदि में सामाजिक व्यावहारिकता, साहित्यिकता और मनोविश्लेषण की सूक्ष्मता साथ - साथ चलती है। इस प्रकार शुक्लजी ने सामाजशास्त्री, मनोविज्ञानेवता और साहित्यकार तीनों के कार्य की पूर्ति सफलतापूर्वक की है। "कविता क्या है", साधारणीकरण और "व्यक्ति - वैचित्र्यवाद", "रसात्मकबोध के विविध रूप", काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था तथा भारतेन्तु हरिश्चन्द्र आदि सैद्धान्तिक और साहित्यालोचनात्मक निबंध हैं। इन निबंधों में उनकी अपूर्व प्रतिभा और मौलिक चिन्तन दर्शनीय है। इसमें विचार सघनता के साथ - साथ रसधारा भी चलती रहती है।

शुक्लजी जीवन से अध्यापक, मस्तिष्क से आलोचक, और हृदय से कवि हैं। उनके निबंधों में पर्याप्त मौलिकता, स्पष्टता और रोचकता है। सूत्र, व्याख्या और निस्कर्ष उनके निबंधों का सार है। इसलिए डॉ. विजयशंकर मल्ल ने शुक्लजी की इन विशेषताओं को इन मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत किया है -"उनके निबंधों में गहन विचार - वीथियों के बीच में सरस भाव - स्रोत मिलते हैं। "लोभ और प्रीति" करुणा और श्रद्धा भक्ति जैसे निबंधों में जगह - जगह उनकी तन्मयता देखने योग्य हैं। वैयक्तिकता का प्रदर्शन, संस्मरणात्मक संकेत, व्यंग्य - विनोद की छीटें और कहीं - कहीं विषयान्तर भी उनके निबंधों में मिलते हैं, पर प्रतिपाद्य विषय को वास्तव में वे कभी भूलते नहीं, उनकी विचारधारा बराबर प्रतिपाद्य विषय से नियंत्रित होती है"।

1. भाव या मनोविकार

इन निबंध में शुक्लजी ने भाव या मनोविकार का समाज - सापेक्ष और संसार - सापेक्ष विवेचन प्रस्तुत किया है। मनुष्य जीवन का प्रारंभ सुख और दुःख के समान्य ज्ञान से होता है। बच्चे का रोना और हंसना उसकी ज्ञान परिचायक है। इसी सामान्य ज्ञान को अनुभूति भी कहते हैं। अनुभूति दो प्रकार की होती हैं - सुखात्मक और दुःखात्मक। इन अनुभूतियों को उन्होंने "अनुभूति का द्वन्द्व" या एक "जोडी अनुभूति" कहा है। अनुभूति का यह द्वन्द्व या जोड़ा प्रत्येक प्राणी में जन्म से ही पाया जाता है। अर्थात् अनुभूति जीवन का लक्षण है। जहाँ जीवन होगा वहाँ अनुभूति होगी और जहाँ अनुभूति होगी वहाँ जीवन भी। जीवन या प्राण के बिना अनुभूति संभव नहीं और अनुभूति हीन जीवन संभव नहीं। इसलिए उन्होंने लिखा अनुभूति के द्वन्द्व ही से प्राणी के जीवन का आरंभ होता है। यानी सुखात्मक और दुःखात्मक अनुभूतियों से ही जीवन का आरंभ होता है। आगे चलकर जीवन काल में इन्हीं सुखात्मक और दुःखात्मक अनुभूतियों के मेल से भावों या मनोविकारों का संघटन होता है।

शुक्लजी मनोविकार की परिभाषा देते हुए लिखा है - नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे संबंध रखनेवाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के वे भिन्न योग संघटित होते हैं, जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं।

शुक्ल जी के अनुसार कोई भी प्राणी, मनुष्य भी, जन्म से ही भावों या मनोविकारों से युक्त नहीं होता। भावों या मनोविकारों का जन्म और विकास प्राणी के जन्म के बाद जीवन की प्रक्रिया का दौरान समाज के बीच होता है।

प्रारंभ में बच्चे में सुख और दुःख सामान्य अनुभूतियाँ मात्र होती है, भाव या मनोविकार नहीं होते। पेट के भरने पर उसे सुख की अनुभूति होती है और खाली होने पर दुःख की। उसका हंसना या रोना इन्हें दोनों अनुभूतियों के चिह्न हैं। ये अनुभूतियाँ प्रारंभ में बिलकुल सामान्य रूप में ज्ञानपूर्वक उन्मुख नहीं होतीं। शुक्ल जी ने इसी सामान्य अनुभूति को "मूल अनुभूति" कहा है। सुख- दुःख की मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार प्रेम उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है। सूत्ररूप में भाव या मनोविकार मूल या सामान्य अनुभूति के ही जटिल रूप हैं। यद्यपि भाव या मनोविकार मूल अनुभूतियों के ही जटिलरूप होती हैं, फिर भी उनमें अन्तर होता है। मूल अनुभूति और भाव के अन्तर को आचार्य शुक्ल ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि - जैसे यदि शरीर में कोई सूई चुभने की पीडा हो तो केल सामान्य दुःख होगा, पर यदि साथ ही यह ज्ञात हो जाय कि सूई चुभानेवाला कोई व्यक्ति है, उस दुःख की भावना कई मानसिक और शारीरिक वृत्तियों के साथ संश्लिष्ट होकर उस मनोविकार की योजना करेगी, जिसे क्रोध कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि दुःख की मूल अनुभूति के आधार पर ही क्रोध का विकास होता है - पर क्रोध दुःख की सामान्य या मूल अनुभूति मात्र नहीं है।

"क्रोध" की ही भाँति शुक्लजी ने "दया" या "करुणा" का भी विकास दिखाया है। पहले बच्चे को अपने दुःख का ज्ञान होता है, दूसरों के दुःख का नहीं। बढने पर असंलक्ष्यक्रम अनुमान द्वारा उसे और बच्चों का कष्ट अथवा रोना देखकर भी एक विशेष प्रकार का दुःख होने लगता है जिसे "दया" या "करुणा" कहते हैं। असंलक्ष्यक्रम अनुमान का अर्थ है ऐसा अनुमान या निष्कर्ष जिसके विभिन्न सोपानों का क्रम दिखाई नहीं पड़ता। अनुमान में क्रम अनिवार्यतः होता है पर असंलक्ष्यक्रम में यह क्रम दिखलाई नहीं पड़ता। जब तक बच्चें में अनुमान की शक्ति नहीं विकसित होती तब तक उसमें दया करुणा का भाव नहीं जाग सकता।

CUP/8647/11/500/SDE—8

भय

इसी प्रकार भय के विकास के विषय में शुक्लजी ने कहा है कि निश्चयात्मिकता बुद्धि के विकसित हो जाने पर ही भय का उदय बच्चे में होता है उससे पहले नहीं। बहुत छोटे बच्चे को कुछ भी भय नहीं होता। यहाँ तक कि उसे मारने के लिए हाथ उठाए तो भी वह विचलित नहीं होगा। वह यह निश्चय नहीं कर सकता कि इस हाथ उठाने का परिणाम दुःख होगा। इसी प्रकार अन्य भावों का विकास वे मानते हैं।

मनोविकारों की विकास - प्रक्रिया

मनोविकारों के विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि मनोविकारों की अनेक रूपता का विकास - विषयबोध की विभिन्नता और उस विषय - बोध से संबंधित इच्छाओं की विभिन्नता के अनुसार होता है।

सुख और दुःख की मूल अनुभूतियाँ कुछ बन्धी हुई शारीरिक क्रियाओं को जन्म देती हैं जिन्हें मूल प्रवृत्तियाँ कहते हैं। विशुद्ध सुख की अनुभूति में मनुष्य हंसता है, कूदता है या सुख पहूँचनेवाली वस्तु से लगा रहता है। इसी प्रकार विशुद्ध दुःख की अनुभूति होने पर मनुष्य हाथ - पैर पटकता है, रोता है, या दुःख पहूँचनेवाली वस्तु से हटता है। शुक्ल जी का कहना है कि ये शारीरिक क्रियाएँ सुख और दुःख के अनिवार्य लक्षण मात्र हैं। इन्हें हम प्रयत्न नहीं कह सकते। इसलिए ये किसी प्रकार की इच्छा का पता नहीं देती। इच्छा के बिना कोई शारीरिक क्रिया प्रयत्न नहीं कहला सकती।

भावों या मनोविकारों के विकास के साथ मनुष्य बंधी - बंधायी शारीरिक क्रियाओं से आगे बढ़कर प्रयत्नपूर्वक क्रियाएँ करता है। इनसे उसकी इच्छाओं का बोध होता है। भागना, छिपना या मारना, झपटना आदि प्रयत्न हैं जो इच्छा के स्वरूप का पता देते हैं। शुक्लजी का कथन है कि सभ्य जातियों के बीच इन प्रयत्नों का स्थान बहुत कुछ शब्दों ने ले लिया है। अतः मुँह से निकले हुए बचन ही अधिकार भिन्न - भिन्न इच्छाओं का पता देकर भावों की व्यंजना किया करते हैं।

इच्छापूर्वक की गई शारीरिक क्रियाएँ या प्रयत्न ही जीवन के आधार हैं। शुक्ल जी ने बिलकुल सही स्थापना की है "समस्त मानव जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं"। इस प्रकार मानव जीवन के विकास में मनोविकारों की अहम भूमिका है। भाव या मनोविकार समाज और जीवन में उत्पन्न होते हैं और बदले में समाज और जीवन को प्रेरित करते हैं। शुक्लजी के अनुसार मानव चरित्र के आधार भी भाव या मनोविकार है। उन्होंने लिखा है - "शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए"। लोक - रक्षा, और लोक - रंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है। धर्मशासन, राजशासन मतशासन सब में इनसे पूरा काम लिया जाता है।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि समाज में मनोविकारों के दोनों अच्छे तथा बुरे उपयोग किये जाते हैं। जहाँ कि एक ओर तो लोक - कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति के हेतु उसे संगठित कर सुंदरता का रूप प्रदान किया गया, वहाँ दूसरी ओर भावों से प्रेरित होकर समाज में कई संप्रदाय भी बन गये तथा इस सांप्रदायिकता के सीमित क्षेत्र में फंसकर भावों का क्षेत्र भी संकीर्ण हो गया। शुक्ल जी ने भाव क्षेत्र को अत्यन्त पवित्र क्षेत्र माना है तथा उसका इस प्रकार से दुरुपयोग करना उसकी दृष्टि में विश्व के प्रति एक भयंकर अपराध है।

शासन, व्यक्ति को केवल इतना ही सिखाता है कि उसे कोई कार्य किस प्रकार करना चाहिए। इस प्रकार वह केवल बाहरी नियमों तथा विधानों से संबंध रखता है और मूल निवृत्ति तथा प्रवृत्ति को हमेशा जागरूक रखती है। धर्म के क्षेत्र में भक्ति - भावना को भी वही उत्पन्न करती है। आचार्य शुक्ल ने भक्ति को धर्म की रसात्मक अनुभूति माना है और इसी रागात्मकता के आधार पर ही मनुष्य अपने सुख - दुःख को संसार के सुख - दुःख केसाथ एकाकार कर पाता है तथा उसी स्थिति में वह चराचर, पेड़ - पौधे, पशु - पक्षी तथा प्राणियों के भावों को अपना भाव समझने लगता है। कविता इसी रागात्मक संबंध की स्थापना करती है तथा सच्चे कवियों के काव्यों में हमें इसी बात की प्रेरणा भी मिलती है।

उपसंहार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के निबंधों में मनोविज्ञान और समाजशास्त्र संश्लिष्ट हैं। इस निबंध में भी उन्होंने भावों या मनोविकारों की समाजाश्रित व्याख्या ही प्रस्तुत की है। साथ ही उन्होंने उन्हें समस्त मानव जीवन का प्रवर्तक कहकर जीवन के आधार रूप में प्रतिष्ठित किया।

2. उत्साह

भाव या मनोविकार के सामान्य स्वरूप को निरूपित करने के बाद शुक्लजी ने "उत्साह" का विवेचन किया है। उनके अनुसार "साहसपूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है"। इस परिभाषा से जाहिर है कि उत्साह में दो तत्व होते हैं - (1) आनंद की उमंग और (2) साहस। आगे चलकर उन्होंने लिखा हैं - उत्साह एक यौगिक भाव है जिसमें आनंद और साहस का मेल रहता है। आनंद की उमंग का अर्थ है आनंदमयी कर्मणा यानी काम करने की ऐसी इच्छा जिसमें अनंद का योग हो। जब आनंद की उमंग के साथ साहस का योग होता है तो वह उत्साह कहलाता है। काम की चुनौती के सामने होने पर उसे करने केलिए कुछ लोगों में उमंग उठती है। यदि काम कठिन हो तो उसे करने केलिए साहस की भी ज़रूरत पड़ती है। साहस के मेल से आनंद की मेल ही उत्साह बन जाती है। साहस उत्साह का अंग है, लेकिन स्वयं उत्साह नहीं। साहस के बिना उत्साह नहीं हो सकता पर साहस को उत्साह नहीं कह सकते। शुक्ल जी इन दोनों का अन्तर इस प्रकार दिखाया है - "बिना बेहोश हुए भारी फोडा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं"। साहस से मिलता - जुलता भाव धीरता (धृति) है। साहस और धीरता के अन्तर को शुक्लजी ने इस प्रकार समझाया है - "चुप - चाप, बिना हाथ - पैर हिलाये, घोर, प्रहाल सहने केलिए तैयार रहना साहस और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जाएगी"।

उमंग और उत्साह का संबंध कर्म से होता है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने कहाः "कर्म - सौन्दर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं"। काम करने में पूरी तत्परता और आनंद के लक्षण उत्साह के मूल चिह्न हैं। उत्साह में मनुष्य हर प्रकार की हानि और कष्ट को सहन करने केलिए हमेशा तत्पर रहता है। इसी कष्ट हानि को ध्यान में रहकर साहित्य मनीषियों ने उत्साही को युद्ध वीर, दानवीर तथा दयावीर नायक तीन श्रेणियों में रखा है।

उत्साह केलिए कष्ट और हानि के साथ आनंदपूर्वक प्रयत्न का होना ज़रूरी है। उदारहणार्थ - किसी भी दानी की दानवीरताकी उच्चता इसी में है कि वह आर्थिक कष्टों का अनुभव करते हुए प्रसन्न मन से पूरी तत्परता के साथ दान करे। यदि दान प्रसन्नतापूर्वक न किया जाये तो वह दान

उच्च श्रेणी का न होगा और न तब उसे उत्साह भी नहीं कहा जा सकता। युद्ध के अतिरिक्त अन्य कार्यों में जिनमें कि प्राण जाने की सहज संभावना रहती है, जैसे - अनुसंधान के हेतु हिमाच्छादित पहाड़ों पर चढ़ना, रेगिस्तान तथा जंगली जानवरों वाले भयानक जंगलों को पार करना आदि भी उत्साह के अन्तर्गत आते हैं। आचार्यशुक्ल ने उत्साह के क्षेत्र को अत्यन्त विस्तृत और व्यापक माना है। उनके अनुसार शारीरिक कष्ट के अतिरिक्त मानसिक कष्ट की संभावना स्वरूप किसी कार्य में संलग्न रहना उत्साहकहलाता है। यही कारण है कि बहुत से लोग मानसिक कष्ट या संसार की उपेक्षा करते हुए भी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने केलिए हेशा तैयार रहते हैं। परन्तु जो लोग फल के शुभ - अशुभ का विचार न कर केवल यश प्राप्ति के छिछले लोभ - वश अपने को ऐसे काय्रों में संलग्न कर देते हैं, वे लोग उत्साही नहीं कहलाते। इस प्रकार समाज में उच्च आदर्शोंवाले व्यक्तियों के साथ - साथ ढ़ोंगी भी होते हैं। शुक्ल की राय में साहित्य के क्षेत्र में इसी प्रकार से सुधार के नाम पर अनेक भ्रमपूर्ण विवाद मिलते हैं। वही उत्साह सबसे सुन्दर होता है जो मनुष्य को सदा ही कर्म करने केलिए प्रेरणा देता रहता है तथा वह उत्साह प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता जो कि उसे निरर्थक कर्म करने की प्रेरणा देता है। उत्साह केलिए कर्म करने की भावना का होना आवश्यक है जिसमें कि साहस तथा आनंद का पारस्परिक योग रहता है।

आनंद के तीन रूप

शुक्ल के विचार में कर्म की भावना से उत्पन्न आनंद के तीन मुख्य रूप हैं - (1) कर्म भावना से उत्पन्न आनंद (2) फल - प्राप्ति की इच्छा से उत्पन्न आनंद और (3) विषयांतर या आगन्तुक सेप्राप्त होनेवाला आनंद। इन में कर्मभावना से प्राप्त आनंद ही सर्वोच्च श्रेणी का आनंद है क्यों कि फल के बारे में न सोचता है बल्कि कर्म को ही अधिक महत्व देता है।

किसी भी काम को करने में मनुष्य जितना अधिक कर्मभावना को महत्व देता है, उसे वह काम करने में उतना ही अधिक आनंद भी मिलता है। इसके अलावा फल - भावना से प्रेरित होकर किये गये काम से प्राप्त आनंद में एकरूपता (समानता) नहीं होती क्योंकि वह बहुत कुछ कार्य से प्राप्त फल के उभर निर्भर करता है। फल प्राप्त होने की आशा में बढता और न प्राप्त होने की निराशा में घटता भी रहता है। कभी - कभी फल के मिलने पर व्यक्ति उदास भी हो जाता है। लेकिन कर्म - भावना से आनंद सदा बना रहता है क्योंकि उसमें तो व्यक्ति का ध्यान मूलतः उससे प्राप्त फल पर न रहकर कर्म पर ही रहता है। इसलिए आचार्य शुक्ल ने भी उसी उत्साह को सच्चा तथा श्रेष्ठ बतलाया जिसका मूल आधार कर्म - भावना रहे।

फल तथा कर्म की सम्मिलित भावना का नाम उत्साह है। मनुष्य उसी से प्रेरणा पाकर कर्म करने केलिए सदा इच्छुक रहता है। फल - भावना से भी मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करता है और इसके फलस्वरूप वह कार्य करने को उद्दत होता है परन्तु सफलता पाने केलिए सिर्फ फल पर ध्यान रखने से काम नहीं सिद्ध हो है। फल की सिद्धि तो कर्म के माध्यम से ही की जा सकती है। प्रयत्न तब तक प्रयत्न नहीं कहला सकता जब तक कि वह कर्म रुचि युक्त न हो तथा मनुष्य को उन कर्मों से फल - प्राप्ति की आशा कभी भी न करना चाहिए जो रुचि से रहित हो।

शुक्लजी की दृष्टि में उस कर्म पर विशेष रूप से रहना चाहिए जो कि उसके सामने उपस्थित हो। कर्म - भावना से प्रेरित होकर जब कोई मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक काम करता चलता है और उस स्थिति में यदि उसे फल की प्राप्ति नहीं भी होती तो भी उसे किसी विशेष दुःख का अनुभव नहीं होता क्योंकि कर्म करते समय वह आनंद का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त

अन्त में यदि उसे फल भी न मिले तब भी वह इस बात से सन्तोष प्राप्त करता है कि उसने प्रयत्न तो किया तथा इस रूप में वह उन अकर्मण्य व्यक्तियों से कई गुना अधिक श्रेष्ठ होता है कि प्रयत्न करते ही नहीं।

वास्तव में फल उसी दिशा में प्राप्त होगा जबकि किये गये प्रयत्न अनुकूल हो। शुक्ल जी ने प्रयत्न के संबंध में अपना मत यों प्रस्तुत किया है - "बुद्धि द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित की गई व्यापार परंपरा का नाम ही प्रयत्न है। फल इन प्रयत्नों के अनुसार ही प्राप्त होते हैं"।

अनुकूल प्रयत्न करने पर भी यदि मनुष्य को फल की प्राप्ति नहीं होती है तब भी वह अपने में एक प्रकार के संतोष का अनुभव करता है। उदाहरण केलिए किसी व्यक्ति के बीमार पड़ जाने पर उसकी उचित सेवा - सुश्रुषा करने, चिकित्सक को बुलाने और दौड़ - धूप करने पर भी यदि वह रोगी मर जाता है तब भी सेवा करनेवाले के मन में एक सन्तोष तो बना ही रहता कि उसने अपने कर्त्तव्यों का समुचित पालन तो कर ही दिया और सन्तोष का यही भाव एक प्रकार के आनंद तथा उसकी आत्मा को शान्ति का अनुभव करायेगा और उस व्यक्ति के द्वारा किये गये ये सारे प्रयत्न भी अनुकूल प्रयत्न ही माने जाएँगे।

वास्तव में कर्मवीर वे हैं जो सदैव कर्म करने में ही रत रहते हैं। ऐसे मनुष्य धार्मिक तथा उदार प्रकृतिवाले होते हैं और लोकोपचार संबंधी किये गये कामों में आनंद की प्राप्ति का अनुभव करते हैं और वे लोग ऐसे कार्यों में ही फल- प्राप्ति को मान लेते हैं। उनके अनुसार फल का कोई मूल्य नहीं होता और कार्य करने में तत्परता का होना मूल बात है। ऐसे लोग ही सच्चे अर्थों में कर्मवीर होते हैं।

व्यक्ति को अपना मन सदैव उत्साह से भरपूर रखना चाहिए क्योंकि उसी स्थिति में वह अन्य कामों को करने में उत्साह का प्रदर्शन कर सकेगा चाहे मूल कारण कुछ भी हो। जब मनुष्य यह देखता है कि उसका कोई बहुत बडा तथा महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हो गया तो फिर वह उन अन्य दूसरे कर्मों को करने में हर्ष तथा तत्परता दिखलाता है जो कि उसके सम्मुख आते हैं। इसे भी उत्साह ही कहेंगे। उत्साह के अतिरिक्त दूसरे मनोविकारों में भी इस प्रकार के मनोभाव की उपलब्धि होती है। जैसे क्रोध की अवस्था में मनुष्य कभी - कभी उस व्यक्ति पर भी खीझने लगता है जिसका कि उससे कोई संबंध नहीं होता है। इसलिए यह सत्य है कि यदि हमारा चित्त उत्साही हो और मन हर्ष पूर्ण हो तो हम अनेक कार्यों को सफलतापूर्वक आनंद और उत्साह के साथ कर सकते हैं।

उत्साह का संबंध मनुष्य के समस्त कार्य - व्यापारों यानी कर्मसमष्टि से होता है। अतः मनोविकारों के सामान्य विवेचन के उपरान्त शुक्ल जी ने उत्साह की चर्चा की है, जो बहुत ही वाजिब (उचित) है।

3. श्रद्धा - भक्ति

"श्रद्धा - भक्ति" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का एक उल्लेखनीय निबंध है। श्रद्धा और प्रेम के मेल से भक्ति का उदय होता है। उनके अनुसार श्रद्धा एक आनंदपूर्ण पद्धति है।'

श्रद्धा

जिस प्रकार के भाव मनुष्य के मन में किसी व्यक्ति विशेष के किसी असाधारण गुण या शक्ति को देखकर उठते हैं, उन्हें श्रद्धा का नाम दिया गया है। श्रद्धा उसी व्यक्ति के प्रति भी होती

है जो बडे परोपकारी विद्वान, गुणवान, सज्जन, दानी अथवा वीर हो। अपनी श्रद्धा के पात्र की प्रशंसा सुनकर हर्ष तथा आदर के भाव का उत्पन्न होना अथवा निन्दा और बुराई को सुनकर क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। इसलिए शुक्ल जी का यह कहना उचित जान पड़ता है कि "जिन कार्यों के प्रति श्रद्धा होती है, उनका होना संसार को वांछित है। यदि विश्व कामना श्रद्धा का मूल है"।

श्रद्धा और प्रेम

भक्ति का संघटन प्रेम और श्रद्धा के मिश्रण से होता है। इसलिए शुक्ल जी ने श्रद्धा और प्रेम का विवेचन किया है। प्रेम भी आनंदपूर्ण भाव है, जो श्रद्धा से भिन्न है। दोनों के अन्तरों को शुक्ल जी ने बहुत ही विस्तार से समझाया है। उनके अनुसार श्रद्धा की तुलना में प्रेम का क्षेत्र सीमित है - "श्रद्धा का व्यापार स्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त"। प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार। प्रेम तो किसी व्यक्ति के बाह्य - सौन्दर्य, रूप - रंग आदि को देखकर किया जा सकता है जबकि श्रद्धा का पात्र तो वह उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने किसी विशेष गुण के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर हमें प्रभावित न कर लें।

श्रद्धा में प्रेम की अपेक्षा विस्तार अधिक होने के कारण कर्म को अधिक महत्व दिया जाता है। प्रेम का क्षेत्र सीमित होने के कारण ही प्रेमी अपने प्रिय के साथ - साथ स्वप्न लोक में विचरण भी करता है जबकि श्रद्धालु तथा श्रद्धेय के मध्य यह संभव नहीं है। इसलिए वह अपने श्रद्धेय के महत्व को इस विस्तृत जगत को ध्यान में रखकर ही जान पाता है। इसी से ने लिखा है - श्रद्धा जागरण है। प्रेमी और प्रिय ही प्रेम में दो मूल पक्ष होते हैं जबकि यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा में श्रद्धालु, श्रद्धेय तथा कर्म नामक तीनों पक्षों का होना आवश्यक है। प्रेम करने का कोई विशेष महत्वपूर्ण तथा स्पष्ट कारण नहीं होता जबकि श्रद्धा करने का कारण स्पष्ट रूप से ज्ञात है अर्थात्, श्रद्धा का कारण स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्दिष्ट होता है।

श्रद्धा में कर्म का तथा प्रेम में व्यक्ति का महत्व प्रधान रूप से होता है और इसलिए श्रद्धा का महत्व कर्म के मानदण्ड से आँकते हैं जबकि प्रेम में पहले तो व्यक्ति को और उसके पश्चात उसके कर्मों को महत्व दिया जाता है क्योंकि श्रद्धा तो किसी व्यक्ति के किसी कर्म विशेष को देखकर जाग्रत होती है जबकि प्रेम तो किसी व्यक्ति के प्रति यों ही उसे देखकर जाग्रत हो जाता है अतः उसमें कर्म तो गौण रूप में ही रहते हैं। प्रेमी सदैव यह चाहता है कि उसका उसके प्रिय पर एकाधिकार रहे जबकि श्रद्धालु के हृदय में कभी भी यह भाव नहीं रहता है।

लेखक की दृष्टि में श्रद्धा एक स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत भाव न होकर एक सामाजिक भाव है जबकि प्रेम का आधार स्वार्थी तथा व्यक्तिगत भावना ही होता है। श्रद्धा का क्षेत्र व्यापक होने के कारण ही श्रद्धालु सदैव यही चाहता है कि उसके श्रद्धेय से श्रद्धा करनेवालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहे जबकि प्रेम में एका तकता का भाव होने के कारण ही प्रेमी कभी भी ऐसा नहीं चाहता तथा सदैव यही कामना करता है कि उसके प्रेमी से संसार का अन्य कोई भी प्रेम न करे तथा उसका प्रेम ही उसके प्रिय पर सदैव अधिक बना रहे।

लेखक ने श्रद्धा सहित कृतज्ञता के भाव की विवेचना करते हुए कहा है "श्रद्धा एक सामाजिक भाव है, इससे अपनी श्रद्धा के बदले में हम अपने श्रद्धेय से अपने लिए कोई बात नहीं चाहते। ..... श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है, जिसे हम केवल समाज के प्रतिनिधि रूप में प्रकट करते हैं"। वस्तुतः श्रद्धा की उत्पत्ति तभी होती है जबकि हमारे हृदय में लोक के प्रायः सभी

सामान्य आदर्शों का स्थापन हो। कृतज्ञता वही भाव है जो कि हमारे मन में किसी विशेष मनुष्य केलिए किए कार्य से उत्पन्न होता है जबकि जनसाधारण के प्रति किए गये किसी उपकार से पैदा हुए भाव को श्रद्धा के अंतर्गत स्थान दिया जाता है।

ऊपर के विवेचन से यह तो निश्चय ही स्पष्ट हो गया है कि श्रद्दा में श्रद्धेय के महत्व को मान लेना अनिवार्य है तथा यही कारण है कि अभिमानी तथा स्वार्थी लोगों के हृदय में श्रद्धा जैसा पवित्र भाव नहीं उत्पन्न हो सकता क्योंकि ऐसे लोग कभी भी किसी व्यक्ति विशेष की ओर न तो शीघ्र ही आकृष्ट होते हैं तथा न वे किसी के महत्व को सहज ही स्वीकार करते हैं।

लेखक ने श्रद्दा के तीन प्रधान रूप बताये हैं - (1) प्रतिभा सम्बंधिनी,(2) शीलसम्बंधिनी, (3) साधन - सम्पत्ति सम्बंधिनी। इनमें से पहले प्रकार की श्रद्धा केलिए यह आवश्यक है कि श्रद्धालु में गुणों को ग्रहण करने की शक्ति के साथ - साथ निपुणता का गुण भी पाया जाता हो क्योंकि यदि उसमें यह दोनों ही गुण पर्याप्त मात्रा में न होंगे तो वह अपने पूज्य (श्रद्धेय) के गुण की परख कर सकने में समर्थ नहीं हो पायेगा। लेखक की दृष्टि में शीलसम्बंधिनी श्रद्धा तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य ही है क्योंकि धर्म का एक अन्य नाम शील भी है अतः वह किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति जो कि सदाचार का पालन करता हो और अपने कर्त्तव्यों को सम्पन्न करता हो वह समाज के प्रति अपने धर्म का पालन करता है, यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि श्रद्दा का मुख्य आधार जन - साधारण के हित की भावना का होना है और यही भावना धर्म का आधार भी कही जा सकती है।

शुक्ल जी "श्रद्धा को धर्म की पहली सीढ़ी मानते हैं" तथा उनके पश्चात कर्म का स्थान मानते हैं। उनका कहना है कि किसी महान तथा ऊँचे आदर्शों वाले व्यक्ति के प्रति श्रद्धा रखकर कोई व्यक्ति किसी काम को करना आरम्भ करता है। योग्यता अथवा विशेष प्रयत्न ही साधन - सम्पत्ति - सम्बंधिनी श्रद्धा का दूसरा नाम है। इस श्रद्धा का सदुपयोग तथा दुरुपयोग दोनों ही होती है। किसी व्यक्ति की योग्यता अथवा अयोग्यता का पता उसके इसी श्रद्धा के प्रयोग के ढंग पर लगाया जा सकता है। इस प्रकार की श्रद्धा किसी प्रयत्न विशेष के प्रति ही दिखाई जाती है न कि उस प्रयत्न की पूर्णता पर । उदाहरणार्थ किसी अद्भुत कारीगरी या चित्रकारी को देखकर हम उसके निर्माण करने वाले के प्रयत्न के प्रति श्रद्धा तो व्यक्त करते ही हैं यद्यपि उसके उस प्रयास से चित्रकारी अथवा कारीगरी के क्षेत्र में किसी आदर्श विशेष की स्थापना नहीं होती है।

ठीक ऐसा ही मत संगीत तथा कविता के सम्बन्ध में लागू होता है। यदि संगीतज्ञ तथा साहित्यकार चाहें तो वे क्रमशः अभ्यास तथा अलंकारों के प्रयोग से संगीत तथा कविता की आत्मा पर कुठाराघात करके उनका दुरुपयोग भी कर सकते हैं। इसी प्रकार एक बलवान व्यक्ति भी, जिसे कि लोगों की श्रद्धा प्राप्त है, अपने बल का देशहित के लिय प्रयोग कर उसका सदुपयोग भी कर सकता है और यदि चाहें तो वह अपने बल को दीन दुखियों तथा गरीबों पर आजमा कर उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। इस प्रकार श्रद्धा का सदुपयोग तथा दुरुपयोग दोनों ही हुआ करता है। यद्यपि यह भी सत्य है कि इस प्रकार की श्रद्धा का दुरुपयोग करके व्यक्ति अपने मन को भले ही चाहे झूठा संतोष दे ले, लेकिन वह कभी लोक - हितकारी नहीं हो सकती है।

इस प्रकार श्रद्धांधता को शुक्ल जी ने मानसिक स्तब्धता का नाम दिया है तथा उनका मत है कि चूँकि मनुष्य के मन में एक ही समय में दो विरोधी स्थितियाँ नहीं हो सकती हैं अतःयदि कोई किसी शारीरिक शक्ति के प्रति श्रद्धा करता है तो यह भी स्वाभाविक है कि वह उस व्यक्ति विशेष

के द्वारा अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते देखकर भी उसमें श्रद्धा बनाये रहे। यह श्रद्धा उस समय समाज के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध होती है जबकि यह शील - सदाचार तथा चेतना के परे हो जाती है।

लेखक के मतानुसार उपर्युक्त तीनों प्रकार की श्रद्धा में से शील - सम्बन्धिनी श्रद्धा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है तथा जन साधारण का इस दृष्टि से यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उस पर सबसे अधिक ध्यान दे क्योंकि वही श्रद्धा मानव - मात्र में सामान्य स्थिति का निर्माण कर पाने में सक्षम है।

श्रद्धा क्यों आवश्यक है?

श्रद्धा की आवश्यकता के सम्बन्ध में विचार करते हुए शुक्ल जी ने कहा है कि श्रद्धा अत्यन्त में आवश्यक है क्योंकि अन्य लोगों की श्रद्धा प्राप्त करके ही किसी व्यक्ति विशेष में आगे बढ़ने का साहस पैदा होता है और किसी काम को करने की प्रेरणा मिलती है तथा उसमें एक प्रकार का विश्वास भी पैदा होता है जिसके बल पर ही वह कठिन कामों को भी पूरा कर डालता है। यद्यपि समाज में इसका दुषप्रयोग भी होता हैं क्योंकि समाज में कुछ धूर्त लोग ऐसे भी मिल जाते हैं जो कि अपने अच्छे - बुरे गुणों का झूठा प्रदर्शन करके समाज में श्रद्धा प्राप्त करने का प्रयत्न भी किया करते हैं। कुछ व्यक्तियों द्वारा श्रद्धा प्राप्त करना एक व्यसन बन जाता है। तथा ऐसी स्थिति में अपने झूठे नाम का सहारा ले वे सदैव श्रद्धा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

प्रेम तथा श्रद्धा का विवेचन कर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि श्रद्धालु अपने श्रद्धेय कामों पर ही दृष्टि रखता है। वह अपने श्रद्धेय से न तो कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध ही रखना चाहता है और न ही कोई ऐसा कार्य करने की इच्छा करता है। जिसका कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में श्रद्धेय पर प्रभाव ही पड़े क्योंकि श्रद्धा तो समझ - बूझ कर श्रद्धेय के किसी श्रेष्ठ गुण अथवा कर्म के आधार पर ही की जाती है। श्रद्धा में किसी प्रकार के सौदे की भी सम्भावना नहीं की जानी चाहिए।

यह तथ्य भी बिल्कुल सत्य है कि श्रद्धेय को अपने श्रद्धालु से श्रद्धा की सदैव आवश्यकता रहती है क्योंकि उसी के आधार पर उत्साह व विश्वास प्राप्त करके ही वह आगे बढ़ता है। ऐसी स्थिति में लोभ के वशीभूत होकर यदि श्रद्धालु उसे श्रद्धा न प्रदान करे तो समाज की बहुत बडी क्षति हो सकती है क्योंकि वह जिस महान कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता रखता है श्रद्धा के अभाव में वह न हो सकेगा। इसके साथ ही यहाँ यह भी विचारणीय है कि घृणा के प्रदर्शन का हमें कोई अधिकार नहीं प्राप्त है क्योंकि घृणा के प्रकट कर देने पर समाज में दुःख तथा असंतोष फैल सकता है जबकि श्रद्धा के न प्रकट करने से समाज की कोई विशेष हानि नहीं होती।

इस प्रकार लेखक ने श्रद्धा के तीन रूप - शील, प्रतिभा तथा साधन - सम्बंधिनी श्रद्धा मानकर उनके अन्तर को स्पष्ट करते हुये यह बताया है कि तीनों ही प्रकार की श्रद्धा से समाज के किसी न किसी अंग का विकास होता है क्योंकि शुक्ल जी का मत है कि "शील या धर्म से समाज की स्थिति, प्रतिभा से रंजना और साधन - समपत्ति से शील - साधन और प्रतिभा विकास दोनों की सम्भावना"।

श्रद्धा और दान एक ही नहीं है क्योंकि दान पंडितों, विद्वानों और धार्मिकों को श्रद्धावश दिया जाता है जबकि लूलों, लँगड़ों तथा असहाय को दान देने में दया का भाव रहता है। अतः सदाचारी, विद्वान, सज्जन व समर्थ को दिया गया दान श्रद्धा - वश होता है और असहाय, अक्षम, निर्धन व अपंग का दान दया - भाव से दिया जाता है। संक्षेप में श्रद्धेय को श्रद्धा - दान शक्ति प्रदान

करता है जो कि समाज केलिए लाभदायक होता है तथा यही कारण है कि धार्मिक श्रेत्र में भी श्रद्धा - भाव से दिये गये दान को सर्वश्रेष्ट मानते हैं।

भक्ति - प्रेम और श्रद्धा के मेल से जिस भाव की सृष्टि होती है, साहित्य में उसे भक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब मन में श्रद्धा - पात्र के प्रति पूज्य - भावना के साथ - साथ घनिष्ठता की सृष्टि होती है, उसके प्रायः सभी क्रिया - कलाप - चलना, हँसना, बोलना आदि हमें अच्छे लगने लगते हैं, अपने जीवन पर उसका प्रभाव हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है तथा जब अपने जीवन का अधिकांश उसे ही अर्पण कर देते हैं, उस स्थिति में भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। भक्त सदैव अपने जीवन का कम या अधिक अंश अपने भक्ति - प्रान्त (देव) को अर्पित करने की उत्कट कामना रखना है और शुक्ल जी ने इसे ही "आत्म - निवेदन" कहा है।

हम अपने जीवन में अर्जित की हुई किसी एक वस्तु को ही अपने श्रद्धेय को दे पाने की क्षमता श्रद्धा में रखते हैं लेकिन किसी के भक्त बन जाने पर तो हमें अपने देव पर अपना सम्पूर्ण जीवन तक न्यौछावर करने का अधिकार मिल जाता है। श्रद्धा के अन्तर्गत श्रद्धालु अपने श्रद्धेय के महत्व को अपने जीवन में नहीं पा सकता जबकि भक्ति में तो वह अपने भक्ति - पात्र के महत्व को अपने जीवन मे प्राप्त करने का अधिकार रखता है। इतना ही नहीं, भक्ति में तो क्षक्त अपने देव के महत्व को अपने जीवन में ग्रहण करके स्वयं भी अन्य लोगों की भक्ति प्राप्त कर सकता है अर्थात् वह स्वयं भी अपने भक्तों का निर्माण कर सकता है। इस सम्बन्ध में हनुमान का उदाहरण उल्लेखनीय है। हनुमान वैसे स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य भक्त थे लेकिन कालान्तर में वह राम के महत्व को अपने जीवन में ग्रहण कर स्वयं भी भक्ति के पात्र बन गये।

भक्त को अपने पूज्य के महत्व को पाने केलिए स्वयं को अपने पूज्य के समान ही सदाचारी, स्वच्छ, महान तथा गौरवशाली बनाना होता है जिससे समाज का बहुत बड़ा लाभ होता है। हीनता का भाव ही भक्ति का मुख्य आधार है। भक्ति में भक्त अपने को सदा ही अपने पूज्य से अत्यन्त हीन समझता है तथा उसकी महानता सदैव अंगीकार करता है। भक्त हमेशा इसी प्रयत्न में प्रयत्नशील रहता है कि उसके जीवन में उसके पूज्य के सभी गुण आ जाएँ तथा वे सारी बातें नष्ट हो जाएँ जो कि उसके जीवन में उसके भक्त के प्रतिकूल हैं।

मानव - मन उन सिद्धांतों की ओर शीघ्र आकृष्ट नहीं हो पाता जो कि नीरस तथा शून्य होते हैं और इसलिये वे उसे व्यर्थ प्रतीत होते हैं। "अनुभूति" से ही मन आकर्षित होता है। वे सिद्धांत मन को कोई काम करने अथवा रोकने में समर्थ नहीं होते जो कि नितांत नीरस तथा कोरे होते हैं।

मन सदैव ही शील और शक्ति में तथा उसके प्रत्यक्ष परिणामों के सौन्दर्य में ही रमता है। उसे कोरे सिद्धांतों के पचड़े कभी भी रुचिकर नहीं मालूम पड़ते। जीवन में सद्वृत्तियों के सामीप्य से महानता आती है। अतः ऐसे गौरवशाली लोगों का सम्पर्क भी उन लोगों के लिये अत्यन्त लाभदायक है जो सद्मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। शुक्ल जी के मतानुसार इष्ट से हू रूप है अतः साथ उठने - बैठने के अतिरिक्त श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण भी इनके विधान माने गये हैं।

इसके उपरान्त लेखक यह भी कहना है कि इष्ट (पूज्य) के साथ ही साथ भक्ति में अनिष्ट (पूज्य का अनिष्ट चाहने वालला) का होना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योकि जिस प्रकार दुःख के न होने पर सुख का कोई मूल्य न होता अथवा दुःख के अभाव में सुख का निर्धारण हो पाना सरल न होता, उसी प्रकार अनिष्ट के अभाव में इष्ट के महत्व का निर्धारण करना भी आसान नहीं होता।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि सुख का अनुभव करने के लिये दुःख आवश्यक है तो इष्ट के महत्व को आँकने के लिये अनिष्ट की उपस्थिति भी अनिवार्य है। इसीलिये लेखक रावण के चरित्र की सार्थकता को सिद्ध करते हुए कहता है कि यदि राम के जीवन में रावण न आया होता तो हम र.म के चरित्रगत महत्व को किस प्रकार समझ पाते अतः राम की भाँति ही रावण का चरित्र भी महत्वपूर्ण है।

शुक्ल जी का यह भी कहना है कि इष्ट से हमको प्रवृत्ति के भाव की तथा अनिष्ट से निवृत्ति के भाव की अनुभूति होती है। इस प्रकार लोक - कल्याण को दृष्टि में रखकर पाप या अन्याय को देखकर उसे नष्ट करने का प्रयास धर्म - संगत ही कहा जायगा।

मानव - मन में वास करने वाली प्रायः सभी मनोवृत्तियाँ अत्यन्त लाभ दायक मानी जाती हैं क्योंकि मनुष्यता का आधार तो इन मनोवृत्तियों का सदुपयोग ही है। इनका दुरुपयोग या उपेक्षा अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है क्योंकि उस स्थिति में वह अपनी मनुष्यता तक विनष्ट कर सकता है। इसी आधार पर तो ईश्वरोपासना के क्षेत्र में इनका अत्यन्त स्थायी महत्व है।

मनुष्य ईश्वर को तभी श्रेष्ठ मानता है जबकि वह यह देखता है कि ईश्वर सारे कर्मो, गुणों तथा मनोवेगों से पूर्ण हैं। प्रेम, दया, कर्म और धर्म आदि मनोवृत्तियों को ईश्वर से प्राप्त करते ही मनुष्य भगवदभक्त बन जाते हैं और प्रयत्न करते हैं कि ईश्वर में पाई जाने वाली इन सारी वृत्तियों को अपने जीवन में भी उतार लें। इस प्रकार मनुष्य में परमानुभूति का जन्म स्वानुभूति के द्वारा ही होता है तथा उसी के द्वारा मनुष्य के हृदय में धर्म भाव की उत्पत्ति होती है।

भक्ति हृदय की वस्तु है और जब मनुष्य यह समझने लगता है कि उसके हृदय में पाये जाने वाले सभी भाव ईश्वर में विद्यमान हैं तभी वह ईश्वर की श्रेष्ठता को मानकर उसके साथ सामीप्य स्थापित करने का प्रयोग करने लगता है। यही प्रयास सामीप्य लाभ है। रामलीला तथा कृष्ण - लीला में भी कुछ यही भाव है जिसमें कि मनुष्य प्रतिवर्ष उनकी लीलाओं को देखकर सामीप्य - लाभ प्राप्त करता है तथा उनके जीवन की पूर्णत को देखकर उन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ मान लेता है।

लेखक के मतानुसार ऐसे कार्यों ने ही हिन्दू जाति को राजनैतिक तथा धार्मिक संकटों में भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने का बल दिया तथा इसी आधार पर राम व कृष्ण को हिन्दू धर्म में अवतार माना गया है कि ये लोग ही मानव को कर्म करने तथा सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते हैं। लोग निरे भाषणकर्ता ही न होकर मानव - मन में सद्भावों की सृष्टि करनेवाले भी होते हैं। शुक्ल जी के मतानुसार राग - द्वेष के दमन की अपेक्षा उनका परिष्कार अधिक लाभदायक है और यह परिष्कार भी उसी स्थिति में सम्भव है जबकि जीवन - पथ का अनुगमन किया जाए।

पहले यह बतलाया जा चुका है कि भक्ति का जन्म श्रद्धा तथा प्रेम के मेल से होता है। भक्ति का वासस्थान भी मस्तिष्क न होकर हृदय ही है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने भक्ति करने के नवौ प्रमुख मार्गों को बतलाया है। ये मार्ग सत्संग श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, वदन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि श्रद्धा में तो श्रद्धालु अपने श्रद्धेय से कोई कामना नहीं करता लेकिन भक्ति में वह सदैव अपने आराध्य ईश्वर से कृपा प्राप्त करना चाहता है।

हिन्दु - धर्म में उन लोगों को अधिक महत्व दिया जाता है जो कि पाप और अन्याय का नाश करने में सदैव प्रयत्नशील रहते हैं और कोरे तथा साररहित उपदेश को कोई महत्व नहीं दिया जाता है।

क्षत्रिय धर्म में कर्मों को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि यह धर्म अत्यन्त व्यापक है और इसमें न केवल जीवन के सभी अंगों से सम्बन्ध रहता है अपितु लेक रक्षा का भाव भी निहित रहता है। यही कारण है कि राम तथा लक्ष्मण क्षत्रिय थे। उनके चरित्र में शक्ति और क्षमा, वैभव और विनय तथा तेज और कोमलता का सन्तुलित एवं सम्मिलित समन्वय दीख पड़ता है।

इन्हीं गुणों के कारण क्षत्रिय धर्म का महत्व माना जाता है और संसार सदैव उसके पालनका महत्व स्वीकारकरता रहेगा। साथ ही क्षत्रिय धर्म में उपर्युक्त गुणों के विद्यमान होने के कारण ही वह इतना अधिक आकर्षक, व्यापक और स्पष्ट माना जाता है तथा उसी के आश्रय को ग्रहण कर मनुष्य अपने मन से रागात्मक मनोवृत्तियों को भी जन्म दे सकता है।

आपका बंटी

Unit - I

आपका बंटी - मन्नू भंडारी

प्रश्न - 'आपका बंटी' उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।

'आपका बंटी' साठोत्तरी दशक के प्रमुख उपन्यासकारों में से एक मन्नू भंडारी की अप्रतिम रचना है। मन्नू जी का लेखन सदैव ही आधुनिक जीवन के व्यापक, गहन और वास्तविक सन्दर्भों को अभिव्यक्त करते हुए समाज की मुख्य दारा से छूट गए चरित्रों के जीवन अर्थों को रेखाँकित करता आया है। मन्नू भंडारी के उपन्यासों और कहानियों में सीधी - सादी भाषा और शैली में हाशिए में रह गए व्यक्ति के दुख - दर्द की ही अभिव्यक्ति हुई है। 'आपका बंटी' उपन्यास भी मन्नू जी के जन - जीवन से जुड़े गहरे सराकारों को ही प्रतिबिम्बित करता है।

पति - पत्नी के परस्पर सम्बन्धों में टूटन आ जाने से उनकी सन्तान की क्या दशा होती है और उसके विचलन से पति - पत्नी के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है- यही सब कुछ 'आपका बंटी' उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। 'आपका बंटी' की कथा बंटी नामक एक ऐसे बालक की कथा है जिसे माता - पिता के सम्बन्ध - विच्छेद के कारण पिता का स्नेह नहीं मिलता और माता का इतना अधिक स्नेह मिलता है कि उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही विकसित नहीं हो पाता। बंटी की मां शकुन एक स्कूल में प्रिंसिपल है और अपने पति अजय से सम्बध तोड़ने के पश्चात उसकी सारा जीवन बंटी के ईर्द - गिर्द ही सीमित रह गया है। बंटी का विकास स्वाभाविक रूप से और बच्चों के समान नहीं हो पाता। घर की चहार - दीवारी के भीतर रहकर वह अन्तर्मुखी होता जा रहा है। उसकी घनिष्ठता या तो घर में काम करने वाली फूफी के साथ है या ममी के साथ। बंटी अपनी छोटी बड़ी हर बात के लिए ममी पर निर्भर है। वह हर घड़ी अपना ममी से चिपका रहना चाहता है, यहां तक कि उसे 'ममी की गोद में बैठता, उनके साथ सटकर सोना अच्छा लगता है'।

बंटी को अपने माता - पिता के बीच के अलगाव का अभास है। पड़ोस में उसका समवयस्क टीटू और उसकी मां बंटी से उसके पिता अजय के बारे में पूछते रहते हैं। उसका उत्तेजित मन कई बार मम्मी से पूछने को उत्सुक होता है पर मम्मी की चिंतित मुखाकृति वह देख नहीं सकता। वकील चाचा के आने पर वह और चिंतित हो जाता है। उसे पता है कि वकील चाचा उसके पापा से मिलकर आते हैं और मम्मी और पापा के मध्य संदेश का आदान - प्रदान इन्हीं वकील चाचा के मार्फद होता है। इस बार वकील चाचा तलाक के कागप लेकर आए हैं। जिस पर अजय ने हस्ताक्षर कर दिए हैं। शकुन भी कचहरी जाकर दस्तखत कर देती है और अन्ततः उसके जीवन का एक अध्याय समाप्त हो जाता है।

अजय के प्रति शकुन के हृदय में गहरे प्रतिशोध का भाव है। जब से पता चला है कि अजय मीरा के साथ सुखमय जीवन बिता रहा है, वह भी डाक्टर जोशी को लेकर मधुर कल्पनाएँ संजोने लगी है। डा. जोशी प्रसिद्ध चिकित्सक हैं और विधुर हैं। शकुन के मृतप्राय जीवन में एक नयी चेतना दौडने लगती है। वह सज - धज कर रहने लगती है। वह जब डा. जोशी से मिलने जाती है तो बंटी को घर पर ही छोड़ जाती है। बंटी को अपनी उपेक्षा धीरे - धीरे महसूस होने लगती है। वह अपने और मम्मी के बीच किसी तीसरे व्यक्ति के सहन नहीं कर सकता था। शकुन और डा.

जोशी विवाह सूत्र में बंध जाते हैं। यहां बंटी को समझ में आ जाता है कि उसकी मम्मी ने उसे छोड़ दिया है। उसका कोमल हृदय रो पड़ता है। डा. जोशी के घर पहुंचकर मम्मी के जीवन में एक नया उत्साह आ गया था किंतु बंटी यहां अपने दो सौतेले भाई बहनों के मध्य किसी प्रकार एडजस्ट नहीं कर सका। उसका उत्तेजित मन डा. जोशी को किसी तरह पिता के रूप में स्वीकार नहीं कर सका और उसका विरोध यथावत् बना रहा। मम्मी और डा. जोशी के दांपत्य - दृश्यों को बंटी चुपचाप रात में देखता। इसका उस पर और बुरा प्रभाव पड़ा। वह अनेक मानसिक ग्रन्थियों का शिकार होने लगा। बिस्तर भी सोते में वह गीला कर देता। मां को परेशान करने के लिए एक दिन वह स्कूल से अपने पुराने घर चला गया ताकि मम्मी उसे न पाकर परेशान हो, उसकी खोज करे। अन्ततः हारी, थकी शकुन वहां आयी और बंटी को बाहों में उठाकर ले गयी। बंटी के इस सारे व्यवहार का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि मम्मी अब बंटी को उसके पापा के पास भेजने को तैयार हो गयी। अजय बंटी को लेने आया। उसने जैसे ही कलकत्ते चलने का प्रस्ताव रखा, बंटी सहर्ष तैयार हो गया। बंटी शायद ऐसी बिन्दु पर पहुंच चुका था जहां उसके और उसकी मम्मी के बीच एक गहरी खाई बन चुकी थी। चलते समय बंटी मम्मी की उपेक्षा करता रहा। उसके मन में लग रहा था कि शायद अंत में मम्मी रोकर उसे मना लेगी। शायद वह कहेगी कि बंटी मत जा बेटे, मैं तेरे बिना नहीं रह सकूंगी। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह अपने पापा के साथ गाड़ी में जा बैठा और गाड़ी स्टेशन छोड़ गई। दूसरी ओर शकुन को लगता था कि शायद बंटी ने आवेश में ही कलकत्ता जाने का निर्णय ले लिया होगा किन्तु जब वस्तुत मम्मी से अलग होने का क्षण आएगा तब वह पापा के साथ जाने से इंकार कर देगा। तथपि ऐसा कुछ नहीं हुआ। लेखिका के शब्दों में, 'सब अपने - अपने अहं, अपनी - अपनी महत्वाकांक्षाओं और अपनी - अपनी कुंठाओं के सन्दर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के संदर्भ में कभी सोचा ही नहीं'।

कलकत्ते अजय के घर पहुंचने पर भी बंटी को सुख नहीं मिला। यहां भी अजय का एक और छोटा पुत्र चीनू था। बंटी को लगा कि जैसे यहां श्री कुछ है जो उसके और पापा के बीच दीवार बनकर खड़ा है। वह इस वातावरम में भी स्वयं को उतना ही अवाँछित पा रहा था जितना कि मम्मी के साथ रहते हुए महसूस करता था।

अजय उसे स्कूल में अडमिशन के लिए ले जाता है। पर बंटी पहले जैसा बंटी नहीं रहा। वह अपनी नर्वस मनस्थिति में कोई उत्तर नहीं दे पाता। उसको स्कूल में प्रवेश नहीं मिल पाता। अजय की पत्नी मीरा के स्नेहपूर्ण व्यवहार के बावजूद बंटी वहां सामंजस्य नहीं निम पाता। रात को सोते समय वह पुनः विस्तार गीला करने लगता है और फिर सुबह उसे लज्जित होना पड़ता है। अंत में अजय निश्चय कर लेता है कि बंटी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान हॉस्टल ही है। एक बार फिर बंटी घर छोड़कर पापा के साथ ट्रेन में बैठता है। रात में उसे अजीब - अजीब सपने आते हैं। सुबह होने पर हॉस्चल में रहने की वास्तविकता से उसका साक्षात्कार होता है। उसका अन्तर्मन बुरी तरहा आहत हो कर आंखे छलछला जाती हैं। लेखिका के शब्दों में पत्ता नहीं क्या हुआ कि इतनी देर से मन पर रखा पत्थर जैसे एकाएक ही दरक गया। और ढेर - ढेर आंसू उफन आए। भीतर की आंखों में ही नहीं, बाहर की आंखों में भी। बंटी को सारे चेहरे अपरिचित लग रहा था। उसके पापा - मम्मी दोनों का प्यार अलग - अलग अपने अपने परिवारों में बंटा था। बंटी एक निष्ठ प्यार की अपेक्षा करता था इन परिस्थितियों में असम्भव था। इसलिए मां -बाप के होते हुए भी बंटी 'अनाथ' की तरह रह गया।

इस प्रकार 'आपका बंटी' सम्बन्ध विच्छेद से सन्तानों में होने वाली समस्या का करुणापूर्व किन्तु यथार्थ चित्रण है। महानगरीय जीवन में उच्च शिक्षा के कारण पत्नी और पति दोनों के अहं बढ़े हैं। इन अहमों में टकराव होने की सम्भावनाएँ भी पहले की तुलना में बहुत अधिक हैं। किन्तु अहमों के टकराव के दुष्परिणाम बंटी जैसे निर्दोषों को भुगतने पड़ते हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने इसी त्रासदी को अभिव्यक्त किया है।

2. कथा वस्तु के आवश्यक गुणों की दृष्टि से 'आपका बँटी' उपन्यास की कथा की समीक्षा कीजिए।

'आपका बंटी' मन्नू भंडारी की अप्रतिम कृति है। इस उपन्यास की कथावस्तु जीवन के यथार्थ से गहरे जुड़ी हुई है। आधुनिक युग में नारी शिक्षा ने और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी के पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के आत्मविश्वास ने स्त्री - पुरुष के परम्परागत सम्बन्धों को नितान्त नए परिप्रेक्ष्यों में प्रस्तुत किया है। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि अब नारी किसी के साथ बंध नहीं दी जाती अपितु वह स्वेच्छा के साथ अधिकारों साहित जीवन जीती है। यहीं पर वह बिंदु है जहाँ पति - पत्नी के अहमों का टकराव होता है। यदि सावधानी न परती जाए तो इसी बिंदु से परिवार में टूटन की प्रक्रिया आरम्भ होती है। आपका बंटी उपन्यास की कथावस्तु ऐसे ही एक बिखरे परिवार और पति - पत्नी के परस्पर मतभेदों में लड़खडाते हुए एक नन्हें बालक बंटी की कहानी है। कथावस्तु के आवश्यक गुणों की दृष्टि से 'आपका बंटी' उपन्यास का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है -

मौलिकता

उपन्यास की कथावस्तु की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता कथा की मौलिकता होती है। साहित्य के संदर्भ में इसका अर्थ जीवन के यथार्थ प्रसंगों को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना होता है। स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में कोई नवीन बात नहीं है, नयापन तो उनके प्रस्तुतीकरण में होता है। इस उपन्यास में लेखिका ने हमारे सामाजिक जीवन के एक ऐसे प्रसंग को लिया है। जिसमें पति - पत्नी के मध्य ऐसी खाई उत्पन्न हो गयी है कि पूरे सात वर्ष की प्रतीक्षा भी उस खाई को पाट नहीं सकी है। पति पत्नी के आपसी वैमनस्य का सहज परिणाम यह हुआ है कि बंटी का स्वतंत्र विकास हो ही नहीं पाया और वह अंततः एक 'प्राब्लम बॉय' सिद्ध हुआ। इस प्रकार उपन्यास का कथावस्तु के दो मुख्य पक्ष है दांपत्य जीवन का बिखराव और उसके फलस्वरूप संतान की उपेक्षा।

अजय और शकुन के दांपत्य जीवन और उसके बिखराव पर लेखिकाने नए ढंग से दृष्टिपात किया है। अहम के टकराव से दांपत्य जीवन ही छिन्न - बिन्न नहीं होता अपितु परिवार के सदस्य भी अभिशप्त जीवन जीने पर विवश हो जाते हैं। शकुन एक प्रबुद्ध महिला है, समाज में उसका मान - सम्मान है किन्तु अपने अहं की तुष्टि करने की झोंक में उसने एक ओर तो अपने पति अजय को खो दिया, दूसरी ओर अपने एकमात्र पुत्र बंटी को एक समस्यापूर्ण बालक बना दिया। इसी प्रकार बंटी की समस्या को भी लेखिका ने नए आयामों में प्रस्तुत किया है। अजय को पराजित करने में असफल शकुन बंटी के साथ इतनी गहरी जुड़ जाती है कि एक ओर बटी का विकास अवरुद्ध रह जाता है वहीं दूसरी ओर एक समय आता है जब शकुन को लगता है कि उसकी व्यक्तिगत खुशियों में बंटी एक बाधा है। शकुन की सारी प्रगति उसके अपने लिए ही जैसे निरर्थक हो उठती है। लेखिका ने शकुन की इस मनःस्थिति का चित्रण करके स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों को निश्चय ही एक नया अर्थ देने का प्रयास किया है।

रोचकता

उपन्यास की कथावस्तु में रोचकता एक अनिवार्य तत्व है। रोचकता का अर्थ सतही मनोरंजन नहीं अपितु विचार - विश्लेषण के द्वारा भावनाओं के नए आयाम खोलना है। 'आपका बंटी' उपन्यास में लेखिका ने अनेक स्थलों पर शकुन के मानसिक ऊहापोहों का सजीव चित्रण किया है और उपन्यास की विशिष्टता इस बात में है कि इन चित्रणों से कथानक में बोझिलता कहीं भी नहीं आती। लेखिका ने शकुन की जाटिल मनःस्थितियों का वर्णन इस प्रकार किया है कि पाठक उसकी सहजता और स्वाभाविकता में आत्म विभोर हो जाता है। इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने भावनाओं को ही नहीं, उनके विस्तार बदलते हुए रंगों को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है। सम्बन्ध - बिच्छेद के समय शकुन की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका कहती है, 'एक अध्याय या जिसे समाप्त होना था और वह हो गया। दस वर्ष का यह विवाहित जीवन एक अंधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था। ..... लगता है जैसे इस सुरंग ने उसे एक दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है - फिर एक और यात्रा - वैसा ही अन्धकार, वैसा ही अकेलापन'। उपन्यास की कथा वस्तु का मूल आकर्षण बंटी और शकुन का भावनात्मक विश्लेषण है। लेखिका ने अनेक स्थलों पर बंटी और शकुन का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया है जो कि मन और बुद्धि दोनों स्तरों पर रोचकता प्रदान करता है।

स्वाभाविकता

उपन्यास की कथावस्तु की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता स्वाभाविकता होती है। अर्थ यह हुआ कि कथावस्तु में ऐसा कुछ भी नहीं होना चाहिए जो काल्पनिक अथवा अस्वाभाविक प्रतीत हो। इस दृष्टि से 'आपका बंटी' की कथावस्तु निश्चित रूप से सफल कही जा सकती है; क्योंकि इसमें वर्णित घटनाएँ और उनसे जुड़े हुए पात्र हमारे यथार्थ जीवन से गहरे जुड़े हुए दिखते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो वे हमारे समाज के ही सुपरिचित चेहरे हैं जिन्हें हम हर दिन अपने ही बीच देखते हैं। कितने ही स्त्री पुरुष ऐसे ही बिखरे हुए दाम्पत्य जीवन को जीते हुए देखते हैं। इसी प्रकार बंटी भी एक परिचित बालक दीखता है।

सम्बद्धता तथा संगठनात्मकता

उपन्यास की कथावस्तु अनेक अन्तः कथाओं, छोटी बड़ी घटनाओं को लेकर बनती है किन्तु उसकी सफलता इसी बात में छिपी रहती है कि कहीं कोई अन्तर्कथा अथवा घटना ऐसी न रह जाए जो कि मूल कथावस्तु में अच्छी तरह गुंथी हुई न हो। यह कथावस्तु सुसम्बद्ध और पूर्वापर सम्बन्धों से युक्त होनी चाहिए। घटनाओं का बाहुल्य 'आपके बंटी' उपन्यास में नहीं है। घटनाएं है किन्तु सीमित हैं तथपि लेखिका ने इन थोड़ी सी घटनाओं का संयोजन भी इतनी कुशलता के साथ किया है कि रोचकता भी बराबर बनी रहती है और कथा का प्रवाह भी निर्बाध गति से चलता रहता है लेखिका ने अनेक स्थलों पर बंटी और राकुन का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया है जो कि मन और बुद्धि दोनों स्तरों पर रोचकता प्रदान करता है। प्रत्येक घटना एक दूसरे के साथ गहरी जुड़ी हुई है। घटनाओं के संयोजन में लेखिका ने पूर्वापर सम्बन्ध का भी पूर्ण निर्वाह किया है।

मार्मिकता

मार्मिकता का सीधा अर्थ हृदय को छू लेने कीक्षमता से है। इस दृष्टि से 'आपका बंटी' उपन्यास की कथावस्तु सर्वाधिक सफल कही जा सकती है। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु में ऐसे अनगिनत स्थल हैं जो पाठक को सहज ही अभिभूत कर लेते हैं। इस उपन्यास के पात्र समाज से सीधे लिए गए हैं। उनकी अनुभूतियों की सच्चाई पाठक के अन्तर्मन को छू लेती है। वातावरण की सृष्टि करने में लेखिक को अद्‌भुत सफलता मिली है। कल्पना के सहारे उन्होंने प्रत्येक घटना को उसके पूरे परिवेश में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'आपका बंटी' उपन्यास की कथावस्तु में सभी आवश्यक गुणों का निर्वाह किया गया है। इस कथावस्तु में मौलिकता, रोचकता और उसके साथ जीवन की सहजता बराबर दिखायी पड़ती है। सजीवता इस कथावस्तु का विशिष्ट गुण है। लेखिका ने सामान्य व्यक्ति के जीवन की सामान्य घटनाओं को कलात्मकता का संस्पर्श देकर एक अद्‌भुत मार्मिकता प्रदान की है। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु का जन्म और विकास यथार्थ के धरातल पर हुआ है और इस कारण प्रत्येक प्रसंग हृदय को छूने की क्षमता रखता है।

Unit II

3. बंटी का चरित्र - चित्रण कीजिए।

मन्नू भंडारी के आपका बंटी उपन्यास में बंटी धुरी पात्र है जिसके चतिर्दिक अन्य सबी पात्र भ्रमण करते हैं। ऐसी दशा में यदि - प्रस्तुत उपन्यास के नायक का निर्धारण करना हो तो कथावस्तु के विकास में सर्वाधिक योगदान करने के कारण बंटी को ही इस पद का अधिकारी माना जाएगा। उपन्यास की समूची कथा इसी नन्हे बालक की नन्हें - नन्हें बातों के भीतर सिमटी हुई हैं। बंटी की चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

अन्तर्मुखी व्यक्तित्व

एक आयु विशेष के बाद बालक का स्वतंत्र विकास घर के भीतर नहीं बल्कि घर के बाहर ही हो पाता है। बंटी का दुर्भाग्य यह है कि उसकी मम्मी उसे घर के बाहर निकलने ही नहीं देती, उसकी बाल सुलभ चेष्टाएँ मम्मी के स्नेहाचंल के नीचे दबी की दषी रह जाती हैं। बंटी चाहता है कि वह उन्मुक्त संसार में विचरण करे किन्तु उसकी मम्मी एक क्षण के लिए भी उसे अपने से अलग नहीं रखना चाहती। शकुन के अत्यधिक दुलार के कारण बंटी की समस्त चेष्टाओं का केन्द्र उसकी मम्मी है। वह मम्मी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकता। उसके मन मस्तिष्क के हर कोने में उसकी मम्मी छाई रहती है। वकील चाचा द्वारा शकुन को बंटी की सीमा से अधिक देख - देख करने के विरुद्ध दी गयी यह चेतावनी उचित ही प्रतीत होती है - 'मुझे हर है, शकुन, कहीं तुम अपना अकेलापन खत्म करने के चकर में बंट्टी का भविष्य ही न खत्म कर दो। तुम्हारा यह अतिरिक्त स्नेह उसे बौना ही न छोड़ दे'। इस प्रकार शकुन के 'पजेसिव' प्रेम के कारण बंटी का व्यक्तित्व अंतर्मुखी होता जाता है।

एकाधिकार की भावना

बंटी के चरित्र की दूसरी विशेषण एकाधिकार की भावना है। वह अपनी मम्मी पर एकाधिकार रखना चाहता है। इस स्थिति का स्पष्ट कारण यह है कि उसके जीवन में उसकी मम्मी ही उसकी

सर्वस्व है, मम्मी से आगे बढ़कर वह सोच ही नहीं पाता। वैसे यह स्थिति हर बालक के साथ होती है किन्तु बढ़ती आयु के साथ - साथ यह एकाधिकार घटता जाता है। बंटी के साथ दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो पाता। इसका कारण यही है कि उसकी मम्मी शकुन ने उसके संसार को केवल अपने और उसके मध्य ही सीमित रहने दिया। बंटी चाहता है कि उसकी मम्मी उसे छोड़कर और किसी से प्यार न करे। ऐसी किसी स्थिति के पैदा होने पर वह विचलित हो जाता है। उसकी मनोस्थिति का विश्लेषण करते हुए डा. जोशी शकुन से कहते हैं, 'तुम्हारे साथ अकेले रहते - रहते वह बहुत पज़ेसिव हो गया है। वह किसी और ये तुम्हारे साथ नहीं देख सकता'। शकुन के डा. जोशी से विवाह कर लेने के बाद बंटी अपने पापा की ओर मुड़ जाता है। पर वहां भी वह स्वयं को एडज नहीं कर पाता। उसकी एकाधिकार की भावना की पूर्ति कहीं भी नहीं हो सकती है। बंटी धीरे - धीरे टूटता है और अकेला पड़ता जाता है। यही उसका दुर्भाग्य है।

इडिपस ग्रन्थि का शिकार

मनोविज्ञान में इडिपस ग्रन्थि का आशय उस स्थिति से होता है जब कोई पुत्र अपना माता को अत्यधिक प्यार करने लग जाता है। बंटी में भी यही ग्रन्थि है। इसी के कारण वह डॉ. जोशी से इतनी ईर्ष्या करता है। बंटी यह सहन नहीं कर पाता कि उसकी मम्मी डा. जोशी से स्नेह पूर्ण बातें करे। वह डा. जोशी को पापा नहीं कहना चाहता। उसके पास तर्क है - उसके पापा हैं कलकत्ता में; तो वह जोशी को पापा क्यों कहेगा? वह चाहता है कि मम्मी उसके आगे झुककर उसे मना ले। वह मान जाने को तैयार है। पापा के साथ जाते समय भी उसकी छिपी इच्छा है कि मम्मी उसे न जाने दे और रो - रोकर उसे मना ले। मन्नू भंडारी ने इस प्रसंग को अत्यंत संवेदना पूर्ण बनाया है। इस प्रकार बंटी मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रस्त है जिसका जिम्मेदार वहखुद नहीं है। यही बंटी की विडम्बना है।

सहानुभूति का पात्र

बंटी अनेक मानसिक ग्रन्थियों से ग्रस्त होने पर भी पाठकों की सहानुभूति सहज ही पा लेता है। वह एक ऐसा अभाग बालक है जो माता - पिता के होते हुए भी अनाथे है और बिडम्बना तो यह है कि वह इसका उत्तर दायी भी नहीं। उसकी मम्मी - पापा का वैवाहिक जीवन असफल रहा और उसका परिणाम बंटी को भुगतना पड़ा। अजय और शकुन अपने अपने नये दांपत्य जीवन में मग्न हो गया मगर मासूम बंटी को इसकी सबसे बड़ी सजा सहनी पड़ी।

बंटी एक संवेदनशील बालक है जिसका दुर्भाग्य बिना कोई पापा किए कठोरतम दंड सहना है। बंटी का यह दुर्भाग्य पाठक को दूर तक विचलित कर देता है। निःसंदेह बंटी इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है।

4. बंटी की मम्मी 'शकुन' का चरित्र चित्रण कीजिए।

मन्नू भंडारी के प्रसिद्ध उपन्यास 'आपका बंटी' की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण पात्र शकुन है और उसका चारित्रिक विकास भी बंटी के प्राय! समतुल्य परिमाण में ही किया गया है। वस्तुतः 'आपका बंटी' शीर्षक उपन्यास के पात्रों में बंटी और शकुन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र हैं। बंटी की मां शकुन की गणना ऐसी नारी के रूप में की जा सकती है जिसका स्वाभिमान उसके दांपत्य जीवन को ले डूबता है और जिसका पुत्र प्रेम मां -बेटे के बीच कभी भी पूरी न हो सकने वाली खाई पैदा कर देता है। शकुन एक स्थानीय कॉलेज की प्रिंसिपल है और अपने पति से अलग रहती है। शकुन के व्यक्तित्व और चरित्र पर निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाश डाला जा सकता है -

अत्यधिक स्वाभिमानी

शकुन एक अत्यधिक स्वाभिमानी नारी है और उसका यह स्वाभिमान उस सीमा तक पहूंचा हुआ है कि वह पति को खोकर भी झुकना नहीं चाहती। स्वाभिमान की अतिशयता शकुन के संदर्भ में एक बड़ी कठिनाई बन जाती है और उसका वैवाहिक जीवन बिखर जाता है। शकुन का स्वाभिमान उसे अजय से दूर ले जाता है। शकुन जीवन भर इसी भावना के साथ जाती रही कि अजय के अभाव में भी उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना रहेगा। वह कभी अजय के समक्ष झुकी नहीं बल्कि इसके विपरीत उसका प्रयत्न बराबर यही रहा कि अजय उसकी महत्ता को स्वीकार करे। लेखिका के शब्दों में, सात वरषों में विभागाध्यक्ष से प्रिंसपिल हो जाने के पीछे भी कहीं अपने को बढ़ाने से ज्यादा अजय को गिराने की कोशिश ही थी। वह स्वयं कभी अपना लक्ष्य रही ही नहीं। शकुन की इस अहं वादिता और पति से सम्बन्ध विच्छेद के कारण सबसे अधिक कष्ट मासूम बंटी को उठाना पड़ता है।

आधुनिकता के तनाव का प्रतीक

'आपका बंटी' के अनुभव विश्व का एक महत्वपूर्ण भाग है शकुन की मानसिकता। एक तरह से आधुनिक नारी के सुख - दुःखों, समस्याओं और संघर्षों को शकुन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के विधान के मूल में आधुनिकता का अभिशाप है। शकुन पूर्णतया बंटी की मां बनकर घर में रहती है - स्नेह पूर्ण और कोमल पर प्रिंसिपल का रूप धारण करते समय ड्रेसिंग टेबिल का मेक - आप का सामान उसके बाह्य रूप को ही नहीं अंतरंग को भी बदल देते हैं। अपने व्यक्तित्व के प्रति सजगत के साथ - साथ आत्म - सम्मान के प्रति शकुन जरूरत से ज्यादा ही जागरूक है। दूसरे शब्दों में आधुनिकता अहं को जितना खाद - पानी का भाव परिपुष्ट नहीं करती। अजय और शकुन के बीच समझौता न हो सकने का कारण उनका प्रचंड अहम ही है। विवाह के बाद के सात वर्ष जैसे अजय को झुकाने की अदम्य आकांक्ष में ही शकुन ने बिताए थे। कभी पिता के विरुद्ध बंटी को हाथियार बनाने की नीयत से वह बंटी पर पजेसिव प्यार रखती है तो कभी वह बंटी पर अपना प्यार अपने शून्य को भरने के उद्देश्य से भी लुटाती है। आधुनिकता का आधार अपने लिए जीने की आकाँक्षा मात्र है। शकुन बहुत कुछ इसी आधुनिकता का प्रतीक है।

द्विविधापूर्ण मन

शकुन निरन्तर द्विविधापूर्ण जीवन बिताती रही है। उसके जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आए हैं जबकि वह समय पर निरणय नहीं ले पायी और इसकी उसे बाद में पश्चात्ताप भी हुआ। वस्तुतः समय पर निर्णय न ले पाना मनुष्य के व्यक्तित्व की एक बहुत बड़ी दुर्बलता होती है। इसका परिणाम अवसर चूकना और अन्ततः दुख उठाना है। शकुन के साथ भी ऐसा ही हुआ। अजय से सम्बन्ध विच्छेद करने में उसको अनेक वर्ष लग गए। बाद में डा. जोशी के साथ का सुख तो मिला पर यह दुख भी सालता रहा कि यह निर्णय उसने पहले ही क्यों नहीं ले लिया था। शकुन की इस मनःस्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका कहती है, मन न इस बात को मानता है, न उस बात को। सही - गलत की बात भी वह नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती। इस समय इतना ही काफी है कि जीवन में जितना भरा - पूरा वह इन दिनों महसूस कर रही है, उसने कभी नहीं किया। बल्कि आज अगर उसे किसी बात का अफसोस है तो केवल इसी बात का कि यह निर्णय उसने बहुत पहले क्यों नहीं लिया? क्यों नहीं वह बहुत पहले ही इस दिशा की ओर मुड़ गयी?

असफल मातृत्व

शकुन का मातृत्व निश्चय ही असफ़ल रहा है और इस का सबसे बड़ा प्रमाण बंटी है जिसको अपनी मां और पिता के तनाव का दंड भुगतना पड़ता है। दांपत्य जीवन की सफलता पति - पत्नी के समायोजन में छिपी होती है। जहां एक पक्ष का अहं हावि हो जाता है और दूसरा पक्ष उसे स्वीकार नहीं कर पाता वहीं बिखराव उत्पन्न हो जाता है। शकुन के साथ भी ठीक यही हुआ है। शकुन बंटी को साथ एक अपने पति से बदला लेना चाहती है परन्तु उसका प्यार बेटी पर इतना अधिक छा जाता है कि बंटी का स्वतंत्र व्यक्तित्व ही विकसित नहीं हो पाता। लेखिका के शब्दों में, बंटी से न मिल पाने की वजह से अजय को जो यातना होगी, उसकी कल्पना मात्र से एक क्रूर सा संतोष मिलने लगा। शकुन के इस अधिकार की भावना के स्नेह का नतीजा यह होता है कि अंत में बंटी उसका भी नहीं होता। एक समय जब वह अपने लिए जीना चाहती है तब बंटी एक बाधा के रूप में आता है। शकुन डा. जोशी से जुड़ने का निर्णय लेती है और यही उसे बंटी से अलग रहने का 'टार्च' भुगतना पड़ता है।

मन्नू भंडारी बंटी का सहानुभूति पूर्वक चित्रांकन करते हुए भी शकुन के प्रति निंदात्मक या कटु रूप नहीं अपनायीं। उन्होंने शकुन की मानसिक का निस्संग विश्लेषण किया है और इस तरह पाठक के सामने प्रश्न खड़ा किया है कि किसी भी पक्ष को सही या गलत जैसा क्या कुछ कहा जा सकता है। किसी को भी शकुन का स्वतंत्र रूप में जीने का अधिकार अमान्य करना कठिन होगा। बंटी के प्रति अपने कर्तव्य को वह अंतिम स्थिति तक निभाती है और बड़ी तीखी पीड़ा झेलती है। इस प्रकार निर्विवाद रूप से आपका बंटी उपन्यास में शक्न एक बहुत महत्वपूर्ण पात्र है।

5. डा. जोशी का चरित्र चित्रण कीजिए।

'आपका बंटी' उपन्यास में मन्नू भंडारी ने एक अन्य महत्वपूर्ण पात्र के रूप में डा. जोशी की सर्जना की है। डा. जोशी बंटी की मां शकुन के अजय से सम्बन्ध विच्छेद के बाद प्रेमी और फिर पति बनकर आते हैं। अजय से विधि - वत अलवा होने के पश्चात से शकुन के मन में डा. जोशी का चित्र उभरने लगता है। डा. जोशी का व्यक्तित्व प्रभावशाली है। संक्षेप में इस चरित्र की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं

एक योग्य चिकित्सक

डा. जोशी की गणना शहर के योग्य चिकित्सकों में की जाती है। शकुन के साथ जोशी का पहला परिचय एक आत्मीय डाक्टर के ही रूप में बंटी की बीमारी के वक्त हुआ था। शहर में उनकी अपनी क्लीनिक है, कोठी है, कार है, शहर भर में प्रसिद्ध है और रोगियों की भीड़ लगी रहती है। डा. जोशी का स्मरण करते हुए शकुन सोचती है 'पिछली सर्दियों में बंटी बीमार हो गया था तो कितनी आत्मीयता और एहतियात से संभाला था उसे। केवल बंटी को ही नहीं, बुखार के बढ़ते रहे पाइंट के साथ हौसला खोती और घबराती शकुन को भी संभाला था'।

आत्मीयतापूर्ण व्यक्तित्व

डा. जोशी का व्यक्तित्व अत्यंत आत्मीयता पूर्ण है। शकुन को डा. जोशी के इसी अपने पन ने प्रभावित किया था। बंटी के प्रति डा. जोशी की आत्मीयता अपने - आप में एक उदाहरण है। डा. जोशी के घर में जाकर नए वातावरण में बंटी रम नहीं। उसकी उद्दंडता इतनी बढ़ गयी कि स्वयं शकुन भी नियंत्रण खो बैठी और उसने बंटी को दंडित भी किया। तथपि डा. जोशी का व्यवहार ऐसे

सभी अवसरों पर अत्यंत संतुलित और सुविचारित रहा है। डा. जोशी बंटी की समस्या को जानता है, वह शकुन की तरह उसपर झल्लाता नहीं, उससे घृमा भी नहीं करता। सच पूछा जाए तो यदि बंटी के साथ डा. जोशी का सम्पर्क कुछ पहले हो गया होता तो शायद बंटी एक प्राब्लम ब्वॉय नहीं बन पाता।

शकुन के प्रति स्वस्थ आकर्षण भाव

डा. जोशी एक योग्य चिकित्सक ही नहीं एक कुशल प्रेमी भी है। वे विधुर हैं और पति - परित्यक्ता शकुन के सम्पर्क में आने पर उनके हृदय में स्वस्थ आकर्षण भाव उदय हो जाता है जो सर्वधा नैसर्गिक है। शकुन को प्रेम करते समय वे उसकी सभी समस्याओं को इतने धैर्य पूर्वक तथा सूझ - बूझ के साथ अपनाते हैं कि शकुन स्वयं को भरी - भरी समझने लगती है। उसके शब्दों में - 'आज लगता है, साथ रहना भी कितनी तरह का हो सकता है। जिन्दगी भर साथ रहकर भी आदमी कितना अकेला रह सकता है और किसी का हल्का स्पर्श भी कैसे जिन्दगी को किसी के साथ होने के अहसास और अपने पन से भर सकता है'। शकुन का इस प्रकार सोचना स्पष्टतः इस बात का परिचायक है कि वह डा. जोशी के व्यक्तित्व से कितनी गहराई तक प्रभावित थी। शकुन को लगता है कि पिछले सात वर्षों तक वह यों ही स्वयं को कष्ट देती रही। डा. जोशी के प्रति समर्पण कर उसे एक विचित्र प्रकार का सुख - संतोष मिल रहा है। लेखिका के शब्दों में, 'सारा रास्ता अकेले - अकेले चलकर, सारी परेशानियों से अकेले - अकेले लड़कर भी ऐसा आत्मविश्वास और ऐसी शक्ति तो उसने अपने भीतर कभी महसूस ही नहीं की जो आज अपने को पूरी तरह डाक्टर के हवाले करके वह महसूस कर रही है'।

स्पष्ट वादी

डा. जोशी की एक अन्य उनकी स्पष्टवादिता है। उन्हें पता है कि शकुन का सर्वस्व बंटी है। पर शकुन के गलत लाड़ - दुलार करने पर वे समझाते हैं, 'तुम उस पर शायद इतना हावी होती जा रही हो कि वह पूरी तरह लड़का बन ही नहीं पाया। तुमने उसे ऊधम करने ही नहीं दिया - हां, औरतों वाली जिद और रोना सिखा दिया। इसी प्रकार वे अपनी मृत पत्नी के बारे में शकुन से बतलाते हुए स्पष्ट कहते हैं, वह एक अध्याय था जो उसी के साथ समाप्त हो गया और अब मैं उसे किसी के साथ खोलना नहीं चाहता'।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि डा. जोशी एक गहन सूझ बूझ वाले, मानवीय गुणों से ओत - प्रोत व्यक्ति के रूप में चित्रित किए गए है।

Unit - III

6. मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' एक समस्या प्रधान उपन्यास है। तर्क सहित सिद्ध कीजिए।

हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यासकार मन्नू भंडारी की अप्रतिम कृति है आपका बंटी। इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने सामाजिक यथार्थ को अत्यंत सूक्ष्मता से उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। यह उपन्यास वस्तुतः उच्च मध्यवर्गीय वर्ग की मानसिकता को हमारे सामने रखता है जो अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं। महत्वाकांक्षा के टकराव से अहम् आहत होते हैं और फलस्वरूप दांपत्य जीवन में विच्छेद की सम्भावना बढ़ती है। 'आपका बंटी' उपन्यास में वैवाहिक सम्बन्धों में

तनाव और तलाक की समस्या उठायी गयी है तथा इसके कारण सम्बन्धित दंपत्ति के बच्चों को घेरने वाली कुंठाओं तथा घुटने की समस्या का भी चित्रण किया गया है। संक्षेप में लेखिका ने निम्न समस्याओं को हमारे सामने प्रकट करने का प्रयत्न किया है -

1. तलाक की समस्या

'आपका बंटी' उपन्यास में अजय और शकुन दोनों ही महत्वांकाक्षी प्रकृति के हैं। उनके अहमों के टकराव से उनका पारिवारिक जीवन बिखर जाता है। शकुन भी एक सुशिक्षित नारी होने के कारण झुकना नहीं जानती। इसके अतिरिक्त वह भी कॉलेज में प्रिंसिपल के पद पर काम कर रही है। शादी के पश्चात कोई भी पक्ष समझौता नहीं करना चाहता। लेखिका कहती हैं, "समझौते का प्रयत्न भी दोनों में एक अंडरस्टैंडिग पैदा करने के लिए नहीं होता था, वरन् एक दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकाँक्ष से। तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे - लेटे दूसरे को दुःखी और बेचैन तथा छटपटाते हुए देखने की आकाँक्ष में रातें।" मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में यह दिखाने का प्रयत्न किया है तलाक की समस्या के कारण स्त्री - पुरुष को तो यातना सहनी ही पड़ती है, इसके अतिरिक्त उनसे सम्बन्धित लोगों को भी दुख सहने पड़ते हैं। यही कारण है कि शकुन और अजय के तलाक से उनका पुत्र बंटी उपन्यास के प्रारम्भ से अन्त तक दुखद मनस्थिति में ही रहता है। शकुन की पीड़ा को समझ वकील चाचा उसे परामर्श देते हैं, 'यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा है कि तुम लोग अलग हो जाओ। सम्बन्ध को निभाने की खातिर अपने को खत्म कर देने से अच्छा है कि सम्बन्ध को खत्म कर दो'। इस प्रकार तलाक की समस्या की कडुवाहट को मन्नू भंडारी ने बड़े ही यथार्थ ढंग से रूपायित किया है।

बच्चे के तनाव की समस्या

'आपका बंटी' की भूमिका में मन्नू भंडारी ने 'जन्म पत्री बंटी' की शीर्षक के अन्तर्गत जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं, उनसे यह तथ्य भली भाँगति सुस्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने बंटी जैसे उन बच्चों की समस्या को समाज के सम्मुख रखा है जिनके माता - पिता तलाक की प्रक्रिया से गुजर रहे होते हैं और बाद में अपना दूसरा विवाह कर लेते हैं। इस समस्या को सम्यक परिवेश में उभारने के लिए शकुन - अजय, अजय - मीरा और शकुन - डाक्टर जोशी विषयक प्रसंगों की अवतरणा भी आवश्यक थी, अन्यथा लेखिका का ध्यान मूलतः बंटी की समस्या को उभारने में ही केन्द्रित रहा है।

बंटी एक सम्वेदन शील लड़का है। वह छोटी से छोटी बात पर भी गंभीरता से सोचता रहता है। यही कारण है कि वह परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता। उसके मस्तिष्क में बार - बार यही विचार कौंधता रहता है कि उसे मम्मी पापा सहित मिले। उसकी यह हार्दिक इच्छा है कि वह उन दोनों के साथ रहे। दुर्भाग्य यह है कि उसे न तो पापा का प्रेम मिलता है और बाद में वह अपनी मम्मी के स्नेह के लिए भी तरसता रहता है। बंटी की मम्मी का अजय से तलाक हो जाता है और वह डाक्टर जोशी से विवाह कर लेती है। बटी को यह सब अच्छा नहीं लगता। वह यह सहन नहीं कर पाता कि कोई दूसरा पुरुष उसकी मम्मी से प्रेम करे। वह अजय के अतिरिक्त किसी भी अन्य पुरुष को पिता के रूप में स्वीकार करने की मनःस्थिति में बिलकुल नहीं है। वह डाक्टर जोशी को पापा भी नहीं कहता। एक उदाहरण द्रष्टव्य है - "ऐ बंटी, अब तू जोशी हो गया यार! बंटी जोशी,

नहीं अरूप जोशी"। "धत् मैं क्यों हो गया जोशी? मैं अरूप बच्चा हूं, बंटी बत्ता"। ..... फिर सारे दिन वह कागज पर अरूप बत्ता ..... अरूप बच्चा, बंटी बत्ता लिखता रहा था। लंच टाइम में मैदान में बैठा तो ऊँगली से जमीन पर लिखता रहा - बत्ता ..... बत्ता .....।

बंटी की एक अन्य समस्या यह भी है कि बंटी न तो अपने नए पिता डाक्टर जोशी को पिता के रूप में स्वीकार कर पाता है और न सौतले भाई - बहन अभि और जोत के साथ झगड़े में उसी को डांट सहनी पड़ती है। वह आयु में भी बड़ा है और फिर शकुन की भी मजबूरी है कि वह डाक्टर जोशी के बच्चों को कैसे डांटे।

लेखिका ने इस तथ्य को बंटी के माध्यम से बार - बार उभारा है कि वह स्वयं को डाक्टर जोशी के घर में उपेक्षित और अनावश्यक समझने लगा है। चाहे कमरे का चुनाव हो अथवा अल्मारी का और चाहे कार में बैठकर जाने का अवसर - बंटी बार - बार यह सोचता है कि सबसे बुरी वस्तुएँ मुझे ही दी जाती है, क्योंकि मैं इस घर में अनावश्यक या फालतू हूँ और मेरी किसी को भी चिंता नहीं है। बंटी अपने पिता के घर में भी एडजस्ट नहीं कर पाता। वहां नयी मां को देखकर उसे अपनी मम्मी की याद सताती रहती है। उसकी इसी विडम्बनापूर्ण स्थिति पर लेखिका ने पाठक वर्ग का ध्यान आकृष्ट किया है।

नारी की घुटन की समस्या

हमारे समाज में नारी की समस्या सर्वाधिक जटिल है। महानगरों में रहने वाली शिक्षित, उच्च पदस्थ नारियों के लिए यह समस्या और जटिल तथा उग्र हो उठती है। एक ओर वे आधुनिकता के रंग में रंगकर परम्पराओं, रूढ़ियों एवं पुराने मूल्यों से मुक्त होना चाहती हैं, समाज में पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देकर उसके समकक्ष स्थान प्राप्त करना चाहती हैं तो दूसरी ओर - युगों से चले आ रहे संस्कार और रूढ़ियाँ उन्हें बांधती हैं। नारियाँ लाख चाहने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पातीं। इस प्रकार पुराने और नए मूल्यों की रस्साकशी में नारी का जीवन घुटन से भर जाता है। 'आपका बंटी' उपन्यास में शकुन ऐसी ही आधुनिक नारी है जो घुटन की इस समस्या से ग्रस्त है। वह आधुनिक नारी तो बनना चाहती है पर उसके आस - पास का वातावरण ऐसा है कि उसका समस्त धैर्य जवाब दे जाता है और मानसिक अशाँति उसका पीछा नहीं छोड़ती। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'कल पहली बार मन में आया कि यदि वह अपनी दृष्टि अजय की जगह अपने ही ऊपर रखती तो शायद इतनी मानसिक यातना तो नहीं भोगती। तब उसका हर बढ़ता हुआ कदम, उसकी हर उपलब्धि उसे कुछ पाने का अहसास तो कराती। पर अब नहीं, अब और नहीं'।

इस प्रकार शकुन के माध्यम से लेखिका ने आधुनिक नारी के द्वन्द्व को सजीव अभिव्यक्ति दी है।

निष्कर्षतः मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में अनेक सामाजिक समस्याओं को उठाया है और उनका यथार्थ परक रूप प्रस्तुत किया है।

7. उपन्यास के तत्वों के आधार पर मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास का मूल्याँकन कीजिए।

उपन्यास का मूल्याँकन करते समय आलोचकों ने प्राय छह मादंड स्वीकार किए हैं - कथावस्तु, पात्र योजना अथवा चरित्र चित्रण, संवाद अथवा कथोपकथन, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा - शैली और उद्देश्य। इन तत्वों को ध्यान में रखते हुए 'आपका बंटी उपन्यास का मूल्यांकन इस प्रकार से किया जा सकता है -

कथावस्तु विश्लेषण

'आपका,बंटी' उपन्यास में पति - पत्नी के सम्बन्ध विच्छेद को शब्द बद्ध किया गया है। इस सम्बन्ध विच्छेद से सबसे ज्यादा कष्ट निर्दोष सन्तानों को उठाना पड़ता है। ऐसे ही एक बच्चे का करुण आख्यान प्रस्तुत उपन्यास है। यह उपन्यास सोलह अध्यायों में विभाजित है। उपन्यास का प्रारम्भ ही शकुन और बंटी से होता है। शकुन एक कॉलेज में प्रिंसपल है। बंटी स्कूल में पढ़ता है। शकुन के पति अजय कलकत्ते में रहते हैं। इनका अदालत में तलाक का मुकदमा चल रहा है। मां - पापके तनावों का शिकार निर्दोष बंटी को होना पड़ता है। बंटी मानसिक अंतदृष्ट् की स्थिति में जीने लगता है। तलाक के बद शकुन डा. जोशी से विवाह कर लेती है। पर बंटी को अपना नया घर बिलकुल पसंद नहीं। कोई दूसरा पुरुष उसके पापा का स्थान ले ले, यह उसे असहनीय है। वह एक 'प्राब्लभ चाइल्ड' बनता जाता है। अपनी जिद से वह पापा के साथ जाता है। पर उसकी कुंठाएँ और डर उसके साथ रहते हैं। वहां नयी मम्मी को देख उसे अपनी मां याद आती रहती है। उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि उसका हॉस्टल में प्रवेश कराया जा रहा है। उसकी अत्यंत दयनीय और बिडम्बनापूर्ण दशा बन जाती है। वह नही पापा प्राप्त कर सका और मम्मी के स्नेह से भी वांचित रह गया।

कथानक की दृष्टि से 'आपका बंटी' एक सफल और प्रभावशाली उपन्यास है। इसमें सभी कथा सूत्रों का सफल केद्रीकरण हुआ है। इसका एक कारण यह भी है कि इस उपन्यास के सारे ताने - बाने के बीच एक ही चरित्र 'बंटी' चित्रित किया गया है जो कथा को सूत्रबद्ध करने में पूर्णतया सफल रहा है। कुल मिलाकर यह उपन्यास व्यक्ति जीवन से सम्बन्धित होते हुए भी सामाजिकता के संस्पर्श से आलोड़ित है। जहां तक विश्वसनीयता का सम्बन्ध है, आलोच्य उपन्यास की सभी घटनाएँ पूर्णत सम्भाव्य और विश्वसनीय हैं। इसमें व्यक्ति जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं और अनास्थाओं, कुंठाओं, तनावों, हीनता बोध एवं व्यक्ति - स्वातन्त्र्य की एक ऐसी चेतना मिलती है जो इन्हे आधुनिक भाव - बोध से संयुक्त करती है। कथावस्तु विन्यास की दृष्टि से यह उपन्यास सुगठित, संगुम्फित, रोचक, विचार - पूर्ण तथा जीवन के निकट है। इसमें एकात्मकता तथा विविधता दोनों - प्रकार की कथावस्तु दार्शित हुई है।

पात्र योजना और उनका चरित्रांकन

पात्र योजना और उनके चरित्राँकन की दृष्टि से भी आलोच्य उपन्यास एक सफल उपन्यास सिद्ध होता है। इसके प्रमुख पात्र हैं शकुन और बंटी, जिनके चरित्रांकन की ओर लेखिका ने अधिक ध्यान दिया है। शकुन एक स्वाभिमानी,आत्म निर्भर नारी है। पति अजय के दूसरा विवाह कर लेने पर वह भी अन्यत्र विवाह कर लेती है। किंतु बंटी नवीन परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता। मां को छोड़ वह पिता के पास जाता है पर वहां भी उसे संतोष नहीं मिलता। अन्य पात्रों में फूफी ऐसी परम्परावादी नारी के रूप में चित्रित की गयी है जिसको तलाक पुरुष की नामर्दानगी का कृत्य लगता है। अजय को वात्सल्य पूर्ण पिता तथा पत्नी के स्वाभिमान को न सहन करने वाले पति के रूप में चित्रित किया गया है। डाक्टर जोशी एक समझदार और सहिष्णु व्यक्ति के रूप में चित्रित किए गए हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरित्राँकन की दृष्टि से उपन्यास सफल ही है।

संवाद अथवा कथोपकथन

कथा के विकास, पात्रों की गति, मानसिक स्थिति, वातावरण के उभार और पृष्ठभूमि के अभिव्यक्तिकरण में संवाद - योजना का विशेष महत्व है। मन्नू भंडारी के संवाद भी इस दृष्टि से

विशेष उल्लेखय हैं। 'आपका बंटी' में उनके द्वारा प्रयुक्त संवाद विषयानुकूल, समयानुकूल, पात्रानुकूल, चुटीले, संक्षिप्त एवं रोचक हैं। उपन्यास के संवाद पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी मनःस्थिति का उद्घाटन सफलता पूर्वक करते हैं। संवादों की सबसे बड़ी विशेषता इनमें निहित यथार्थपरकता और मनोवैझानिकता है। निम्नलिखित संवाद इस दृष्टि से उदाहरणार्थ प्रयुक्त किए जा सकते हैं -

'मम्मी! उसने धीरे से पूछा।

हूँ!'

'मम्मी, तपस्या करके मम्मी - पापा की कुट्टी नहीं खत्म की जा सकती'?

मम्मी ने सिर उठाया और एक क्षण उसका चेहरा देखती रही। फिर बाँह में भरकर उसे अपने में बींच लिया।

संवाद योजना में संक्षिप्त एवं चुटीलेपन का एक अन्य उद्हरण द्रष्टव्य है -

'पढ़ाई कैसी चल रही है, अच्छे नम्बर लाते हो ना'?

'कल हमारे यहाँ इन्स्पेक्शन था। मैंने खूब अच्छे जवाब दिए तो इन्स्पेक्टर साहब ने मुझे शबाशी दी और सर ने भी'।

'शाबाश! लो हमने भी शाबाशी दे दी। और पापा ने उसकी पीठ थपथपा दी'।

भाषा शैली

मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास की भाषा यथार्थपरक, पात्रानुकूल तथा देश काल की स्थिति के अनुकूल है। उनकी भाषा कथा के प्रवाह, पात्रों की योजना तता वातावरण की सृष्टि - सभी में पूरा योग देती है। 'आपका बंटी' उपन्यास की भाषा में सजीवता एवं रोचकता विद्यमान है। एक उदाहरण उल्लेखनीय है -

'बंटी बहुत संकुचित हो आया। भीतर कहीं गुस्सा भी आने लगा। फूफी ऐसा कहती तो मजा चखा देता। पापा से क्या कहे? पर पापा ऐसी बात कहते ही क्यों हैं? खुद तो ममी के साथ नहीं रहते, चाहते हैं वह भी नहीं रहे। बहुत चालाक हैं'।

देश काल अथवा वातावरण

मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास में देशकाल का तत्व विशेष रूप से मुखर है। उपन्यास की कथावस्तु को सजीव और सप्राण बनाने में देश काल का विशेष महत्व है। मन्नू भंडारी के इस उपन्यास को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वह विश्वसनीय वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास में ऐसा सक्षम एवं समर्थ वातावरण प्रस्तुत किया गया है जो औपन्यासिक कथावस्तु की यथार्थता को सजीव बना देता है। उन्होंने उपन्यास में वातावरण को थोपा नहीं है, अपितु उसे कथानक तथा चरित्रों की गति विधियों में एक प्रमुख और सशक्त माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्य

मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उनका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक एवं वैयक्तिक समस्याओं को चित्रित करने का रहा है। इसिलिए आलोच्य उपन्यास में व्यक्तिवादिता, वैयक्तिक रोमास, दाम्पत्य तनाव एवं यथार्थ वाद के दर्शन होते हैं। यह यथार्थ उनके उपन्यासों में एक ओर व्यक्ति - संदर्भों में व्यक्त हुआ है और व्यक्ति के ही परिप्रेक्ष्य में दूसरी ओर सामाजिक सन्दर्भों में ध्वनित हुआ है।

'आपका बंटी' उपन्यास का मुख्य उद्देस्य पति - पत्नी केसम्बन्ध - विच्छेद के उपरांत बच्चे की यातनादायक और दुखद स्थिति को दिखाना है। इसके साथ ही उच्च - मध्य वर्गीय समाज की महत्वाकांक्षाओं, अहंमों के टकराव और स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों में तनाव को भी रूपायित किया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास कला की दृष्टि से एक सफल उपन्यास है।

स्मृति का रेखाएँ

Unit - 1

लेखक परिचय

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महादेवी का नाम छायावादी कविता के चार महास्तंभों (प्रसाद पंत और निराला) के साथ गिना जाता है। इलाहाबाद विश्व विद्यालय से एम. ए करने के बाद आप प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रधानाचार्य नियुक्त हो गयीं। 'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि', 'सांध्यगीत' और 'दीप शिखा' इनके प्रसिद्ध काव्य संग्रह हैं। 'यामा' पर इन्हें ज्ञान पीठ पुरस्कार मिल थी। महादेवी वर्मा ने गद्य के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। संस्मरणात्मक रेखा चित्रों के क्षेत्र में तो उनका महती योगदान रहा है। सामग्री की कल्पनामूलक अभिव्यक्ति उनके रेखाचित्रों को विशिष्ट बनाती है। समाज के दीन - हीन तथा शोषित व्यक्तियों को कथ्य के रूप में चुनकर महादेवी वर्मा ने भारतीय समाज का जीवन चित्र प्रस्तुत कर दिया है। महादेवी के रेखा चित्रों में सम्वेदन शीलता, भावुक कल्पना, कवि हृदय और कलात्मक अभिव्यक्ति का अभूतपूर्व उत्कर्ष मिलता है। चित्रात्मकता उनके रेखाचित्रों की एक अन्य विशेषता है। उनके द्वारा रेखाचित्र की जिस शैली का विकास हुआ, परवर्ती युग में लेखकों के लिए वह दिशा सूचक सिद्ध हुई है। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' इनके संस्मरणात्मक रचनाओं के संग्रह हैं।

'स्मृति की रेखाएँ' के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का संक्षिप्त परिचय

एक

महादेवी वर्मा का पहला संस्मरणात्मक रेखाचित्र उनके घर की नौकरानी या अभिभाविका भक्तिन से सम्बन्धित है। भक्तिन का वास्तविक नाम लछमिन अर्थात लक्ष्मी था। पर उसकी प्रार्थना थी कि उसे इस नाम से न बुलाया जाए। उसके गले में कंठी - माला देखकर लेखिका ने उसका 'भक्तिन' से नया नामकरण कर दिया। भक्तिन का व्यक्तिगत जीवन दुखी था। पिता की मृत्यु हो गयी और घर में विमाता थी। विवाह के बाद केवल पुत्रियों को जन्म देने के कारण घर में उसका स्थान भी निम्न हो गया। पति को लेकर वह घर से अलग हो गयी। बड़ी बेटी के विवाह के बाद पति की मृत्यु हो गयी। भक्तिन ने अपनी मेहनत के बल पर अपनी दो और बेटियों का भी विवाह किया। पर दुर्भाग्य कि बड़ी बेटी विधवा हो गयी। एक षडयंत्र द्वारा एक युवक उसके कमरे में घुस गया। शोर होने पर भक्तिन को विवश होकर उससे बेटी का विवाह करना पड़ा। किंतु अब रोज क्लेश के कारण घर की सुख संपत्ति नष्ट हो गयी। इसलिए भक्तिन को यह नौकरी करनी पड़ी।

भक्तिन की लेखिका के प्रति पूर्ण समर्पित भक्ति है। वह लेखिका के लेखन के समय जगती रहती है और उनकी हर छोटी - बड़ी आवश्यकता को तत्परता से पूरा करने के लिए सन्नध रहती है। लेखिका के जेल जाने की बाता सुन वह वहां भी चल पड़ने के लिए तत्पर हो जाती है। महादेवी जी सोचती हैं कि मृत्यु की घड़ी आ जाने पर वह भक्तिन से कैसे विदा मांगेगीं। भक्तिन आज उनकी चेर - सहचरी बन गयी है।

दो

दूसरा रेखाचित्र महादेवी जी ने एक चीनी लड़के का खींचा है जो फेरी लगाककर सामान बेचता था। अपने सहज और निष्पाप मन के कारण उसने लेखिका का स्नेह अनायास ही पा लिय।

वह समय - समय पर 'सिस्तर के वास्ते लाया' कहकर लेखिका को उपहार भी देता रहता। भाषा की समस्या के बावजूद उसकी करुण कथा लेखिका को पता चली। पिता की मृत्यु के बाद घर में विमाता और बड़ी बहन थी। विमाता के अत्याचारों से दुखी बालक बहन के आँचल में मुंह छिपा लेता। विमाता ने बहन को विवश कर वेश्या बना दिया। वह रोज रात में घर छोड़ चली जाती। उसका स्वस्थ्य दिन प्रतिदिन गिरने लगा। एक रात जाने पर बहन फिर लौटकर नहीं आयी। दुखी बालक पहले अपने मृत पिता को ढूंढता रहता था, अब बहन को भी ढूंढने लगा। वह एक बार जेबकतरों के दल में चला गया। वे उसे जानवरों के समान रखते और तरह - तरह के अत्याचार करते। अंत में पिता के मित्र की सहायता से उसे मुक्ति मिली। वहां रहकर उसने व्यापार सीखा और तब से वह फेरी लगाता है। समझदार होने पर उसने अपनी बहन को ढूंढने का प्रयत्न किया परन्तु वह प्रयत्न निष्फल ही रहा। उसकी केवल दो इच्छाएं अब हैं - ईमानदार बनने की और बहन को ढूंढ लेने की। चीन में लड़ाई का समाचार सुनने पर वह अपने देश की रक्षा के लिए वहां जाने को तैयार हो गया। अपना सारा सामान लेखिका को देकर जाने के लिए पैसे का प्रबंध कर वह अपनी मातृभूमि चला गया। लेखिका उसका कपड़ा नापने का गज आदि देखकर आज भी उसे याद करती रहती है।

तीन

'स्मृति की रेखाएँ' का तीसरा संस्मरण बद्रीनाथ की यात्रा से सम्बन्धित है जहाँ महादेवी जी को दो ऐसे पर्वत पुत्र मिले थे जो आज तक उनकी स्मृतियों में सुरक्षित हैं। तीर्थ यात्रा के लिए लेखिका अपनी मौसी और परिचारिका भक्तिन के साथ निकली थीं। चढ़ाई पर सामान ले जाने के लिए कुलियों की आवश्यकता थी। वहीं पर महादेवी जो को जंगीया और धनिया नाम के दो भाई मिले। ये दोनों चचैर भाई थे पर परस्पर अत्यधिक स्नेह था। जंगिया का पिछले वर्ष विवाह हुआ था। एक पुत्र हो जाने के बाद फिर पैसों की समस्या से निपटने के लिए वह लंबी यात्रा के लिए निकला था। गरीबी के कारण धनिया भी साथ हो लिया था। दोनों भाई सहनशीलता की मूर्ति थे। दोनों अधिक सामान उठने की प्रतिद्वन्द्वता करते जिससे दूसरे को कम बोझ उठाना पड़ेगा महादेवी से उनका स्नेह मातृवत था। सामान्यतयः कुली बीमार पड़ने पर यात्री रुकते नहीं, दूसरा कुली कर आगे बढ़ जाते हैं। धनिया के बीमार पड़ने पर जंगिया ने स्वयं वही रुकने का निश्चय कर लिया। वह दूसरे दो कुली भी ले आया। इधर धनिया बीमारी के बावजूद चलने को तत्पर था। दोनों के स्नेह को देख महादेवी जी ने वहीं रुकने का निश्चय कर लिया। यात्रा समाप्त होने पर महादेवी जी को दोनों भाइयों ने रोते - रोते विरा दी। महादेवी वर्मा उनके स्नेह से भावा विभोर होकर कहती हैं कि उनकी मां होकर जो सम्मान मिला वह बताना सहज नहीं है।

चार

चौथा संस्मरणात्मक रेखाचित्र इलाहाबाद के निकट के एक दरिद्र अरैल नामक गांव की पृष्ठभूमि में मुन्नू की भाई के बारे में लिखा गया है। मुन्नू की भाई के पिता निर्धन कथावाचक थे। बिन मां की बेटी को पिता ने हो पाला था। बेटी कुशाग्र बुद्धि की थी। किंतु नौ वर्ष की होते - होते पिता भी चल बसे। पिता के गुरु भाई उसे लेकर चल दिए। रास्ते में वे भी उसे छोड़ भाग गए। अभागिनी बालिका के उद्धार के लिए एक बूढ़े ब्राह्मण ने उसे अपने घर की सेविका बना लिया। यहीं उसे हथई के पिता ने देखा और उसे अपनी पुत्रवधु बना लिया। यह घर और भी दरिद्र था। बेटे का काम जुआ खेलना और बाप का काम भीख मांगना था। इन दोनों की देख भाल करते - करते

वह तेरह वर्ष की बलिका से तेइस वर्ष की युवती बन गयी और नववधु से माता बन गयी। महादेवी जी का उससे सहज ही लगाव हो गया और वे उसे अपने पास ले आयीं। स्कूल में दाई की नौकरी दे दी। परन्तु मुन्नु की भाई का मन अपने घर में ही अटका रहता। अंत में वह गाँव वापस लौट गयी। ब्राह्मण होकर भी घर की सहायता के लिए उसने मिट्टी ढोने जैसा काम आरम्भ कर दिया। लेखिका की इच्छा थी कि वह उस गांव की निरक्षर स्त्रियों और बच्चों के लिए एक स्कूल खोले। वहां एक पक्की इमारत भी थी पर उसके मालिक ने अपनी स्वार्थ - क्षुद्रता के कारण वह इमारत नहीं दी। वहां के निवासियों के लिए लेखिका अपना इच्छित पूरा नहीं कर सकीं, इसी ग्लानि के साथ यह संस्मरण समाप्त होता है।

पांच

यह संस्मरण महादेवी जी द्वारा इलाहाबाद में गंगा के किनारे किए गए कल्पवास की पृष्ठभूमि में कुछ ग्रामीण पात्रों के चरित्रों पर लिखा गया है। महादेवी जी की धर्म के क्षेत्र में वैसी प्रवृत्ति नहीं, पर कल्पवास का उन्हें मोह है; क्योंकि उन्हें लगता है कि इस थोड़े से समय में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान हो जाता है वैसा किसी अन्य उपाय से संभव नहीं। गंगा के किनारे उनकी पर्ण कुटी बनी। रात में आश्रय ढूंढती ग्रामीणों की एक भीड़ वहां टिक गयी। बूढ़े ठकुरी बाबा उस दल के नेता थे। ठकुरी बाबा कवि थे और घर गृहस्ती से उनका लगाव नहीं था। सौतेले भाइयों की पत्नियाँ उनकी बहू को नौकर के समान रखती। एक कन्या देने के बाद वह चल बसीं। अब ठकुरी बाबा को होश आया। मां की तरह ही बेटी का पालन - पोषण उन्होंने किया। एक सुशील लड़के से बेटी की सगाई कर दी। पर चेचक के आक्रमण ने उसकी आंखों की ज्योति लगभग छीन ली। अब ठकुरी बाबा अपने इस परिवार और गांव के अन्य लोगों को प्रतिवर्ष कल्पवास करने के लिए लेते हैं। एक विधवा ठकुराइन हैं, दूसरी एक सहुआइन हैं जिनके पति ने उन्हें छोड़ दिया है। एक वृद्ध काछी है जो अपनी तीन बेटियों को लाया है। एक संतान हीन पंडित - पंडिताइन हैं। सबके जीवन की अपनी - अपनी करुण कथाएँ हैं। इन लोगों ने भजन कीर्तन कर लेखिका का मन मोह लिया। महादेवी जी को उनके गीत नामी कवि - सम्मेलनों की तुलना में अधिक स्वाभाविक और मधुर लगे। दो वर्षों से ठकुरी बाबा इस कल्पवास में नहीं आ रहे। पता नहीं उन्होंने देह त्याग दी हो या नहीं। इस वृद्ध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते लेखिका यह संस्मरण समाप्त करती हैं।

छे

प्रस्तुत संस्मरण बिबिया नाम की एक युवती की करुण कहानी है। बिबिया के घर में उसका बड़ा भाई कन्दई भाभी और दादी थे। वह बहुत परिश्रमी स्वभाव की थी। बिषिया के पति की गौने के पूर्व ही मृत्यु हो गयी। वह धोबियों के घराने से थी। इस वर्ग में स्त्री का अकेले रहना सामाजिक अपराध माना जाता है। कन्दई ने उसके लिए दूसरा वर ढूंढा। पर यहां विवाह के कुछ दिनों के बाद पति ने उसको निकाल दिया। पति शराबी और जुआरी था। उसके साथी बिषिया को बुरी दृष्टि से देखते। पति के नीच कर्मों से घृणा के कारण अपनी रक्षा के लिए बिषिया चाकू साथ रखती। अंत में पति ने पंचायत बुलाकर उसे निकाल दिया। पर बिषिया के चरित्र पर पति - त्याग से लाँछने लगने लगीं। कन्दई ने किसी तरह फिर उसके लिए वर चुना। यह व्यक्ति विधुर, अधेड़ और पाँच बच्चों का बाप था। बिषिया नें बहुत हाथ - पैर पटके पर उसकी एक नचली। बिषिया के नवीन पति झनकू की दो पत्नियाँ मर चुकी थीं। पहली से उत्पन्न पुत्र बिषिया की ही आयु का था। झनकू के

साथ कुछ समय तो बिषिया का मजे में ही बीता पर सौतेले पुत्र के ननिहाल से आने पर बिषिया का सुख चैन नष्ट हो गया। वह बिषिया को कुदृष्टि से देखता। बिषिया के फटकाटने पर उसने बिषिया के लिए अफलाहें फैला दीं। झनकू को भी पत्नी पर संदेह हो गया और बिषिया एक बार फिर निर्वासित हो गयी। इतने लांछनों के कारण बिषिया नरकपूर्ण जीवन बिता रही थी। एक दिन वह गायब हो गयी। महादेवी जी के निष्कर्ष के अनुसार उसने एक दिन खूब शराब पीकर यमुना में छलांग लगा दी। आज भी महादेवी जी को उस बालिका के जीवन को करुण कथा विचलित करती है।

सात

यह संस्मरण गुंगिया नामक एक गूंगी स्त्री से सम्बन्धित है। लेखिका अशिक्षित ग्रामीणों के पत्र लिखती रहती थी। इन्हीं पत्र लिखवाने वालों की भीड़ में एक दिन गुंगिया आ खड़ी हुई। गुंगिया का वास्तविक नाम धनपतिया था। विवाह के बाद उसके गुंगोपन का पता ससुराल वालों को चला। यह बात पहले छिपा ली गयी थी। उन्होंने उसके गहने कपड़े उतारकर उसे लात मार दी। बहुत समय बीत गया। उसकी छोटी बहन एक बच्चे को जन्म देकर चल बसी। उस बच्चे को मुंगिया ने तन - मन - धनें से पाला। पर बड़े होने के बाद वह बच्चा जिसका नाम हुलासी रखा गया था, गुंगिया से विद्रोह करने लगा। एक बार वह अपने पिता से मिलने गया पर पिता की नयी गृहस्थी में उसका स्वगत् नहीं था। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था और उसके चार बच्चे थे। आहत होकर हुलासी लौट आया। गाँव में एक बाबाजी आये थे। हुलासी हर समय वहीं पड़ा रहता। गुंगिया ने बाबाजी से आंचल फैलाकर हुलासी को छोड़ देने की भिक्षा मांगी। पर कुछ दिन बाद बाबाजी के जाने पर हलासी भी गयब हो गया। गुंगिया रोती बिलखती रही, पर हलासी लौट के नहीं आया। आज वर्षों बाद वह अपने बेटे को ही चिट्ठी लिखवाने आयी थी। महादेवी जी ने दया करके अपनी मिश्र को हुलासी को ढूंढवाने के लिए पत्र लिखा। उनकी मित्र ने एक पत्र अपने दरबान हर भजन का भेजा जो हुलासी की ही तरह गांव छोड़कर भाग आया था। गुंगिया ने उस पत्र को हुलासी का ही समझा और अपने हृदय से लगा दिया। वह वात्सल्य की प्रतिभा पत्र मिलने के एक महीने बाद ही चल बसी।

स्मृति की रेखाएँ

विशिष्टता

महादेवी वर्मा काव्य के क्षेत्र में आधुनिक युग की मीराँ हैं तो संस्मरणों के क्षेत्र में भी उन्होंने जीवन के उसी अमृत और विष को एकाकार किया है जिनसे मीराँ का काव्य बना था और जीवन मिटा था। उनके संस्मरणों में सहज ही भारतीय जीवन के शब्द चित्र एक अद्भुत करुणा के रंग में रंग कर मुखरित हो उठते हैं। उनके चरित्र इतने मानवीय हैं कि उनका सुख - दुख, विडंबनाएँ पाठक की अपनी बन जाती हैं।

महादेवी वर्मा के संस्मरणों की विशिष्टता उनके जीवंत चरित्रों और उनकी सहज पृष्ठभूमि के सफल चित्राँकन की है। ग्रामीण चरित्रों का जीवन संघर्ष, दरिद्रता और निरक्षरता के परिवेश में आगे बढ़ने की अकुलाहट, जीवन - समर में गिर कर फिर कमर कस कर खड़े होने की प्रवृत्ति इन संस्मरणों को अद्वितीय बना देती है। भक्तिन सबसे लड़ती है पर उसमें अगाध ममत्व है। इधर - उधर से पैसा भी गायब करती है पर लेखिका के परिहास करने पर वह नासमझ उन्हें अपना सब

धन अर्पित करने को तैयार हो जाती है। महादेवी के जेल जाने की अफवाह सुन वहाँ भी चल पड़ने को वह तत्पर है। नौकरानी से बढकर वह लेखिका की अभि भाविका का स्थान ले लेती है। चीनी बालक की करुण कथा भी पाठक को हिला देती है। एक अभाग बच्चा जिसका स्वप्न केवल ईमानदार बनने का और अपनी बहन को ढूंढ निकालने का है। जंगिया और धनिया नामक दो ईमानदार कुलियों के माध्यम से महादेवी जी ने पहाड़ों के संघर्ष भरे जीवन और गरीबी का यथार्थ चित्रण किया है। इसी तरह मुन्नु की मां का करुण संघर्षपूर्ण जीवन का महादेवी जी ने अनुगम चित्रण किया है। क्षुद्र स्वार्थों के टकराव के कारण वे उस गांव में पाठशाला नहीं चल सकीं। यह विडम्बना हमारे समाज के कटु यथार्थ को अभिव्यंजित करती है। कल्पवास का सजीव चित्रण महादेवी जी ने एक अन्य संस्मरण में किया है जिसमें ठकुरी बाबा का चरित्र सजीव होकर उभरा है। बिबिया के जीवन की करुण त्रासदी एक अन्य संस्मरण पूरी मार्मिकता से अभिव्यक्त करता है। समाज में उच्च वर्ग या निम्न वर्ग - दोनों में ही नारी का शोषण होता है, यह संस्मरण इस तथ्य को सशक्त रूप में रखता है। एक दूसरा संस्मरण गुंगिया नामक एक गूंगी मां की गूंगी ममता को करुण रूप में प्रकट करता है जिसका गोद लिया बालक उसे छोड़कर चला गया है।

पात्रों की प्रष्ठभूमि के अनुसार ही इन संस्मरणों में भाषा का प्रयोग हुआ है। अवधी बोली के प्रयोग संस्मरणों को सजीव और जीवंत बना देते हैं। भक्तिन की बोली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है - "तुम पचै का बताई - यहै पचास बरिस से संग रहित है"। महादेवी जी की शैली कहीं कहीं विवरणात्मक है जो पात्रों की पृष्ठभूमि के चित्रण के लिए आवश्यक भी है।

संक्षेप में 'स्मृति की रेखाएँ' के सभी संस्मरणात्मक रेखाचित्र अपने पात्रों की अस्मिता को पूरी गहराई से, उन्हें मानवीय दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। इन अनुपम संस्मरणों द्वारा महादेवी वर्मा ने निश्चित ही परवर्ती साहित्यकारों को नूतन मार्ग दिखाए हैं।

Unit - II

प्रश्नोत्तर

1. भक्तिन के चरित्र की विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

'स्मृति के रेखाचित्र' में संकलित संस्मरणों में एक महादेवी वर्मा ने अपनी परिचारिका भक्तिन पर लिखा है जिसने अपने प्रगल्भ स्नेह और सरलता के द्वारा धीरे - धीरे उनकी अभिभाविका का स्थान ले लिया। सेवक धर्म में हनुमान से स्पर्धा करने वाली भक्तिन का वास्तविक नाम लछमिन या लक्ष्मी था किंतु उसके अनुरोध पर महादेवी जी ने उस इस नाम से नहीं पुकारा। उसके गले में कंठी माला देखकर उन्होंने 'भक्तिन' नाम से उसका नया नामकरण कर दिया। भक्तिन का नौ वर्ष की आयु में ही गौना हो गया था। संपत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने पिता की मृत्यु का समाचार भी देर से भिजवाया। संताप में जलती भक्तिन का ससुराल में भी स्वागत नहीं था क्योंकि एक के बाद एक उसकी बेटियाँ हो रही थीं। सौभाग्य यही या कि पति का असीम स्नेह उसे प्राप्त था। इसी स्नेह के सहारे परिश्रमी भक्तिन ने अलग घर कर लिया। पर बड़ी बेटी के विवाह के बाद पति की मृत्यु हो गयी। संघर्ष शील भक्तिन ने धैर्य नहीं छोड़ा और संपत्ति के लालच में विवाह का लोभ दिखलाते सम्बन्धितों को अंगूठा दिखाकर अपने अगध परिश्रम के बलबूते अपनी दो बेटियों का भी विवाह किया। परन्तु दुर्भाग्य उसके पग - पग पर चल रहा था। बड़ी बेटी विधवा हो गयी। दौलत हड़पने के लिए सम्बन्धियों ने नया षडयंत्र रचा। एक नवयुवक

को उन्होंने उस लड़की के कमरे में बंद कर दिया। विवश भक्तिन को उसे घर जमाई बनाना पड़ा किंतु अब घर में रोज कल्ह होने से आय के स्रोत सूखने लगे और अजीविका के लिए भक्तिन को महादेवी जी की नौकरी करनी पड़ी।

भक्तिन पूरी गंवार है पर अपनी हट्ट चीज को वह इतने तर्क संगत रूप में प्रस्तुत करती कि लेखिका को विवश होकर उसे स्वीकार करना पड़ता। उसकी बनायी मोटी रोटियां भी इसिलिए उन्हें खानी पड़ती। रात में महादेवी जी के काम करते समय वह एक ओर जगती बैठी रहती और छोटी से छोटी आवश्यकता को भी पूरा करने को तत्पर रहती। उनके भ्रमण की भी एकान्त साथी भक्तिन रही है फिर वह चाहे बदरी केदरनाथ की दुर्गम यात्रा हो चाहे किसी गाँव की धूल भरी पगडंडी की। सबका सुख - दुख भक्तिन को प्रभावित करता है। छात्रावास की बालिकाएँ भी उसे घेरे रहती हैं। भक्तिन को जेल से उतना ही डर लगता है जितना यम लोक से। पर लेखिका के जेल जाने की गत्प सुनकर वह तुरंत साथ चलने को तत्पर हो उठी। ऐसा नहीं कि भक्तिन में दुर्गुण नहीं। बहुत सच बोलने पर वह विश्वास नहीं करती। घर में इधर - उधर पड़े पैसे भी वह कुशलता से गायब कर लेती है। बहुत कंजूस भी है वह। पर युद्ध के समय घर छोड़ने की बात पर वह महादेवी जी को अपने गाँव ले चलने का हठ करने लगी। यही नहीं, अपना सारा जमा पैसा भी वह उन्हें देने को सहर्ष तत्पर हो उठी।

संक्षेप में भक्तिन का चरित्र मानवीय संवेदनाओं से ओत - प्रोत है। उसकी महादेवी जी पर संपूर्ण भक्ति है। जीवन संघर्ष में जलते - जलते उसे शरीर पर विषमताओं के आवरण अवश्य चढ़ गए हैं पर उनके अंदर से फूटती मानवीय स्नेह की उजस्र धारा पाठकों को सहज ही अभीभूत कर डालती है।

2. चीनी बालक के संस्मरण का संक्षेप प्रस्तुत कीजिए।

'स्मृति की रेखाएँ' में महादेवी वर्मा ने एक चीनी बालक के जीवन की करुण कथा को भी एक अनोखे संस्मरण के रूप में प्रस्तुत किया है। कई वर्ष पहले एक फेरी लगाने वाला चीनी बालक महादेवी जी को मिला था। उसकी निर्दोष मुद्रा और लेखिका को 'सिस्तर' पुकारने की भंगिमा उसे अनायास ही लेखिका के हृदय के निकट ले आयी। वह अपनी 'सिस्तर' के वास्ते उपाहार के स्वरूप में रूमाल आदी लाता रहता। भाषा की दुर्गम खई को लांधकर किसी प्रकार उसके जीवन की कथा लेखिका को पता चल ही गयी; क्योंकि करुणा की भाषा शब्दहीन होकर भी बोलने में समर्थ है। मांडले में चीनी बालक अपनी सात वर्षीय बहन और विमाता के साथ रहता था। दिवंगत पिता को ढूढने का प्रयत्न वह अबोध करता रहता। विमाता के अत्माचारों की सीमा न थी। वह बहन को वेश्या बनाकर पैसा कमाने की कोशिश कर रही थी। वह रीज रात में संवर कर बाहर जाती बहन को देखता जो सुबह फीका रंग और आंखों में आँसू लिए लौटती। बहन का शरीर दिनो दिन कमज़ोर हो रहा था। एक रात वह ऐसी गयी कि फिर कभी न लौटी। छोटा बालक अपने जीवन की एकमात्र आधार बहन को ढूंढने में भटकता रहा। फिर वह चोरों के दल के हाथ लग गया। यहाँ उसपर अमानुषिक अत्याचार हुए। वह एक जेबकतरा ही बनता अगर पिता के एक मित्र की दृष्टि उस पर न पड़ती। मित्र ने उसे व्यवसाय के गुर सिखलाए और इस तरह वह कपड़ों की फेरी करने लगा। कुछ अधिक समझदार होने पर उसने अपनी अभागी बहन को ढूंढने का बहुत प्रयत्न किया, पर उसका पता न पा सका। चीनी की दो इच्छाएँ मात्र हैं, ईमानदार बनने की और बहन को ढूंढ लेने की - जिनमें से एक की पूर्ति तो स्वयं उसी के हाथ में है और दूसरी के लिए वह प्रतिदिन भगवान बुद्ध से प्रार्थना करता है।

एक दिन आकर उसने महादेवी जी को अपने सारे कपड़े बेचने चाहे। वह मालिक को हानि नहीं पहुंचाना चाहता था। उसने कहा कि चाइना से लड़ने के लिए बुलावा आया है। आवश्यक रुपया मिलने पर वह मालिक का हिसाब चुकाकर तुरंत देश लौटना चाहता था। महादेवी जी के पूछने पर कि वहाँ उसका कौन है, चीनी का तुरंत प्रत्युत्तर था कि उसका देश उसे बुला रहा है। कपड़े नापने का गज वह वहीं छोड़ गया।

आज भी कपड़े के तीन थान और वह गज महादेवी जी के कक्ष में पड़े हैं। उन्हें देखकर उन्हें उस बालक की स्मृति बरबस हो आती है। चीनी बालक के इस संस्मरण के द्वारा महादेवी वर्मा ने मानवीयता के सभी पक्षों का एक तलस्पर्शी अंकन किया है। यह रेखाचित्र पाठकों के मन में सजीव हो उठता है।

3. नेपाली कुलियों के जीवन चित्रण का महादेवी वर्मा ने किस प्रकार अंकन किया है?

'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी वर्मा जी के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का अनूठा संकलन है। इसमें उन्होंने मानवीय संवेदनाओं और करुणा से ओत - प्रोत ऐसे संस्मरण लिखे हैं जो पाठकों के हृदय की सहज की चिर धरोहर बन जाते हैं। इनमें से एक मर्मिक संस्मरण दो नेपाली कुली बंधुओं जगिया और धनिया के बारे में है।

महादेवी जी एक बार अपनी परिचारिका भक्तिन और मौसी के साथ बदरीनाथ की यात्रा पर गयी थी। पहाड़ की चढ़ाई पर सामान उसने के लिए कुलियों की आवश्यकता पड़ने पर उनका जंगिया व धनिया से परिचय हुआ। इनका वास्तविक नाम जंग बहादूर व धन बहादूर था। घर की गरीबी के कारण वे इतनी दूर काम करने को आये थे। फटे पुराने कपड़ों और टोपी के छेदों से उनकी गरीबी टपक रही थी। ये कुली पशुओं के समान काम करतेरहते हैं और यात्रियों के अत्याचार के बाद भी मुंह से शिकायत नहीं निकालते। कपड़ों के नाम पर जंगिया और धनिया के पास दो फटे टाट के टुकड़े और एक फटी काली कमली थी जो उनका शरीर भी नहीं ढक पाती थी। पर वे अपनी किसी तकलीफ की शिकायत नहीं करते। महादेवी जी के कुछ भी कहने पर जंगिया का एक ही उत्तर रहता -' कुछ तकलीस नहीं। अस्सा है मां'। दोनों चचेरे भाइयों में असीम स्नेह था।

जंग बहादूर दूर - दूर तक यात्राएँ कर चुका था। दो वर्ष पहले उसका विवाह हुआ और पिछले वर्ष पत्नी ने एक पुत्र रत्न भी दे दिया। कुछ न कुछ कमाने का प्रश्न उग्र हो उठा। इसीलिए वह परिवार से आंसुओं की विदाई लेकर काम करने निकला है। उसे समर्थ जानकर विधवाकाली ने अपने पुत्र धनिया को भी उसके साथ कर दिया। अपनी मजदूरी वह ले जाने के लिए जमा कर रहा है और जो कुछ इनाम में मिल जाता है, उससे पुत्र के लिए एक टोपा और कुरता बनाने की इच्छा उसके मन में है।

धनिया के बीमार पड़ने पर जंगिया वहीं रहकर उसकी सेवा के लिए तैयार हो गया। उसने महादेवी जी के लिए दो कुलीभी ठीक कर डाले। इधर भाई का नुकसान बचाने के लिए बीमारी में भी धनिया चलने को तत्पर था। भाइयों का यह स्नेह देखकर महादेवी ने धनिया के ठीक होने तक वहीं सकने का निश्चय कर लिया।

महादेवी जी के केदारनाथ जाने का निश्चय करने पर उनके थके साथियों ने रुद्र प्रयाग में विश्वास कर उनकी प्रतीक्षा की बात सोची। अब सक कुली ही बहुत था। महादेवी जी की इच्छा थी

की जंगिया भी वहीं विश्वास करे पर वह मुफ्त में पैसे लेने को तैयार न या। महादेवी वर्मा के शब्दों में 'जंगावीर के स्वार्थ त्याग पर कोई काव्य चाहे न लिखा जावे, पर मेरे हृदय में उसकी स्मृति एक कोमल मधुर कविता है'।

एक दिन अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन भाइयों ने लेखिका को विदायी दी। महादेवी जी कहती हैं कि उनकी मां जी होकर मुझे जो सम्मान मिला वह भी बताना सहज नहीं।

इस प्रकार पहाड़ी कुलियों के संघर्षमय जीवन की पृष्ठभूमि में दो नेपाली भाइयों को चित्रित करता यह संस्मरण अत्पंत मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

4. 'मुन्नू की भाई' का चरित्रांकन अपने शब्दों में कीजिए।

'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का एक संग्रह है। इसमें उन्होंने ग्रामीण निम्न परिवेश की पृष्ठभूमि में अनेक चरित्रों के जीवंत संस्मरण लिखे हैं। ऐसे ही चरित्रों में एक 'मुन्नू की भाई' है।

एक बार लेखिका इलाहाबाद के पास के एक गाँव अरैल गयी थी। वहीं उसकी मुलाकात मुन्नू की भाई से हुई थी जिसके स्नेह और गरिमा पूर्ण व्यवहार ने लेखिका का ध्यान सहज ही आकर्षित कर लिया था। उसका घर दरिद्रता की प्रतिमूर्ति था। धीरे - धीरे महादेवी जी को उसकी करुण कहानी पता चली। उसके पिता एक निर्धन कथावाचक थे। मां बचपन में ही चल बसी। कुशाग्र बुद्धि की पुत्री अपने पिता के साथ हर समय रहती। घर नौ वर्ष की आयु में ही अचानक पिता की भी मृत्यु हो गयी। पिता के गुरु भाई ने उसका संरक्षण लिया पर एक जगह उसे अकेला छोड़कर वह भी चल निकला। अनाथ लड़की के क्रन्दन से दया खाकर एक बूढ़े ब्राह्मण ने उसे अपने घर में नौकरी दी। यहीं पर उसकी मेहनत और कर्मनिष्ठा को देखकर हथई नामक एक आदमी ने अपने पुत्र झनकू के लिए उसे पुत्रवधु के रूप में मांग लिया। यह घर और भी दरिद्र था। ससुर का काम भीख मांगना और बेटे का जुआ खेलते रहना था। तेरह वर्ष की आयु से काम करते - करते वह नववूध से माता बन गयी और आज दस वर्षों के बाद सब उसे मुन्नू की भाई के नाम से बुलाते हैं।

उसके घर में आर्थिक संकट को ध्यान में रखकर लेखिका ने उसे अपने स्कूल में दाई की नौकरी दी। वह मुन्नू के साथ लेखिका के पास आ गयी पर उसका मन अपने घर में ही अटका था। एक दिन संकोच के साथ लेखिका से विदा लेकर वह अपने घर लौट गयी। ब्राह्मण होते हुए भी घर की सहायता के लिए वह मिट्टी ढोने लगी। उसके सजातियों को यह बात नहीं पसंद थी किन्तु मुन्नू की भाई के लिए श्रम की महत्ता सर्वोपरि थी।

गांव के बालकों को निरुद्देश्य भटकते और स्त्रियों को आकरण लड़ते देखकर महादेवी जी के मन में गांव में ऐसी पठशाला खोलने की इच्छा हुई जिसमें स्त्रियां अवकाश के समय कातना, बुनना सीख सकें, बच्चे पढ़ सकें और बूढ़े समाचार पत्र सुन सकें। सभी सामग्रियाँ एकत्र कर ली गयीं, शिक्षक की समस्या भी सुलझ गयी पर महादेवी जी को पाठशाला चलाने के लिए कोई भवन न मिल सका। एक पक्की खाली इमारत थी किंतु उसके मालिक ने अपनी क्षुद्र स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण उसे देने से इंकार कर दिया।

महादेवी जी का यह सपना अधूरा ही रहा। आज भी जब वे गांव की दरिद्रता और निरक्षर बालकों को देखती हैं तो उन्हें केवल निःश्वास लेकर मौन रह जाना पड़ता है।

CUP/8647/11/500/SDE—10

इस प्रकार 'मुन्नू की भाई' पर केंद्रित यह संस्मरण एक ओर उसके जीवन की करुण कथा को मार्मिकता से अभिव्यंजित करता है वहीं दूसरी ओर सफेद पोश लोगों की स्वार्थ बुद्धि पर भी प्रहार करता है। गाँवों की दरिद्रता के उद्घाटन में यह संस्मरण अद्वितीय बन पड़ा है।

5. ठाकुरी बाबा पर लिखे महादेवी वर्मा के संस्मरण की कलात्मक विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

'स्मृति की रेखाएँ' में संकलित महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में उल्लेखनीय ठकुरी भाषा का संस्मरण है।

एक बार अपनी परिचारिका भक्तिन के बहुत विद्रोह करने पर भी लेखिका ने गंगा के किनारे कल्पवास करने की ठान ली। गंगा के किनारे कल्पवास के समय पर्णकुटी बनाकर रहने के प्रति लेखिका का मोह है। उन्हें लगता है कि कल्पवास की अवधि में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाता है वैसा अन्य किसी उपाय से संभव नहीं।

संक्रांति से एक दिन पहले संध्या समय लेखिका योगदर्शन पढ़ रही थीं। वर्षा होने वाली थी और बिजलियाँ चमक रही थीं। ऐसे समय पर सैरल ग्रामीणों का एक दल आसरा पाने के लिए उनकी कुटी के में आ घुसा। भक्तिन उन्हें भगाना चाहती थी पर महादेवी जी ने उन्हें रहने की जगह दे दी।

अगले दिन लेखिका का इस दल से परिचय हुआ। अनेक तरह के लोग थे और सबके जीवन की करुण गाथाएँ थीं। इस दल के नेता बूढ़े ठकुरी बषा थे। ठकुरी बाबा भाट कवि थे और व्यवहारिक बुद्धि से पूरी तरह शून्य थे। सारी सम्पत्ति सौतेले भाइयों के हाथ में थी। उनकी पत्नियां ठकुरी बाबा की पत्नी से नौकरों जैसा काम लेतीं। पर ठकुरी बाबा का ध्यान अपने - गीतों में ही रहता। एक पुत्री को जन्म देने के बाद पत्नी चल बसीं। अब ठकुरी बाबा को अचानक चेत आया। अपनी बेटी को उन्होंने मां से भी बढ़कर पाला - पोसा। एक योग्य लड़के से उसकी सगाई भी कर दी। पर चेचक के आक्रमण से दामाद की एक आंख जाती रही और दूसरी की ज्योति भी मंद पड़ गयी। उनके परिवार में अब यही लोग और बूढ़ी मौसी हैं। गांव के अन्य लोगों के साथ प्रतिवर्ष वे कल्पवास कर पुण्य कमाने आते हैं। अन्य लोगों की भी अपनी करुण कथाएँ हैं। एक विधवा ठकुराइन हैं, दूसरी एक परित्यम्ता सहुआइन हैं। एक विधुर काछी है जो अपनी तीन बेटियों के साथ आया है। एक संतानहीन ब्राह्मण दंपत्ति हैं जिनमें संतान न होने और एक सम्बन्धी बालक को गोद लेने की बात पर हर समय गृहकल्ह होती रहती है। इस विचित्र संसार के साथ महादेवी जी ने एक महीने का संमय बिताया। इसमें ठकुरी बाबा का आत्मीयता पूर्ण सहज छलकता स्नेह उनकी धरोहर बन गया है।

एक बार ठकुरी बाबा ने कुटी में भजन - कीर्तन का कार्यक्रम रखा। ठकुरी बाबा के कवित्त लेखिका को अभि - भूत कर गए। वह कार्यक्रम महादेवी जी को बड़े - बड़े काव्य - सम्मेलनों से भी अपनी सहजता और सरलता के कारण कहीं अधिक उत्कृष्ट लगा।

ठकुरी बाबा पिछले कुछ वर्षों से नहीं आए हैं। सम्भवतः उन्होंने देह - त्याग दी हो। पर महादेवी जी को लगता है कि धरती से उनका प्रेम इतना सच्चा है कि कहीं और रहना उनके लिए संभव ही नहीं है।

इस प्रकार ठकुरी बाबा पर आधारित यह संस्मरण उनके जीवन की मार्मिकता को पूरी संवेदना से उद्घाटित करता है। भाषा का वैविध्य विशेषतः अवधी के प्रयोगों ने चरित्रों को पूरी तरह से जीवंत कर दिया है। संक्षेप में यह महादेवी जी का अत्यंत सफल संस्मरणात्मक रेखाचित्र है।

6. 'बिबिया' के संस्मरण की विशेषताएँ संक्षेप में बताइए।

'स्मृति की रेखाएँ' महादेवी वर्मा के सुप्रसिद्ध संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का संग्रह है। इसमें उन्होंने निम्न परिवेश के पात्रों के जीवन को अत्यंत संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। अपने जीवन की काव्यात्मक करुणा से पाठकों के मानस को अभिभूत कर देने वाले ऐसे चरित्रों में 'बिबिया' का स्थान प्रमुख है। बिबिया के मां - बाप दोनों ही नहीं थे। घर में बड़ा भाई कन्दई, भौजाई और दादी थे। उसकी मां महादेवी जी को 'दिदिया' या बहन कहती थी। इसी नाते वह उन्हें मौसी कहने लगी। उसकी दुखद कथा धीरे - धीरे महादेवी जी को पता चली। बिबिया के गौने से पूर्व ही पति का देहांत हो गया था। उच्च घरानों के विपरीत निम्न जातियों में, धोबियों में स्त्री का अकेला रहना सामाजिक अपराध माना जाता है। कन्दई ने दुबारा बिबिया का विवाह कर दिया। आम धोबियों की तरह ही बिबिया का पति दुर्व्यवसनी और शराबी था। बिबिया की प्रकृति दूसरी थी। वह अपने पति की अश्लील बातें सह न सकी। पति के मित्र उसपर कुद्रष्टि रखते थे। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए बिबया ने अपने पास चाकू रखना शुरु कर दिया। आखिरकार पति ने पंचायत बुलाकर बिबिया को घर से निकाल दिया। हमारे समाज में जैसा होता है, उसी के अनुसार बिबिया के चरित्र के बारे में अफवाहें फैलने लगीं। उसको हर समय लाँछन मिलते। कन्दई ने एक बार फिर उसका विवाह पक्का कर दिया। इस बार वर एक अधेड़ और पांच बच्चों का पिता था। उसके पति झनकू ने अपने छोटे बच्चों के पालन - पोषण के लिए ही घर बसाया था। पर बिबिया को इस बार कोई शिकायत नहीं थी। एक वर्ष पति के साथ उसका सुखमय बीता पर दुर्भाग्य कदम - कदम पर बिबिया का पीछा कर रहा था। झनकू का बड़ा पुत्र भीखन विमाता की आयु का ही था। वह ननिहाल से लौट आया। वह नीच प्रवृत्ति का निकम्मा युवा था। अपनी विमाता पर ही उसने डोरे डालने शुरु कर दिए। बिबिया के फटकारने पर उसने बिबिया के चरित्र पर अफवाहें फैलानी शुरु कर दीं। झनकू को अपनी पत्नी के चरित्र पर संदेह हो गया और इस तरह बिबिया को एक बार फिर निर्वासन का दंड मिला। अब बिबिया का जीना दुरवार हो गया। समाज का दंड सहते - सहते एक दीन अचानक वह गायब हो गयी। लोगों ने समझा कि वह फिर कहीं भाग गयी।

महादेवी जी की खोज ने चौंकाने वाला परिणाम निकाला। उन्हें पता चला कि अपने सजातियों के विपरीत कभी शराब छूने भी न वाली बिबिया ने उस दिन शराब मंगायी थी। फिर बच्चों ने उसे यमुना में बार - बार कुल्ला करते और हंसते देखा था। जीवन से पराजित होकर इस प्रकार बिबिया ने अंततः यमुना की शरण ले ली।

बिबिया के विद्रोह भरे जीवन की करुण कथा आज भी लेखिका को याद हो उठती है। 'बिबिया' के माध्यम से महादेवी जी ने सामाजिक रूढ़ियों से जूझती एक ऐसी नारी का चित्रंण किया है जो मर जाती है पर जिसने झुकना नहीं सीखा। 'बिबिया' का चरित्र हिन्दी स्मरणों के क्षेत्र में अविस्मरणीय है।

7. 'गुंगिया' का चरित्र - चित्रण संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।

महादेवी वर्मा अपने काव्य में पीड़ा की प्रखर अभिव्यक्ति के लिए ही आधुनिक युग की मीराँ के नाम से जानी जाती हैं। उन्होंने अपने संस्मरणों में भी इसी वेदना को मुख्य आधार दिया है। 'स्मृति की रेखाएँ', में संकलित उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र इसी वेदना को विभिन्न ढंगों में रूपायित करते हैं। इन करुण संस्मरणों में पीड़ा और वेदना की दृष्टि से सर्वाधिक मुखर होकर गुंगिया का संस्मरण उभर कर आता है।

लेखिका गांव के अशिक्षित लोगों का पत्र लिखने का काम कर देती थी। इस क्रम में उसे अनेक तरह के अनुभव होते रहते। एक दिन 'गुंगिया' भी उसके पास पत्र लिखाने आ खड़ी हुई। गुंगिया का असली नाम धनपतिया था। माता पिता ने उसका गूंगापन छिपाकर विवाह कर दिया। पर विवाह के बाद भेद खुलने ही ससुराल वालों ने लात मार कर उसे बाहर निकाल दिया। गुंगिया घर में अभिशप्त जीवन बिताने लगी। समझौता करने के लिए उसकी छोटी वहन का उसके पति से विवाह कर दिया। किसी तरह मुंह बंद रखे गुंगिया ने यह सब सहा। कई वर्ष बीत गए। एक बच्चे के जन्म के बाद रुकिया भी चल बसी। उसका पति बच्चे को गुंगिया की देख रेख में छोड़ गया। गुंगिया ने जान लगाकर बच्चे का पालन - पोषण किया। हुलासी पर उसने अपनी सारी संपत्ति लगा दी। किन्तु बड़ा होते - होते हुलासी मां से विद्रोह करने लगा। एक बार वह अपने पिता के पास भी पहुंचा। पर अब वह अपनी नयी पत्नी और चार बच्चों के साथ रहता था। उसके घर में हुलासी के लिए कोई जगह न थी। हुलासी अकिंचन बना गुंगिया के पास लौट आया। गुंगिया ने उसकी सेवा - सत्कार में कोई कसर बाकी न रखी थी पर हुलासी का मन टूट गया था। उसे अपनी मां के पास अच्छा न लगता। गांव में एक बाबाजी आये थे। हुलासी अक्सर वहीं बैठा रहता। गुंगिया किसी तरह हुलासी को खींच लायी। फिर उसने बाबाजी से आंचल फैलाकर बेटे को छोड़ देने की भिक्षा मांगी। कुछ दिन बाद बाबाजी अपनी शिष्य मंडली के साथ चले गए। हुलासी भी उसी दिन गायब हो गया। गुंगिया पागलों की तरह उसकी खोज करती, रात - रात भर जाग उसकी प्रतीक्षा करती। किसी ने बताया कि हुलासी कलकत्ते में एक सेठ के यहां नौकरी कर रहा है। उसके कई बच्चे हैं। लोग गुंगिया को बड़े आदमी की मां कहकर चिढ़ाते पर वह परिहास को भी सत्य मानती। उसकी याचना पर लेखिका ने उसका पत्र लिख दिया। साथ ही हुलासी की खबर लेने के लिए अपनी मित्र को कलकत्ता पत्र भी लिखा। उनकी मित्र के यहां भी एक दरबान था जिसकी कथा हुलासी सी ही थी। उसने हुलासी के नाम से एक पत्र गुंगिया को भेजा जिसका सार था कि मां के ऋृामण से कोई कभी मुक्त नहीं हो सकता।

पत्र पाकर गुंगिया ने उसे हृदय पर दबा आंखें मूंद लीं। एक महीने के भीतर ही उसके करुण जीवन का अवसान हो गया। गुंगिया की अभागी ममता का महादेवी वर्मा ने अत्यंत मार्मिक तलस्पर्शी अंकन किया है। वात्सल्य की अवाक् पर चिर स्पन्दन शील प्रतिमा गुंगिया पाठकों के मानस में सदैव स्थित रहेगी।

शेखर एक जीवनी

Unit - I

शेखर एक जीवनी - कथासार

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न और विद्रोही कलाकार हैं। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश अज्ञेय के आगमन से ही होती है। इन्होंने सदैव परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का स्वर ऊँचा किया है, चाहे वह परम्परा सामाजिक हो और चाहे साहित्यिक। अज्ञेय को विद्रोह का स्वर केवल विद्रोह के लिए ही नहीं होता, वरन नयी - नयी परिणातियों और नयी - नयी सृजन सम्भावनाओं के लिए भी होता है। अज्ञेय ने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी प्रतिभा से कृतकृत्य किया है और अपनी सहज विद्रोहात्मकता के कारण साहित्य की प्रत्येक विधा को नयी नयी सृजन सम्भावनाओं से और नयी - नयी परिणतियों से समृद्ध भी किया है। जिस प्रकार अज्ञेय के काव्यगत रुढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर नयी - नयी सृजन सम्भावनाओं से सम्पन्न प्रयोग वाद को जन्म दिया, उसी प्रकार उपन्यास क्षेत्र में भी इन्होंने संवेदन और शिल्प के आधार पर नये - नये द्वारों को खोला। जिस प्रकार काव्य में अज्ञेय का विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार की विशिष्टता अज्ञेय को उपन्यास क्षेत्र में भी मिली है। अज्ञेय के प्रमुख उपन्यास हैं - 'शेखर एक जीवनी' 'दो भाग' 'नदी के द्वीप' और 'अपने - अपने अजनबी'।

अज्ञेय का 'शेखर - एक जीवनी' आत्म कथात्मक आख्यान है। यह अख्यान इतनी घनिष्ठता एवं आत्मीयता से अभिव्यक्त किया गया है कि अनेक आलोचक इसे स्वयं अज्ञेय की ही आत्मकथा मान लेने को विवश हो गए हैं। इस भ्रांति के निवारण केलिए अज्ञेय ने उपन्यास की भूमिका में हो स्पष्ट कर दिया है - 'यद्यपि शेखर का जीवन - दर्शन सामान्यतया उसके लेखक का भी जीवन - दर्शन है, तथपि उसमें जहाँ - तहां शेखर जिन Rationalisation या Fallacies की शरण लेता है वे शेखर की ही हैं, उसके लेखक की नहीं'।

इस उपन्यास की कथावस्तु का मेरुदंड शेखर है और इसिलिए उसकी सम्पूर्ण कहानी उसी के इर्द गिर्द चक्कर काटती है, वरन् एक मात्र उसी की कहानी है। इस कहानी की अभिव्यक्ति भी ऐसे बिखराव से हुई है जैसे जीवन में बिखराव होते हैं। यह उपन्यास दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में शेखर के बचपन और उसके व्यक्तित्व का चित्रण है तो दूसरा भाग उसके समाज में संघर्ष, उसके टूटने - बनने की कहानी है। प्रथम भाग की कथावस्तु को प्रवेश के अतिरिक्त चार खंडों में विभक्त किया गया है - प्रथम खंडः उषा और ईश्वर, द्वितीय खंडः बीज और अंकुर, तृतीय खंडः प्रकृति और पुरुष और चतुर्थ खंडः पुरुष और परिस्थिति।

प्रवेश

'प्रवेश' के अन्तर्गत उपन्यास कार ने कथावस्तु से पूर्व प्रस्तावना के रूप में शेखर के उस अन्तर्द्वन्द्व की झलक प्रस्तुत की है जो प्राणदंड के कारण उसके मानस में आन्दोलित हो उठा है। शेखर जेल में है और उसकी समझ से उसे फांसी मिलने वाली है। शेखर अपने बिगत जीवन का प्रत्यावलोकन कर रहा है। उसकी स्मृतियों में अनेक घटनाएँ उदित और अस्त होती हैं किन्तु नितान्त क्रमहीनता में जैसे मोतियों की माला टूट गयी हो और बिखरे हुए मोतियों को फिर एक बेहतरीन लड़ी में पिरो दिया जाये।

अपने गम्भीर विचारों में डूबते हुए शेखर को सबसे पहले शशि की याद आती है; क्योंकि उसका होना अनिवार्य रूप से उसके होने को लेकर है, ठीक वैसे ही जैसे तलवार में धार का होना

सान की पूर्व कल्पना करता है। शशि अब जीवित नहीं है, परन्तु शेखर को सहज ही वह मर्मान्तक घटना याद आ जाती है जब वह कारागृह से मुक्त होते ही सीधी शशि के घर पहूँचा था। इसी के साथ उसे वह घटना भी याद आती है जब वह कारागृह से मुक्त होते ही सीधा शशी के घर पहुँचा था। इसी के साथ उसे याद आता है जब शशि के पिता जीवन की अन्तिम सासें ले रहे थे और वह उस कारुणिक वातावरण से दूर भागकर समीप के एक खंडहर में बहुत देर तक बैठा रहा था।

शेखर अपने बचपन की स्मृतियों को पुनः जीने लगता है। उसे अपने भाई - बहनों की याद आती है। शेखर सबमें अलग प्रवृत्ति का था। विद्रोह का एक तीखा भाव उसमें आरम्भ से था। उसकी स्मृति में शारदा का चित्र कौंधता है जिसे उसने किशोरावस्था में प्यार किया था और अंत में एक दिन उसने शारदा के घर ताला लगा पाया था। शारदा के पिता का तबादला हो गया था। शेखर का व्यक्तित्व विद्रोही है। विद्रोह - भावना में जितना महत्व प्रेम का है, उतना ही घृणा का - बौद्धिक घृणा - का भी है। अतः शेखर उस दिन की कल्पना करता है, जिस दिन हमारे देश के - हमारे संसार के - क्रांतिकारी कहलाने वाले व्यक्तियों में ऐसी प्रखर किन्तु शीतल बौद्धिक घृणा जागेगी और वे उससे डरेंगे नहीं, उसे अपाएँगे और उसकी प्रेरणा स्वीकार कर के संसार पर अपनी छाप बिठा जाएँगे, युगान्तर कर जाएँगे और फिर भी एक नए युगान्तरकारी विद्रोह का बीडा बो जायेंगे .....

उषा और ईश्वर

इस खंड के अन्तर्गत शेखर ने अपने जन्म का, अपनी शिक्षा का, अपने प्रकृति प्रेम का और अपनी बाल सुलभ जिज्ञासाओं तथा विद्रोहात्मक कार्यों का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। अपने जीवन का प्रत्यावलोकन करते समय शेखर को अपने जीवन की एक - दो घटनाएँ याद आती हैं जिनमें अहं, भय और सेक्स की प्रबल तथा महती भावनाएँ अनुस्यूत है। शेखर को विश्वास है कि ये तीनों अनुभूतियाँ ही मानव जीवन को निर्धारित करती हैं।

तीन वर्ष की आयु में लेटर - बाम्स पर चढ़कर शेखर सोच रहा था कि वह सम्राट है। डाकिये के बलास उतार देने पर वह उसके पैरों पर कूद पड़ा था और उसकी उँगलियों को कुचलकर घर भाग गया था। यहाँ शेखर का अहं परिलक्षित होता है।

भय से आक्रांत होने की घटना भी उसे याद आती है। अजायब घर में शेर को देखकर शेखर बहुत डर गया था। रात में उसे याद कर वह चिल्लाने लगता। उसके भय का कारण जानकर वैसा ही शेर लाकर उसके घर में रख दिया गया। पहले तो शेखर डरता रहा पर बाद में भाइयों की देखा - देखी वह उसपर चढाने लगा। फिर तो उसने चाकू से शेर की खाल फाड़ दी। उसे सजा मिली पर एक बोध भी हुआ कि डर डरने से होता है। संसार में सब भयानक वस्तुएँ हैं, केवल एक घास -फूस भरा निर्जीव चाम, जिससे डरना मूर्खाता है। ..... जब कभी कोई भयानक वस्तु देखो, तब डरो मत, उसका बाह्य चाम काट डालो। उसके भीतर भरी हुई घास - फूस निकालकट बिखरा दो और हंसो।

सेक्स से सम्बद्ध स्मृति में आयी हुई घटना कुछ अनुचित, कुछ वर्जित, कुछ घृणास्पद और कुछ जुगुप्सा जनक है। वह घटना इतनी भट्टी और बीभत्स है कि उसे वे ही समझ सकते हैं जो कभी वासना से उत्पन्न हुए पाप कर्म के किनारे तक पहुँचकर लौट आए हैं - किसी बाह्य रुकावट या नियम या असामर्थ्य या डर से नहीं, एक आन्तरिक स्वतः उत्पन्न गमनि के कारण .....। इन

तीनों भावों को जीवन के अनिवार्य और अपरिहार्य अंग मानते हुए इनकी परिणति के विषय में शेखर का मन्तव्य है कि प्रेम ने मनुष्य को मनुष्य बनाया! भय ने उसे समाज का रूप दिया! अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर दिया।

शेखर अपने बचपन की याद करते समय उस समय की सामाजिक मनोस्थिति पर भी विचार करता है। उस समय व्याप्त जाति भेद अभी तक उसे याद आता है। शेखर को अपनी मौसी विद्यावती की तीन वर्ष की पुत्री शशि का भी स्मरण हो आता है जिसके सिर पर उसने लोटा दे मारा था। उन दिनों द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। युद्ध के कारण आवश्यक वस्तुएँ भी मिलना दुर्लभ हो गयी थीं। शेखर की मृत्यु और ईश्वर के प्रति जिज्ञासा अदम्य होती गयी। स्कूल छोड़कर प्रायः वह अकेला रहने लगा। अकेलेपन ने उसे वह शिक्षा दी जो स्कूलों में भी नहीं मिलती। वह पूर्णतः प्रकृति में रम गया। शेखर के पिता की बदली श्रीनगर सेबिहार में हो गयी। यहां से शेखर की वयः सन्धि का प्रारम्भ होता है।

बीज और अंकुर

शेखर अपने हम उम्र बच्चों के विपरीत एकाकी ही रहना पसन्द करता था। अपने कुत्ते तैमूर के साथ दिन भर वह इधर - उधर भटकता रहता। एक दिन तीन स्तम्भों की नाव बनाकर वह गंगा की धारा में दूर तक चला गया। उसका मन बहुत कल्पनाशील हो चला था। गांधी - आंदोलन के बढ़ते प्रभाव के कारम उसने भी विदेशी वस्त्रों का त्याग कर दिया था। अंग्रेज़ी जानते हुए भी वह अंग्रेज़ी नहीं बोलता था। आयु के साथ -साथ शेखर की जिज्ञासा प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती थी। छोटी बहन के जन्म के समय उसकी यह जिज्ञासा प्रबल हो उठी कि बच्चे कैसे आते हैं? उसने अपनी मां, दाई और बहन सरस्वती से पूछा पर कहीं से भी संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। फिर उसने चोरी - चोरी की किताबें पढ़नी शुरु कर दीं।

प्रकृति और पुरुष

शेखर को अपने घर में अपनी बहन सरस्वती के प्रति असीम अनुराग था। सरस्वती की शादी होने पर उसने स्वयं को बिलकुल अकेला और निराधार पाया। वह अधिकाँश समय अकेला ही बिताता। उसने कविता - लेखन और अध्ययन आरम्भ कर दिया। संस्कृत, उर्दू और यूरोपियन साहित्य उसने जहां तक हो सका पढ़ लिया। फिर उसने गहन कृतियों का अध्ययन आरम्भ किया। अपनी दिनचर्या भी उसने अत्यंत कठोर कर ली। शेखर जीवन के वैसे ही अनुभवों से गुजर रहा था जैसा भूमि के नीचे ही नीचे अंकुर फूटने से पहले कोई बीज करता होगा - एक नए जीवन की उत्पत्ति के दबाव से कटता हुआ सा .....।

शेखर के जीवन में अचानक शारदा आ गयी। प्रथम दर्शन में ही शेखर शारदा के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गया। वयः सन्धि के कारण यह स्वाभाविक भी था। शारदा के हृदय में भी शेखर के लिए स्नेह अंकुरित हुआ। शेखर को अचानक परीक्षा देने के लिए लाहौर जाना पड़ा। वह अपनी मौसी विद्यावती केघर ठहरा जहां अब परिपक्व, विनम्र और सुंदर शशि के उसकी पुनः मुलकात हुई। परीक्षा देकर लौटने पर शेखर को पता चला कि शारदा का परिवार दक्षिण भारत चला गया है। शारदा के बंद घर की सीढ़ियों पर बैठकर शेखर को ऐसा लगा जैसे उसकी वयः सन्धि का ज्वार समाप्त हो गया था। इस समय शेखर के मन में दो भाव पर्याप्त विकसित हो गए थे - घृणा और वासना। ये दोनों भाव ही उसके जीवन का प्रमुख आधार बन गए। 'घृणा ने ही उसे इतनी शक्ति दी है कि सब कुछ खोकर भी संसार को ललकारे और वासना ने उसे जगाया कि वह चोट का सामना करे, जो उसके हृदय को लगी है'।

वासना और विपरीत लिंगी आकर्षण ने शेखर को एक विचित्र मनोस्थिति में डाल दिया था। दूसरी ओर वह शारदा के प्रति पूर्ण समर्पित था। उसने इन्हीं दिनों 'What All Married People Should Know' नामक पुस्तक पढ़ी और उसके अचानक ज्ञान मिलने की सी अनुभूति हुई।

पुरुष और परिस्थिति

शेखर ने इन्टर की पढ़ाई करने के लिए मद्रास में एक कॉलेज में प्रवेश ले लिया। वह जिस हॉस्टल में ठहरा, वह केवल ब्राह्मणों के लिए था। शेखर को वहाँ कुमार नामक युवा से अत्यधिक अनुराग हो गया। किन्तु कुमार उसे मूर्ख बना रहा था। वस्तुस्थिति पता चलने पर शेखर को आघात लगा। शेखर को ब्राह्मणों का अहं भाव और जाति भेद भी असह्य था अतः वह एक अछूतों के हॉस्टल में चला गया। वहाँ उसके कई मित्र बन गए। कॉलेज में लड़कियाँ उसके प्रति आकृष्ट होती पर वह उनके लिए अवज्ञा का ही भाव रखता। अपने मित्र सदाशिव के साथ वह श्रावणकोर गया। वहां शारदा से उसकी पुनः मुलाकात हुई। किन्तु शेखर के प्रणय निवेदन को शारदा ने ठुकरा दिया। शेखर का स्वर्णिम स्वप्न बिखर गया। वह अत्यधिक हताश और उद्विग्न होकर वहां से लौट आया, शारदा के देश से ही उसने सदा के लिए विदा ले ली।

इसी प्रसंग के साथ शेखर एक जीवनी के प्रथम भाग का अंत होता है। दूसरे भाग की कथावस्तु भी चार खंडों में विभक्त है - प्रथम खंडः पुरुष और परिस्थिति, द्वितीय खंडः बन्धन और जिज्ञासा तृतीय खंडः शशि और शेखर और चतुर्य खंडः धागे, रस्सियाँ और गुँझर।

पुरुष और परिस्थिति

शेखर पंजाब में पढ़ने के लिए गया। उसे आशा थी कि पंजाब के मनुष्य बहुत वीर होते हैं, इसलिए वहाँ उसे मनोनुकूल वातावरण मिलेगा। वह एक हॉस्टल में रहने लगा। जहाँ दो दलों से उसका परिचय हुआ। एक दल कुत्सिल मनोवृत्ति के लोगों का था। शेखर को इनसे घृणा हो गयी। दूसरी टुकड़ी की मुखिया थी मणिका जिसने आक्सफोर्ड और पेरिस में शिक्षा पायी थी। उसके पास पर्याप्त धन था और वह और उसके मित्र पीने - पिलाने में लगे रहते थे। मणिका से शेखर प्रभावित था। उसे वह शक्ति की विकृत और भ्रष्ट रूप लगी जो ग्लानिजनक थी पर तिरस्कार्य नहीं, उपेक्षित नहीं। शेखर का मन इन सबसे मिलने के बाद लेखन में रम गया। परीक्षा समाप्त होने पर वह धूमने निकल पड़ा। घूमते - घूमते वह कश्मीर में बहुत ऊपर पहाड़ों तक गया। वापस आने पर उसे शशि के पिता के देहाँत का समाचार मिला। शेखर शशि के घर गया। वहाँ कुछ दिन रहकर अपने कॉलेज लौट आया। उन्हीं दिनों राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के लिए स्वयं सेवकों की मांग हुई। शेखर ने अपना नाम भी स्वयं सेवकों में लिखा दिया। अधिवेशन में एक दिन शेखर को पुलिस पकड़कर ले गयी। पुलिस वालों में वह सी. आई.डी वाला भी था जिसे एक दिन शेखर ने स्वयं सेवकों से बचाया था।

बन्धन और जिज्ञासा

जेल में शेखर का एक अन्य कैदी विद्याभूषण से परिचय हुआ। विद्याभूषण से शेखर काफी प्रबावित हुआ। विद्याभूषण से हिंसा - अहिंसा पर शेखर की बातें होती रहती। विद्या भूषण ने उसे बताया कि अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए हिंसा का प्रयोग आवश्यक ही नहीं, वरेण्य भी है। इक्कीस साल से जेल में रह रहे बाबा मदन सिंह से भी शेखर बहुत प्रभावित हुआ। शेखर को प्रभावित करने वाला एक अन्य कैदी मोहसिन था। शेखर को शशि का इसी बीच पत्र मिला। शशि

का विवाह होने वाला था और उसने शेखर से परामर्श मांगा था। शेखर ने इस समस्या का अंतिम निर्णय शशि पर हो छोड़ दिया। अनिच्छा होते हुए भी शशि ने विवाह कर लिया। इस घटना से शेखर के मन में अनेक अज्ञात आशंकाएं भर गयीं।

शेखर को एक दिन अचानक जेल से मुक्त कर दिया गया। उसके विरुद्ध कोई प्रमाण पुलिस प्रस्तुत नहीं कर सकी थी। इस प्रकार दस महीने के शेखर के जेल - जीवन की समाप्ति हुई।

शशि और शेखर

जेल से निकलते ही शेखर शशि से मिलने गया। शशि के पति रामेश्वर से भी उसकी भेंट हुई। शेखर को यह अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं हुई कि उनका गार्हस्थ्य जीवन सहज नहीं है। दुबारा जब वह शशि से मिला तो रामेश्वर घर पर नहीं था। उन दोनों में खूब बातें हुई। शेखर ने शशि को बताया कि समाज की सड़ी हुई परस्पराओं को तोड़ने के लिए और उसे नव निर्माण देने के लिए उसने साहित्यकार बनने का निश्चय किया है। शेखर ने एकांत वास लेकर काम करना शुरु कर दिया। उसने एक पुस्तक 'हमारा समाज' लिख दी। किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में स्वार्थी मनोवृत्ति के लोगों से उसे निराशा ही हाथ मिली। उसकी मां की मृत्यु हो गयी थी। जीवन संघर्ष से टूटे हुए उसके पिता ने आकर उसे बहुत समझाया कि वह घर चले और विवाह कर ले परन्तु शेखर अपने निर्णयों पर अडिग रहा। अपनी प्रारम्भिक साहित्यिक विफलताओं से शेखर इतना चंचल हो उठा कि आत्महत्या पर उतारु हो गया। जब वह बचकर घर लौटा तो शशि वहां पर उसकी प्रतीक्षाकर रही थी। शेखर को हताश और उद्विग्न देखकर शशि उसे समझती रही। मूसल धार वर्षा होने के कारण शशि उस रात घर न जा सकी। शशि ने शेखर के समक्ष अपना मानसिक झंझावात स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया और शेखर ने भी उसके प्रति अपने उस प्रेम को अनावृत कर दिया था जिसमें सात्विकता तो थी ही, वासना का भी स्फुरण था। सुबह होने पर ही शशि अपने घर जा सकी।

धागे,रस्सियाँ, गुंझर

शशि को उसके पति रामेश्वर ने मार पीटकर और भारी अपमानित कर के घर से निकाल दिया। वह शेखर के पास गयी। शेखर को भी रामेश्वर ने अपमानित किया और शशि को इतने जोर से लात मारी कि उसका गुर्दा सदैव के लिए फट गया। शशि शेखर के पास रहने लगी किन्तु वह तन - मन दोनों से टूट चुकी थी। डाक्टर ने बताया कि उसकी चोटें सांधतिक तो नहीं हैं, पर असाध्य हैं। पूर्ण विश्राम और पूर्ण धैर्य की उसे नितान्त आवश्यकता है। विद्यावती शशि को अपने साथ ले जाना चाहती थी परन्तु मां की असुविधा का ध्यान रख उसने शेखर के पास ही रहना स्वीकार किया। शेखर यथाशक्ति शशि की सेवा करने लगा किन्तु शशि का प्रयत्न था कि वह उस पर बोझ न बने अन्यथा क्रांतिकारी साहित्यकार बनने का उसका सपना खंडित हो जाएगा। शशि की प्रेरणा से शेखर चाहे - अनचाहे कुछ लिख लेता था। धीरे धीरे शेखर को पता चला कि स्थिति सम्मानजनक नहीं है। शेखर ने घर बदल लिया। रुपयों की आवश्यकता के कारण उसने अपनी पुस्तक 'हमारा समाज' साठ रुपयों में बेच दी। उसकी मुलाकात रामकृष्ण नामक एक व्यक्ति से हुई जो एक क्रांतिकारी दल का सदस्य था। शेखर भी इस संगठन का सदस्य बन गया। गुप्त आंदोलनों के प्रसार में वह अधिकाधिक उलझता गया। शशि के प्रति भी उसका प्रेम बढ़ता ही गया। संगठन के काम में शेखर को शशि के साथ दिल्ली आना पड़ा। वे यमुना के पास एक घर में रहने लगे। शशि का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता ही गया। फिर भी वह

अपनी अपार वेदना को छिपाकर शेखर के लिए एक सम्पूर्ण प्रेरणा बन जाना चाहती थी, ताकि वह उत्कृष्ट साहित्यकार बन सके, समाज में उसका मूर्धन्य स्थान हो। शेखर रात दिन उसकी सेवा में जुटा रहता। अपनी निकट आती मृत्यु से शशि अवगत थी। एक दिन एक पत्र में शेखर के प्रति अपना सम्पूर्ण त्याग, कृतज्ञता व्यक्त कर वह परलोक सिधार गयी। शेखर का सारा जीवन शून्य हो गया। उसे अनुभव हुआ उसके जीवन ने अर्थ खो दिया है, यथार्थता, व्यवस्था, गति सब कुछ खो दिया है। फिर भी शेखर के पास शशि की प्रेरणा की धरोहर सुरक्षित थी। इसी धरोहर को साथ रख वह फिर कर्म के पथ पर उन्मुख होता है। वह कहला है "छाया, तुम्हें भूलने नहीं जाता, तुम साथ चलो - पहले मौसी के पास और गौरा के पास, फिर - आगे, कर्म में विस्मरण नहीं है, शशि कर्म में तुम हो, चिरन्तन प्रेरणा - चिरन्तन क्योंकि मुक्त और - मोक्षदा ....."

इस प्रकार 'शेखर - एक जीवनी' का कथा - प्रसार शेखर के जीवन के विविध - आंतरिक एवं बाह्य पक्षों का सजीव चित्रण करता हुआ तथा समाज की अनेक अनपेक्षित किन्तु सुदृढ़ परम्पराओं पर प्रहार करता हुआ एक कारुणिक एवं मार्मिक संवेदनात्मक परिणति में पर्यवसित होता है। प्रतिपाद्य और प्रतिपादन दोनों ही दृष्टियों से यह कथा प्रसार कथाकार की नितांत मौलिकता तथा पूर्व प्रौढता का उद्घोष है, सम्पूर्ति - अपूर्ति की कहानी है।

Unit - II

[शेखर : एक जीवनीः कथा शिल्प]

उपन्यास का भूल तत्व कथा वस्तु ही है। जिस प्रकार आत्म तत्व के अभाव में शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार कथावस्तु के अभाव में कोई भी औपन्यासिक रचना सम्भव नहीं है। उपन्यास जीवन का चित्रण होता है और जीवन व्यापक एवं वैविध्य पूर्ण है। अतः उपन्यासकार को अपने उपन्यास की कथावस्तु के चयन के लिए व्यापक अवकाश होता है। उपन्यास की कथावस्तु जीवन की समग्रता, सहजता और स्वाभाविकता की अभिव्यक्त करने में सक्षम व सुफल होनी चाहिए। पाश्चात्य समीक्षक हडसन कहते हैं - ' ....: a novel is really great only when it lays its foundations broad and deep in the things which most constantly and seriously appeal to us in the struggle of our common humanity'. अर्थात वही उपन्यास महान होता है जो विस्तृत रूप से उन चीजों पर आधारित होता है जो हमें समाप्त मानवीय संघर्षों में सतत और गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं।

इस कसौटी पर शेखर - एक जीवनी को परखने पर स्पष्ट होता है कि वह उपन्यास औपन्यासिक परम्पराओं से मुक्त है और इसकी यह मुक्ति ही इसकी शक्ति और सफलता है। अज्ञेय का व्यक्तित्व सदा ही विद्रोही रहा है। उनके प्रखर विद्रोही व्यक्तित्व ने प्राचीन परंपराओं को ध्वस्त करके 'शेखर - एक जीवनी' द्वारा हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में सम्भावनाओं के नए द्वार खोले हैं। 'शेखर - एक जीवनी' नाम से स्पष्ट है कि यह उपन्यास नहीं वरन जीवनी है। किन्तु किसी भी जीवनी में जो 'निजता' होती है वह इसमें नहीं है। स्वयं अज्ञेय इस बात को स्वीकारते हैं - शेखर निस्संदेह एक व्यक्ति का अभिन्नतम निजी दस्तावेज A record of personal suffering है, यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्ति के युग संघर्ष का प्रतिबिम्ब भी है। इतना और ऐसा निजी वह नहीं है कि उसके दावे को आप एक आदमी की निजू बात कहकर उड़ा सकें।

रोचकता उपन्यास का एक अनिवार्य तत्व है, किन्तु रोचकता का कोई एक प्रतिमान नहीं हो सकता; क्योंकि जो पदार्थ एक के लिए रोचक है, वह दूसरे के लिए अरोचक भी हो सकता है और होता भी है। यह सत्य है कि साधारण हैं और जिन्हें वैचारिकता के नए आयामों का स्वागत करने में संतोष मिलता है, उनके लिए यह उपन्यास रोचक ही नहीं, बहुत रोचक है। प्रस्तुत उपन्यास का आरम्भ ही सर्वथा नवीन ढंग से होता है - फांसी! जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शक्तियां, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार असमर्थ हैं, उसी जीवन को छीन लने में, उसी का विनाश करने मे ऐसी भोली हृदय हीनता - फांसी। ..... फांसी! यौवन के ज्वार में समुद्र - शोषण! सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायोओं से भरे कुंतल। शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला बरसती बादल!

इस प्रारम्भ की संवेदना और भाषा दोनों ही साधारण पाठक के लिए जटिल हो सकती है किन्तु इस कथन से विमत होने की गुंजाइश नहीं है कि सुशिक्षितों और विचारकों के लिए यह 'प्रवेश' बहुत ही रोचक होगा; क्योंकि यह उनके सम्मुख वैचारिकता का बिल्कुल नया और गंभीर आयाम प्रस्तुत करता है। इस विवरण में, फांसी की भयंकरता नहीं, वरन उसकी सम्पूर्ण निरर्थकता ही व्यक्त की गयी है। आज फांसी शब्द भले ही न सुनायी दे पर उस समय यह सभी की जिह्वा पर रहता था। सामाजिक भावना को यह दार्शनिक रूप देना, स्वयं में न तो कम रोचक है और न कम महत्वपूर्ण ही। इसी प्रकार गाँधीजी के अहिंसा दर्शन के द्वन्द्वों पर सूक्ष्म विचार किया गया है। विद्याभूषम शेखर से कहता है, अगर तुम हिंसा की बात कहते हो तो क्या डर के कारण अपने गौरव की रक्षा से चूकना हिंसा नहीं है? आत्म हिंसा सबसे बड़ी हिंसा है; क्योंकि वह राष्ट्रीय अभिमान की - राष्ट्र की रीढ़ तोड़ डालती है।

इस तरह के सामाचिक और शाश्वत वैचारिक धरातल विचारक पाठकों के लिए निः सन्देह आत्यंत रोचक होंगे। अनेक प्रसंग अपनी सुबोधता व सजीषता के कारण साधारण पाठक के लिए भी रोचक हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है - शेखर ने फिर पूछा, जान आती कहां से है?

'ईश्वर से'।

जाती कहां है?

'ईश्वर के पास'।

सब कुछ ईश्वर करता है?

हां।

तब लड़ाई भी ईश्वर ने करायी होगी? कहा जाता है कि 'शेखर - एक जीवनी' के कथा शिल्प में घटनाओं की कोई अन्विति नहीं है। प्रायः सभी घटनाएँ एक दूसरे से अविच्छिन्न और स्वतन्त्र हैं। ऊपरी तौर से देखने पर यह सत्य प्रतीत होता है किन्तु वस्तुतः यह सच नहीं। इस उपन्यास की घटनाओं को बाह्य अन्विति देना न तो उपन्यासकार को अपेक्षित ही है और न इस उपन्यास की शैली में ऐसा स्वाभाविक रूप से सम्भव ही हो सकता है। इसका कारण यह है कि इस उपन्यास की सभी घटनाएँ मन के एक अत्यत आवश और द्रुतगातता के साथ स्मरण के द्वारा बीते हुए जीवन के अवलोकन से उत्पन्न हैं। शेखर को आभास है कि उसे फांसी मिलने वाली है और वह अपने अतीत का स्मृत्यवलोकन कर रहा है। उसके मन में बिना किसी क्रम के एक के बाद एक घटना भी नहीं है कि वह अपने अतीत को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत कर सके, यदि वह ऐसा करता तो उपन्यास की सारी सहजता एवं मनोवैज्ञानिकता नष्ट हो जाती। इस सम्पूर्ति - अपूर्ति की

कहानी में ऐसा ही वस्तु विन्यास अपेक्षित और स्वाभाविक है। इस उपन्यास की घटनाएँ सहजता और वैचारिकता के द्वारा परस्पर विन्यस्त होकर औपन्यासिक रोचकता एवं प्रभाव को उत्पन्न करती हैं। यही इस उपन्यास के कथा शिल्प की विलक्षणता है।

जहां तक इस उपन्यास की कथावस्तु की सम्भाव्यता का सम्बन्ध है, इस पर किसी भी प्रकार का प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता। यह कथा मूलतः भारतीय समाज के उस जीवन को चित्रित करती है जब समूचा देश अपनी स्वतंत्रता के लिए प्राण -प्रण से संघर्ष कर रहा था। सब तरफ विद्रोह ही विद्रोह था। विदेशी सत्ता के प्रति विद्रोह, बूढ़ी पीढ़ी के प्रति विद्रोह, और स्वयं अपने प्रिति विद्रोह। इसी विद्रोह का आख्यान है शेखर एक जीवनी। सेखर उस युग के उस युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो जन्म से ही विद्रोही होते हैं। शशि उस निद्रोष तथा उदार वध की प्रतिमूर्ति है जो विचारों की संकीर्णता की ज्वाला में अपने जीवन की आहुति देने के लिए बाध्य हो जाती है।

'शेखर एक जीवनि' का कथा शिल्प औपन्यासिक परम्पराओं से मुक्त है और यह मुक्ति ही इसकी शक्ति एवं सफलता है। इसका शिल्प अपनी सारी समर्थताओं से संपृक्त है और औपन्यासिक क्षेत्र में संवेदना और शिल्प का एक क्रांतिकारी दूत है। डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में - 'शेखर' अपने जिन गुणों की वजह से समकालीन हिन्दी साहित्य पर छा गया और उत्तरात्तार अपना प्रभाव गहरा करता गया उनमें इस उपाय का नया रचना संगठन एक मुख्य तत्व है। यही इसके नूतन कथा शिल्प का महत्व है और यही इसकी देन है।

शेखर एक जीवनी - भाषा - शैली

'शेखर - एक जीवनी' हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन की अन्यतम कृति है। अज्ञेय अपनी भाषा की सर्जनात्मकता और उससे उत्पन्न सम्प्रेषणीयता के प्रति अत्यंत सजग एवं जागरूक कलाकार हैं। उन्होंने स्वयं भी इस तथ्य की पुष्टि करते हुए स्वीकार किया है - मैं उन व्यक्तियों में से हूँ - और ऐसे व्यक्तियों की संख्या शायद दिन - प्रति - दिन घटती जा रही है - जो भाषा का सम्मान करते हैं और अच्छी भाषा को अपने आप में एक सिद्धि मानते हैं। स्पष्ट है कि अज्ञेय के लिए भाषा केवल भावाभिव्यक्ति का ही माध्यम् नहीं वरन एक सिद्धि भी है। इसिलिए उनकी अनुभूतियाँ और भाषा - संस्चना परस्पर इतनी अविच्छिन्नता से गुंफित हैं कि उन्हें अलग - अलग कर देखना सम्भव नहीं है। डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं, 'अज्ञेय ने मानवीय व्यक्तित्व की माध्यम नहीं, अनुभव ही है। उन्होंने भाषा और अनुभव के अद्वैत को स्थापित करने का प्रयत्न किया है'।

'शेखर एक जीवनी' मूलतः मनोवैज्ञानिक, वैचारिक एवं चरित्र प्रधान उपन्यास है। इसकी कथावस्तु उस शेखर के जीवन का आख्यान है जिसका चरित्र संश्लिष्ट है और जिसकी चिन्तन प्रक्रियाएँ विद्रोही, सूक्ष्म और गंभीर हैं। ऐसी अनुभूतियों के लिए एक गंभीर भाषा आवश्यक है। यही कारण है कि प्रस्तुत उपन्यास की भाषा का स्वरूप और गठन गंभीर है। जहां किसी वैचारिक स्तर का उद्घाटन हुआ है, वहाँ की भाषा अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर और अर्थ - झंकृतियों के सबल प्रभाव से संपृक्त है। यथा -

'फांसी!

यौवन के ज्वार में समुद्र शेषण। सूर्योदय पर रजनी के उलझे हुए और घनी छायाओं से भरे कुंतल। शारदीय नभ की छटा पर एक भीमकाय काला बरसाती बादल'।

यह भाषा वैचारिक स्तर पर ही नहीं बल्कि रूप - स्तर पर भी फांसी की भयंकरता एवं भयावहता और साथ ही निरर्थकता को भी अपने पूरे सामर्थ्य से व्यंजित करती है। आसन्न मृत्यु के क्षण में व्यक्ति का अस्तित्व बोध सहज ही सजग हो जाता है किंतु उसे अपनी खंडता का ही हृदय विदारक बोध होता है। इसका एक करुण उदाहरण दृष्टव्य है - 'मैं अपने पहले बीते हुए असंख्य युगों का निचोड़ हूँ। ..... इस दृष्टि से मैं जो कुछ हूँ, अपना कुछ नहीं हूं, नया कुछ नहीं हूं। मैं किसी अत्यंत प्राचीन ग्रन्थ का एक नया संशोधित, संवर्धित और सटीक - साटिप्पण संस्करण हूँ जिसके मूल लेखक का पता नहीं'।

इस उदाहरण में अपने अस्तित्व को जिस प्रभावी ढ़ग से नकारा गया है, वह प्रभाव भाषा की ऐसी ही सघनता से सम्भव है। विचारों की भाव वहनता और आवेगमयता के कारण अज्ञेय की भाषा कहीं - कहीं इतनी अधिक सामासिक हो गयी है कि वह सूत्रात्मक ही बन गयी है। यथा -

'अभिमान से भी बड़ा दर्द होता है, पर दर्द से भी बड़ा एक विश्वास होता है'।

एवं

'क्रांति का प्रमाण यह है कि उसके लिए चारित्रय आवश्यक है'।

'दुख की छाया एक तरह की तपस्या ही है - उससे आत्मा शुद्ध होती है। इत्यादि'।

शेखर - एक जीवनी की भाषा पूरी तरह से पात्रानुकूल तथा भावानुकूल तथा भावानुकूल है। बालक शेखर और उसकी बहन सरस्वती का यह संवाद देखिये -

'मर कर क्या होता है'?

'पागल, जान नहीं रहती, चल फिर बोल नहीं सकते, तब ले जाकर जला देते हैं'।

'डूबने से ऐसे ही मर जाते हैं'?

'हा'।

'क्यों मरते हैं'?

'सांस बन्द हो जाती है, तब ज्ञान निकल जाती है'।

इन बालक - बालिका के संवादों की भाषा अत्यंत सजीव और स्वाभाविक बन पड़ी है।

अन्य भाषाओं से शब्द, कहीं - कहीं वाक्य और कहों - कहों पूरे उद्धरण उद्धृत कर अज्ञेय ने अपने गद्य को प्राणवान बनाया है। संस्कृत के वेद मंत्र, बंगला गीत और अंग्रेज़ी कविताओं के निःसकोच अज्ञेय ने प्रयोग किया है।

'आदि मर्मर ध्वनि केल जागिलो रे।

पल्लवे - पल्लवे हिल्लोले - हिल्लोले थर थर लगिलो रे'। (बंगला)

दो पत्तर अनारॉं दे -

दुख साड़ढा समझोंगे

दो पत्थर पहाडाँ दे - (पंजाबि)

सर्वाधिक उद्घृत है अंग्रेज़ी के उदाहरण और कविताओं के अंश। यथा -

Dead long dead

Long dead!

And my heart is a handful of dust,

And the wheels go over my head,

And my bones are shaker with pair

For into a shallow grave they are thrust

Only a yard beneath the street

And the hoofs of the horses beat, beat.

अथवा

My candle burns at both ends

It will not lost the night

But ah my foes and oh my friends

It gives a lovely light.

मौन की शब्दों के बीच व्यंजना 'शेखर - एक जीवनी' की भाषा की एक अन्य विशेषता है। मौन विभावन पद्धति के ये प्रयोग अत्यंत भाव - प्रवण बन पड़े हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

'जब शशि ने बिना उसकी ओर देखे ही लोटा उठाकर उसमें से पानी पी लिया तब शेखर को लगा, उसने संसार के सब लोटों से बढ़कर एक चीज पा ली है'।

चित्रात्मकता का गुण भी इस उपन्यास की एक अन्य विशेषता है। एक सुंदर उदाहरण देखें, प्रणाम यमुना, प्रणाम पूर्वदिशा, प्रणाम वैशाख के फूले हुए पलाश और बबूल, प्रणाम झाऊ के उदास मर्मर और धूल के बगूले, प्रणाम दो पैरों से लाख भर रौंदे हुए रेतीले तट, प्रणाम वही हुई मुट्ठी भर राख .....।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'शेखर एक जीवनी' में भाषा में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो किसी भी समृद्ध एवं समर्थ भाषा के लिए अपेक्षित होते हैं।

'शेखर - एक जीवनी' आत्म कथात्मक उपन्यास है अतः इसकी शैली मूलतः विवरणात्मक ही है। शेखर के मानसिक स्तरों का विविरण चिन्तन प्रधान शैली में हुआ है। विद्रोही की नियति का विवरण वह इस प्रकार प्रस्तुत करता है, मुझे विश्वास है कि विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं। जहाँ कथा का विस्तार है, वहां लेखक ने सरल और गत्यात्मक शैली का प्रयोग किया है किन्तु जब लेखक मनोविश्लेषण करने लगता है तो कथा की जाति धीमी पड़ जाती है।

प्राकृतिक चित्रणों का वर्णन प्रायः अलंकृत शैली में हुआ है मेघाच्छन आकाश। प्रकाशहीन सायंकाल। पवन अचंचल। चंचला भी अदृश्य। और आज वह पक्षी भी नहीं है जो उड़ते - उड़ते पंख टूट जाने से विवश गिरता जा रहा था, पर अपना स्थान पाने के लिए छटपटा तो रहा था, छटपटा तो रहा था .....

इस प्रकार 'शेखर - एक जीवनी' की शैली इस उपन्यास की कथावस्तु की गरिमा के अनुरूप ही गरिमा मय, उदात्त और गंभीर है। अज्ञेय जितने सजग और सचेष्ट भाषा के प्रयोग में होते हैं उतने ही जागरूक उसके अनुकूल शैली चुनने में भी होते हैं। 'शेखर - एक जीवनी' इस तथ्य का ज्वलंत गौरव पूर्ण प्रमाण है।

शेखर - एक जीवनी - बाल मनोविज्ञान

अज्ञेय कृत 'शेखर - एक जीवनी' की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है - इसमें चित्रित बाल मनोविज्ञान जिसने निश्चित ही हिन्दी साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है। बालक ही किसी समाज का और किसी भी राष्ट्र का मूलाधार होता है। बालक का विकास ही समाज और राष्ट्र का विकास है और उसका पतन ही उनका पतन। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि बाल जीवन ही जीवन की आत्मा के निर्माण का मूलाधार है - 'The first great discovery was this the most important determinants of the structure of the soul of life are generated in the earliest days of childhood .....' इसमें संदेह नहीं कि बाल स्वभाव के चित्रण का अभाव हिन्दी साहित्य में एक शोचनीय अभाव है और 'शेखर - एक जीवनी' इस अभाव की पूर्ति का स्तुत्य प्रयास है। स्वयं अज्ञेय के शब्दों में - इसीलिए आप पायेंगे कि जीवनी के पहले भाग में शेखर अपने बाल्यकाल की छोटी - छोटी घटनाओं की भी जांच कर रहा है। बाल्य काल का अध्ययन स्वयं अपना महत्व रखता है और विदेशों के कई कलाकारों ने बाल्य मन का अध्ययन और चित्रण किया है।

बाल्यकाल के मनोविज्ञान को समझने में सहायक तत्व इस प्रकार से हैं - अहं भावना, भय, यौन भावना, विद्रोह और जिज्ञासा। शेखर के बाल्य काल में यही तत्व उसके आगे के जीवन का निर्धारण करते हैं।

अहं भावना

बालक में अहं भावना का होना स्वाभाविक ही है। किन्तु शेखर विशिष्ट प्रकार का बालक है। उसकी अहं भावना इतनी उग्र और प्रखर है कि यदि उसे अहं का साकार पुंज ही कह दिया जाए तो अन्यथा न होगा। तीन वर्ष की आयु में लेटरबाक्स पर चढ़कर वह स्वयं को सम्राट समझता है और डाकिए द्वारा बलात् उतार दिए जाने पर वह क्रोध में डाकिए के पैरों पर कूद कर उसकी ऊँगलियां कुचल देता है। शेखर को अध्यापक सजा देकर मुर्गा बनाते हैं तो वह ऐसी कलाबाजी खाता है कि लात अध्यापक के पेट पर पड़ती है और वह उसे उल्लू कहकर भाग जाता है। अंग्रेज़ी आते हुए भी गांधी जी के प्रभाव के कारण वह अंग्रेज़ी नहीं बोलता। अतिथि का बेटा अहंकार में उसे गुडनाइट डियर बोलता है तो वह उसकी पिटाई कर देता है। इसी प्रकार वह अपने छोटे भाई को अपनी कलम नहीं देता यद्यपि मां से उसे बहुत मार खानी पड़ती है। मार खाते खाते वह मां को चुनौती देता है नहीं दूंगा, कह दिया नहीं दूँगा, चाहे जान से मार डालो।

इस प्रकार बालक शेखर में बाल सुलभ अहं भाव की प्रचुरता है। आगे चलकर यही अहं भावना नवयुवक शेखर को अतिशय आत्मविश्वासी, स्वावलंबी और विद्रोही बनाने में विशेष सहायक होती है।

भय

अहं की भांति भय की भावना भी जन्म जात होती है। शेखर में भय और उससे जूझने के बड़े ही आकर्षक मनोवैज्ञानिक अंकन हुए हैं। अजायबघर में घूमते बालक शेखर को एक कृत्रिम बाघ दिखायी देता है। वह बहुत डर जाता है। रात में भी चीखिता है। उसका डर तभी मिटा जब वैसा ही एक नकली बाघ उसके घर में रखा गया और उसने चाकू से उसकी खाल काट कर भूसा अलग कर दिया। तब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'डर डरने से होता है। संसार की सब भयानक वस्तुएँ केवल एक घास फूस से भरा निर्जीव चाम है जिससे डरना मूर्खता है'। इस निष्कर्ष ने युवा शेखर को आत्म विश्वासी और निर्भीक बनाया। भय के प्रति अज्ञानता बच्चे को निर्भीक बनाती है। भाइयों के झील में नहाते समय इसिलिए बालक शेखर भी पानी में कूद पड़ता है। बच जाने पर भी उसे मृत्यु से डर नहीं लगता; क्योंकि मृत्यु का डर वास्तव में,बड़ों की चीज है।

यौन भावना

बच्चों में यद्यपि यौन भावना भी जन्म जात होती है किन्तु इसका उसे बोध समाज के संसर्ग से ही होता है। अपने माता - पिता को आत्मीय क्षणों में देख लेने पर बालक शेखर का मन अत्यधिक प्रभावित होता है। इसी प्रकार घर में नौकर नौकरानी के मजाक आदि शेखर को यौन भावना से परिचित कराते हैं। वह एक अजायब घर में महावीर जिन की नग्न मूर्ति देखकर स्तम्भित रह जाता है और तब उसे बोध होता है कि सौंदर्य का स्वरूप नग्न ही होता है। अपनी यौन भावना के विकास के कारण ही शेखर शारदा और शशि के प्रति आकृष्ट होता है।

विद्रोह

विद्रोह बालक का स्वाभाविक धर्म है। जब भी कोई बात उसके मन के प्रतिकूल होती है, तभी उसका बाल - मन विद्रोह कर बैठता है। शेखर असाधारण बालक है, इसीलिए उसमें विद्रोह की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में और अधिक प्रखर रूप में परिलक्षित होती है। स्कूल में वह अपने अध्यापक को उल्लू कह कर भाग जाता है। शेखर की मां उसके प्रति अविश्वास व्यक्त करती है तो वह घर से भाग जाता है। उसका विद्रोह इन शब्दों में व्यक्त होता है, 'मैं क्यों हार मानू? कोई विश्वास नहीं करता, न करे। मैं योग्य हूँ। योग्य बनूंगा, रहूंगा, इस चोट को चुपचाप सहूंगा, इस अपमान को पिऊंगा। और दीखने नहीं दूंगा'।

बाल शेखर की विद्रोही भावना युवा शेखर में और भी अधिक प्रखर तथा बहुमुखी बन जाती है।

जिज्ञासा

बालक की सहज प्रवृत्तियों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति सर्वाधिक प्रबल और व्यापक होती है। अपने असाधारण व्यक्तित्व के कारण शेखर की जिज्ञासा प्रवृत्ति अपेक्षाकृत प्रबल और अधिक व्यापक है। शेखर बाल्यावस्था में ही चिन्तक बन जाता है। उसे ईश्वर के अस्तित्व को समझने की अदभ्य जिज्ञासा है। जाति भेद को समझने के लिए भी वह जिज्ञासु है। उसे समझ में नहीं आता कि दुनिया में कुछ लोग छोटे और कुछ बड़े क्यों हैं? मृत्यु का रहस्य भी जानने के लिए वह छटपटाता रहता है।

इसी प्रकार घर में भाई के जन्म पर शेखर के मन में एक साथ कई प्रश्न उबल पड़ते हैं - 'यह कैसे आया? कहां से आया? कब आया? कौन लाया? क्या सब कोई ऐसे ही आते हैं?' और जब भी कभी उसके प्रश्नों के उत्तर में कहीं ईश्वर आ जाता तो उसकी जिज्ञासा विद्रोह का रूप धारण कर लेती - नहीं है ईश्वर - नहीं है, नहीं है।

इस प्रकार 'शेखर - एक जीवनी' में बाल स्वभाव की सफल अभिव्यंजना है। हिन्दी साहित्य के लिए तो यह अंभिव्यंज्ञना एक नवीन प्रदान है। शेखर के बाल स्वभाव का यह चित्रण इतना अधिक सहज एवं मनोवैज्ञानिक है कि डां देवराज उपाध्याय ने फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक क्लीन द्वारा निरीक्षित एक बालक फ्रिटज़ की केस हिस्ट्री संक्षेप में देते हुए उससे शेखर के शिशु कालीन व्यवहारों तथा क्रियाओं में समानता प्रद्रशित की है और इसी आधार पर शेखर - एक जीवनी के बाल जीवन के विवेचन को शास्त्र सम्मत तथा मनोविश्लेण शास्त्र से संगत बताया है।

Unit - III

चरित्र - चित्रण

शेखर

अज्ञेय रचित हिन्दी के अन्यतम उपन्यास 'शेखर - एक जीवनी' का केन्द्रीय पात्र है शेखर। पूरा उपन्यास आत्म कथात्मक शैली में इसी चरित्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। कथाकार अज्ञेय का मन्तव्य है कि विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं। विद्रोह बुद्धि, परिस्थितियों के संघर्ष की सामर्थ्य जीवन की क्रियाओं से, परिस्थितियों के घात - प्रतिघात से नहीं निर्मित होती। वह आत्मा का कृत्रिम परिवेष्टन नहीं है, उसका अभिन्नतम अंग है। शेखर भी ऐसा ही जन्मजात विद्रोही है। बचपन से लेकर जीवन - पर्यन्त वह विद्रोही बना रहता है। समाज के साथ तो उसका विद्रोह चलता ही है, यदा - कदा वह अपनी आत्मा के विरुद्ध भी विद्रोह कर बैठता है। इसलिए उसके विद्रोह में सम्पूर्णता है और स्वाभाविकता भी।

बचपन से ही वह जाने - अनजाने परिवार की उन श्रृंखलाओं को तोड़ने के लिए कटिबद्ध दिखायी देता है जो प्रत्येक भारतीय परिवार को अपने बन्धनों में बांधे हुए है। मां के अपने प्रति अविश्वास व्यक्त करने पर वह इतना प्रखर विद्रोही बन जाता है कि जीवन भर उसका विरोध करने का संकल्प कर लेता है। अपने पिता का उपासक वह अवश्य है किन्तु उनके प्रत्येक व्यवहार को वह सहन नहीं कर पाता और उनके प्रति भी विद्रोह कर बैठता है।

शेखर का व्यक्तित्व असाधारण होने के कारण ही प्रखर विद्रोही है। वह अपने स्कूल की शिक्षा का भी विरोध करता है; क्योंकि ऐसी शिक्षा आरोपित होती है, स्वाभाविक नहीं और इसलिए 'संसार का आदर्श व्यक्ति व्यक्ति नहीं एक टाइप है'। फलतः शेखर ऐसी शिक्षा का बहिष्कार करता है और स्वयं अर्जित शिक्षा की ओर उन्मुख होता है। बालक शेखर प्रबल जिज्ञासु है, अतः प्रखर तर्कशील है। ईश्वर के प्रति उसकी अदम्य जिज्ञासा है। आस्तिकता नास्तिकता में झूलता वह ईश्वर के प्रति विद्रोही बन जाता है। गांधीवाद से प्रभावित होकर वह विदेशी वस्त्रों का परित्याग कर देता है, अंग्रेज़ी जानते हुए बी अंग्रेज़ी नहीं बोलता है।

CUP/8647/11/500/SDE—1

बाल - शेखर की ये विद्रोह भावनाएँ, युवा शेखर में और भी प्रखर रूप में व्यक्त होती हैं। वह जिस हॉस्टल में रखा गया, वह केवल ब्राह्मण छात्रों के लिए या। उन छात्रों का चरित्र पतित था। इस विडम्बना पर विद्रोह कर शेखर अूछतों के हॉस्टल में रहने लगता है। जाति - विषमता को देखकर शेखर का रक्त उबल पडता है और वह ब्राह्मण वादी व्यवस्था का घोर आलोचक बन जाता है।

प्रेम के क्षेत्र में भी शेखर का व्यक्तित्व विद्रोही है। वह अनेक लड़कियों के प्रवि आकर्षित होता है किन्तु उसके इन सभी आकर्षणों में न तो सामाजिक भय की सत्ता है और न ही नैतिक बन्धनों की श्रृंखला, वरन मन की एक सहज, स्वाभाविक अनुभूति है। शेखर के प्रेम - व्यवहार की पराकाष्ठा शशि के प्रति लिए गए प्रेम - व्यवहार में परिलक्षित होती है। शशि शेखर की मौसेरी बहन है और शेखर पयाप्त समय तक बहन के प्रेम की नौतिकता बनाए रखता है। फिर वह उसके प्रेम में इतना तल्लीन हो जाता है कि वह भाई के स्वर से उतरकर एक नायक के स्तर पर आ जाता है और वह शशि के ओंठों की चुम्बन तक कर लेता है।

एक लेखक के रूप में भी, शेखर का विद्रोही रूप पर्याप्त मुखरित होता है। वह ऐसा कुछ लिखना चाहता है जो सर्वांगत परम्परामुक्त हो, जिसमें सामाजिक परंपराओं को तोड़ने की दृढ़ शक्ति हो। हमारा समाज इसी विद्रोही भाव की परिणति है। शेखर शशि से कहता है, मैं जो कुछ लिखता हूँ, बहुत उबलकर लिखता हूं, पर मुझे लगता है कि वह अच्छा नहीं है। बल्कि कभी यह भी लगता है कि उद्देश्य भी उसमें नहीं है, क्योंकि वह उबाल ही उबाल है और उद्देश्य के लिए तो नक्शा बनाकर संयम से चलना चाहिए। यह अनुभूति जहां शेखर को उसके उद्देश्य के प्रति अधिक जागरूक बनाती है, वहां उसमें प्रशान्त और ठंडे विद्रोह की भावना भी उत्पन्न करती है।

वेदनानुभूति भी स्वभावतः विद्रोही और क्रांतिकारी शेखर के व्यक्तित्व का एक प्रमुख पक्ष है। शेखर की जीवनी का प्रारम्भ इसी अनुभूति से होता है वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है। जो यातना में है, वह द्रष्प हो सकता है। शेखर को दुख के औदात्य का सबसे पहले पता अपनी मौसी के पति के देहान्त पर होता है। उसे लगता है कि 'दुख की छाया एक तरह की तपस्या ही है - उससे आत्मा शुद्ध होती है'। शेखर के इस चिन्तन को अधिक शक्ति देती है शशि। शेखर बार - बार उसके शब्दों का स्मरण करता है - 'दुख उसी को आत्मा को शुद्ध करता है जो उसे दूर करने की कोश करता है'। शेखर अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वेदना ही समस्त तथा सम्पूर्ण ज्ञान की जननी है। वेदना का यह दर्शन शेखर के विद्रोह भाव को , क्रांतिकारिता को और अधिक प्रचलित, संगत और सहिष्णु बनाता है। इसिलिए वह अपने पग - पग पर आई हुई विपत्ति का धैर्य पूर्वक कर्मठता से सामना करता है और अपने विद्रोही स्वभाव को मांजता चलता है।

इन सब विशेषताओं के बाद भी शेखर एक साधारण मानव है - मानवीय अच्छाइयों और बुराइयों का पुंज। फिर भी वह आदर्श है, प्रभावशाली है और मानव का सहज - सम्भाव्य - पतिरूप है। अज्ञेय के शब्दों में - 'शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह अच्छा भी आदमी नहीं है। लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में, ईमानदारी में अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है। ..... और कौन जाने आज के युग में जब हम, आप सभी संश्लिष्ट चरित्र हैं, तब आप पायें कि आपके भीतर भी कहीं पर एक शेखर है जो बड़ा नहीं, अच्छा भी नहीं, लेकिन जागरूक और स्वतंत्र और ईमानदार है, घोर ईमानदार'।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शेखर का चरित्र हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक अनूठा है। अपने व्यक्तित्व की बहुआयामी विशेषताओं के कारण यह चरित्र पाठकों के मानस तथा चिंतन - प्रवाह को झलझोर देने की सामर्थ्य रखता है।

शशि

शशि 'शेखर - एक जीवनी' की प्रमुख पात्र है। शेखर के जीवन को जितना शशि ने प्रभावित किया है, उतना अन्य किसी पात्र ने नहीं। शेखर जो कुछ है, उसमें शशि का विशेष योगदान है। इसिलिए शेखर शशि को अपने जीवन में सर्वोच्च प्राथमिकता देता हुआ कहता है, 'सबसे पहले तुम शशि। इसलिए नहीं कि तुम जीवन में सबसे पहले आयी या कि तुम सबसे ताजा स्मृति हो। इसलिए किमेरा होना अनिवार्य रूप से तुम्हारे होने को लेकर है'। स्पष्ट है कि शेखर और शशि का सम्बन्ध पूरक भाव का है, बल्कि शशि ही शेखर के व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

शशि शेखर की मौसी विद्यावती की एकमात्र पुत्री है। शेखर का बालपन में ही शशि से परिचय हुआ था और झगड़ें में शेखर ने लोटे से शशि का सिर फोड़ डाला था पर शशि ने झूठ बोलकर शेखर को मार पड़ने से बचा लिया था। दूसरी बार बड़े होने पर शेखर परीक्षा देने के लिए शशि के घर पर ठहरा था। फिर बहुत दिन तक इनकी भेंट न हो सकी। शेखर का विद्रोही व्यक्तित्व अनेक दिशाओं में विकास पाने लगा किन्तु शशि शेखर के विचारों को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख तत्व बन गयी थी। तभी तो गिरफ्तार होते समय शेखर को शशि ले ये शब्द अनायास ही याद आ जाते हैं - 'दुख उसी की आत्मा को शुद्ध करता है जो उसे दूर करने की कोशिश करता है। शुद्धि दूसरे के साथ दुःखी होने में नहीं, दूसरे के स्थान पर दुखी होने में है'।

जेल में भी शेखर शशि की स्मृतियों को जीता रहता। इसी बीच शशि के विवाह हो जाने पर शेखर को लगा कि वह अपंग और शक्तिहीन हो गया है।

विवाह के पश्चात शशि का वह जीवन आरम्भ होता है जहां उसे दर्शों के लिए स्वयं को मिटाना पड़ता है। यद्यपि वह अपने पति रामेश्वर और अपने वैवाहिक जीवन से एकदम असंतुष्ट है किन्तु वह अपनी व्यथा व्यक्त नहीं करती और उसकी भीषण दाह में स्वयं को निरन्तर और चुपचाप जलाती रहती है।

शशि शेखर को एक विशिष्ट और महान व्यक्ति बनाने के लिए उत्सुक है। इसीलिए वह उसे लिखने के लिए निरन्तर प्रेरित करती रहती है। वह शेखर की हर परिस्थिति में उसका मार्ग - दर्शन करती है। वह शेखर से कहती है 'और तुम्हारा लिखना एक उद्देश्य के लिए होगा विनाश के लिए और पुनर्निमाण के लिए। ..... लेकिन शेखर, ऐसा लिखा हुआ सब अच्छा नहीं होता, सब साहित्य नहीं होता। वहां साहित्य का मोह करोगे कि उद्देश्य का'?

शेखर के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होते हुए भी शशि अपने सामाजिक जीवन के प्रति सजग है। अपने वैवाहिक जीवन में सुखी न होते हुए भी वह पति - परायणा है और अपने इस आदर्श का पालन भी वह यथाशक्ति करती है। दो आदर्शों में पड़कर उसकी दशा अत्यंत करुणामय हो गयी है। शशि के पति - परायण रूप की चरम अभिव्यक्ति तब होती है, जब उसका पति उसे त्याग देता है। उसका पति उसपर अविश्वास कर उसकी पीठ पर लात मारता है। शशि उसकी ओर मुंह कर के कहती है - 'आपकी अन्तिम देन पीठ फेरकर नहीं लूंगी, लीजिए अब दीजिए'। शशि अपनी वेदना शेखर और अपनी मां से भी छिपाती है।

पति का द्वार बंद हो जाने पर विवश शशि शेखर के साथ रहने लगती है। समाज सुधार का जो कार्य शेखर ने अपने कन्धों पर लिया था उसे पूरा करने के लिए वह भी सभाओं में जाने लगती है। शशि की तवीयत निरन्तर गिरती जाने पर भी वह शेखर को बनाने का प्रयास करती रही। वह शेखर के इतनी अधिक निकट जा गयी थी कि उसमें और शेखर में कोई अंतर ही नहीं बचा का। किन्तु यदि उसे महसूस होता कि वह शेखर के मार्ग में बाधा है तो वह शेखर को भी छोड़ देने पर तैयार थी। वह कहती है देखती हूँ, मैं तुम्हारे मार्ग में बाधा बन रही हूँ। पर इसे अनिवार्य नहीं मानती, जिस दिन देखूँगी कि यह अनिवार्य है, उस दिन - उस दिन .....।

शेखर और शशि का प्रेम अतिशय आत्मीयता की अभिव्यक्ति है, जहां पहुँचकर सारे सामाजिक बन्धन और सारी सामाजिक रुढ़ियां तिरोहित हो जाती हैं, निष्प्राण बन जाती हैं। शशि का शेखर के प्रति ऐसा ही प्रेम है। वह स्वयं को पूर्णतया शेखर के प्रति समर्पित कर के भी अपने उद्देश्य के प्रति - शेखर को महान बनाने केलिए - सतत जागरूक है। अपने प्रेम के आदर्श को व्यक्त करते हुर शशि कहती है, "किसी विदेशी उपन्यास में पढ़ा या कि प्यार एक कला है और कला संयम का दूसरा नाम है। ..... किसी भी एक व्यक्ति को इतना प्यार नहीं करना चाहिए कि जीवन में किसी दूसरे उद्देश्य की गुंजाइश न रह जार।"

शशि का जीवन में एक ही आदर्श है - शेखर का विकास, शेखर की प्रगति। इस आदर्श की पूर्ति के लिए वह अपना सर्वस्व सहर्ष होम करने को तत्पर है। शशि के प्रेम की आदर्श मयी गरिमा इनपंक्तियों में सहजता और सम्पूणता से मुखरित होती है -

'I want to die when you love me
While yet you hold me fair,
While laughter lies upon my lips
And lights are in my hair,
I want to die when you love me,
Oh who would care to live
Till love has nothing more to ask
And nothing more ..... to give?'

इसी एकान्तनिष्ठ प्रेम के बल पर शशि शेखर के जीवन में असीम शक्ति और प्रेरणा भर देती है। शेखर - एक जीवनी का यह चरित्र अपने उदात्त व्यक्तित्व के कारण पाठकों का हृदय अभिभूत कर लेता है।

शेखर एत जीवनी - मूल्यांकन

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की अन्यतम कृति है 'शेखर - एक जीवनी'। यह हिन्दी साहित्य की औपन्यासिक परंपरा से सर्वथा मुक्त होते हुए भी औपन्यासिक गुणों से सम्पन्न है। इसकी कथावस्तु की संयोजना स्मृत्यवलोकन की शैली में की गयी है। शेखर क्रांतिकारी है और उसे फांसी की सजा होने वाली है। वह रात में स्मृतियों के द्वारा अपने संपूर्ण अतीत का प्रत्यावलोकन कर लेता है। 'शेखर - एक जीवनी' की कथावस्तु शेखर को घनीभूत वेदना की केवन एक रात में देखे हुए बिज़न (vision) को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है।

शेखर बचपन से ही अहंवादी तथा विद्रोही स्वभाव का बच्चा है। पहले उसका विद्रोह पारिवारिक स्तर पर चल जाता है। मां का अपने प्रति अविश्वास व्यक्त किए जाने पर वह घर छोड़

कर चला जाता है। पिता अधिक प्रिय हैं फिर भी कई बार वह पिता से भी विद्रोह कर बैठता है। वह स्कूल इसलिए नहीं जाना चाहता क्योंकि वह 'व्यक्ति' बनना चाहता है और प्रचलित शिक्षा पद्धति बच्चे को केवल 'टाइप' ही बना पाती है। वह अपने व्यक्तित्व का उन्मुक्त और सहज विकास करना चाहता है, इसलिए वह आजीवन व्यक्तित्व की खोज में भटकता रहता है। अहं, भय और काम के भाव शेखर में अधिक प्रबल हैं। यौन जिज्ञासा के कारण वह शारदा के प्रति आकर्षित होता है, किन्तु यह वय सांधि का प्यार विकल ही होता है। शशि के प्रति शेखर का आकर्षण गहरा अनुराग बन जाता है। शशि शेखर की मौसेरी बहन है, फिर भी वे एक दूसरे को पूर्णतया समर्पित हैं। अंत में शेखर द्वारा शशि के ओंठ चूमना इस प्रेम की उन्मुक्तता और स्वच्छंदता को व्यक्त करता है जो सामाजिक प्रतिमानों के लिए एक चुनौती है। शेखर का विद्रोह उसकी अवस्था और कर्मक्षेत्र की वृद्धि तथा व्यापकता के साथ बढ़ता जाता है। वह समाज, राजनीति, साहित्य आदि परंपराओं के प्रति विद्रोह करता है। वह एक ऐसा परिवेश चाहता है जो सब प्रकार के आरोपित बन्धनों से मुक्त होकर अपनी संपूर्ण सहजता के साथ विकसित और पल्लवित हो।

'शेखर एक जीवनी' की कथावस्तु का विन्यास बाहर से असम्बद्ध और बिखरा हुआ दिखायी देता है। किन्तु यह कथा विन्यास का दूषण नहीं, वरन् एक नवीन विधा की प्रयोग धार्मिता है जो अपने सहज रूप में विकसित होती है। विचार प्रधानता और मनोवैज्ञानिकता इस उपन्यास की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताएँ हैं। विद्रोह, फाँसी, ईश्वर, साहित्य, हिंसा, अहिंसा, क्षण, व्यक्तित्व आदी पर विचार कर इस उपन्यास में जो नयी व्याख्याएँ प्रदान की गयी हैं, वे निस्संदेह प्रस्तुत उपन्यास को सर्वोच्च श्रेणी के विचार प्रधान उपन्यासों की कोटि में ला खड़ा करती हैं। पात्रों का मनोविश्लेषण भी इतना सजीव और परिपूर्णता से सम्पृष्ट है जिसका अन्यत्र उदाहरण नहीं मिलता। इसकी मनोविश्लेषणात्मकता का विवेचन करते हुए डा. राम दरश भिन्न लिखते हैं, 'व्यक्ति मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभवों को, अन्तर्द्वंद्वों को, बाहरी जगत के प्रति प्रतिक्रियाओं को, अवचेतन स्थित उलझी हुई संवेदनाओं को, मन में उभरती जिज्ञासाओं और प्रश्नों को बड़ी मार्मिकता से अंकित किया गया है'।

'शेखर एक जीवनी' की चरित्र संयोजना उदान्त, स्वाभाविक एवं प्रभावपूर्ण है। इसके प्रायः सभी चरित्र संश्लिष्ट हैं और अपने अपने वर्गों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। शेखर उस युवा वर्ग का प्रतीक है जो स्वभावतः विद्रोही किन्तु अपने व्यक्तित्व की खोज के लिए आन्तरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर संघर्षशील हैं। शशि उस भारतीय नारी का प्रतीक है जो ससुराल की अज्ञानता में नष्ट होते हुए भी भटकते पुरुष का मार्ग - दर्शन कर उसे नयी शक्ति प्रदान करती है। शेखर के पिता हरिदल पितृ सत्ता के प्रतीक अभिमानी किन्तु उदार हृदयी पिता हैं। विद्या भूषण और बाबा मदनसिंह उस क्रांतिकारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका एक छोर युवा वर्ग की आवेशमयी क्रांति ज्वालासे प्रज्वलित है और दूसरा छोर वृद्धों की संघर्ष जन्य मानसिकता के अनुभवों की सघनता और गम्भीरता से आच्छादित। मणिका भोगवादी वर्ग को प्रतिनिधित्व देती है। वह कुल मिलाकर शक्ति का विकृत रूप है। इस प्रकार शेखर एक जीवनी के सभी पात्र सजीव एवं आकर्षक बन पड़े हैं।

किसी भी उपन्यास में संवादों की योजना प्राय कथाविस्तार या नाटकीयता के लिए की जाती है परन्तु प्रस्तुत उपन्यास में इसकी संयोजना वैचारिक धरातलों का उद्घाटन करने के लिए अथवा मनोविज्ञान का प्रस्तुती करण करने के लिए की गयी है। कथोपकथन की यह संयोजना अत्यंत स्वाभाविक है। यथा सब शरीर भी ईश्वर बनाता है?

'सब शरीर भी ईश्वर बनाता है?

हां।

सब कुछ ईश्वर करता है?

हां।

तब लड़ाई भी ईश्वर ने करायी होगी?

हां'।

यह कथोपकथन बालक शेखर और बालिका सरस्वती के मध्य होता है। इसमें बालकों व सहज व स्वाभाविक भाषा का प्रयोग है। विचारों के उद्घाटन में वाक्य अधिक लंबे और गंभीर हो जाते हैं। जैसे इसिलिए मैं आज के संहारकारी युग में भी मानव के भविष्य पर विश्वास करता हूं - भविष्य वर्तमान की क्षति पूर्ति है, इसीलिए वह स्वयम्भू है, उससे निस्तार नहीं।

देश काल और वातावरण की दृष्टि से भी शेखर - एक जीवनी की संयोजना सफल है। वातावरण के प्रस्तुतीकरण में कल्पना का सत्य नहीं,स्वयं उपन्यासकार का भोगा हुआ सत्य निहित है।

अज्ञेय की भाषा - सिद्धि एक स्वीकृत तक्ष्य है। डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार भाषा व्यक्तित्व का अभिन्नतम अंग है और इस बात को अज्ञेय के सम्बन्ध में बहुत सार्थक भाव से कहा जा सकता है। रचना के स्तर पर भाषा की जितनी चिंता अज्ञेय करते हैं, आधुनिक साहित्य में दूसरा लेखक नहीं करता। अज्ञेय की भाषा विषयक ऐसी ही सजर्नात्मक सामर्थ्य शेखर - एक जीवनी में सहज ही परिलक्षित होती है। इसमें भाषा की बरिक से बरीक उलझी से उलझी और सूक्ष्म छवियों का प्रयोग इसका प्रमाण है। यथा –

'फांसी!

जिस जीवन को उत्पन्न करने में हमारे संसार की सारी शर्क्तियां, हमारे विकास, हमारे विज्ञान, हमारी सभ्यता द्वारा निर्मित सारी क्षमताएँ या औजार असमर्थ हैं, उसी जीवन को छीन लेने में, उसी का विनाश करने में, ऐसी भोली हृदय हीनता - फांसी'। मिलत व्ययिता भाषा की एक प्रमुख विशेषता है और वैचारिक बिम्बों की एक सशक्त योजना है।

इस उपन्यास का उद्देश्य है - व्यक्ति या स्वातन्त्र्य की खोज। आत्मकथात्मक शैली में लिखे जाने के कारण 'शेखर' में यह व्यक्तित्व की खोज अधिक कुशल और प्रामाणिक ढंग से सम्भव हो सकी है। व्यक्तित्व को समझने का अर्थ है अपने को समझना अपनी सर्जन प्रक्रिया को समझना और यह समझ शेखर में आद्योपान्त विद्यमान है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शेखर एक जीवनी अपनी नवीन प्रयोगधार्मिता के बावजूद सभी औपन्यासिक गुणों से सम्पन्न है। वस्तुतः यह हिन्दी के आधुनिक उपन्यास साहित्य की एक परम उपलब्धि है।

गबन

विषय सूची

Unit I	1.	प्रेमचन्द का उपन्यास - साहित्यः एक परिचय
Unit II	2.	'गबन' की कथावस्तु
	3.	'गबन' की विशेषताएँ
Unit III	4.	जालपा का चरित्र चित्रण
	5.	रमानाथ का चरित्र चित्रण
	6.	देवीदीन का चरित्र चित्रण

Unit - I

1. प्रेमचन्द का उपन्यास - साहित्य : एक परिचय

हिन्दी के उपन्यास सम्राट के रूप में विख्यात प्रेमचन्द हिन्दी के अमर कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में यथार्थवादी चेतना मिलती है। वे सच्चे अर्थों में जनता के साहित्यकार थे। प्रेमचन्द के आगमन के पहले हिन्दी उपन्यास ऐयारी और तिलस्म के माया मोह में पड़ा हुआ था। उस समय जासूसी तथा साहसपूर्ण उपन्यासों को ही लोकप्रियता रही थी। कामुकतापूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लोगों को बहका रहे थे। देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि लेखक उस समय प्रमुख थे। प्रेमचन्द ने पहली बार साहित्यकार के दायित्व को पहचान लिया। उन्होंने उपन्यास को जनजीवन के यथार्थ राजमार्ग पर खड़ा कर दिया। उन्होंने पहले उर्दू में रचनाएँ कीं। बाद में हिन्दी में। जनजीवन की धड़कर महसूस करने में उन्हें कमाल हासिल था। उन्हें ज़मीन्दारी तथा महाजनी सभ्यता के प्रति नफरत थी। शेषितों की करुण गाथाओं से उनकी रचनाएँ भरी पड़ी हैं।

वास्तव में प्रेमचन्द का भोगा हुआ जीवन उन की लेखनी से उभरकर आया है। डा.इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है - "प्रेमचन्द इतना सादा जीवन बिताते थे कि कल्पना नहीं कर सकता। वे देहाती किसान के प्रतिरूप थे, जिनमें अहंकार नाम - मात्र को भी नहीं था। जीवन की सभी कटुताएँ सहने हुए भी वे प्रसन्न चित्त होकर आगे बढ़ते थे, परंतु देश की दशा से वे सदैव दुःखी हुआ करते थे और उसकी मुक्ति का उपाय सोचते - सोचते खो - से जाते। वे देश भक्त थे। समाज विशेष या संप्रदाय विशेष के समर्थक न थे। वे सच्चे अर्थों में हिन्दुस्तानी थे ..... उनका बाहर - भीतर एक - सा था, कथनी - करनी में भेद करना वे न जानते थे, साहित्य और जीवन दोनों उनकेलिए एक - दूसरे के पर्यायवाची थे। इसिलिए यह कहना कि प्रेमचन्द मनुष्य के रूप में साहित्यकार से भी अधिक महान थे, सोलह आने ठीक है"।

प्रेमचन्द की कई रचनाएँ प्रारंभ में उर्दू में मिलती हैं। 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' उपन्यास पहले उर्दू में और बाद में हिन्दी में प्रकाशित किये गये। सेवासदन (1916) से प्रेमचन्द के हिन्दी उपन्यास की यात्रा शुरु होती है। फिर 'प्रेमाश्रम' (1922) , 'रंगभूमि' (1925), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1922), 'निर्मला' (1923), 'कायाकल्प' (1928), 'गोदान' (1936), 'मंगलसूत्र' (अपूर्ण) आदि

उपन्यास उन्होंने लिखे। 'वरदान' में मुख्यरूप से प्रेम और विवाह की समस्या का चित्रण मिलता है और देशप्रेम में उपन्यास का अंत होता है। 'प्रतिज्ञा' में विधवा समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

(1) सेवासदन

'सेवा सदन' की मुख्य समस्या वेश्याओं की है। इससे संबंधित कई बातों का गहरा विश्लेषण प्रेमचन्द ने किया है।

उपन्यास की नायिका सुमन है। वह दारोगा कृष्णचन्द्र की बेटी है। दारोगा पहले रिश्वत न लेते थे, किंतु सुमन के विवाह केलिए उन्होंने रिश्वन ली किंतु इस बात में अपरिचित होने के कारण पकड़े गये और पाँच वर्ष कारावास भोगनापड़ता है। पिता के मरने के बाद दहेज के अभाव में सुमन का विवाह एक अधेड़ अवस्था के व्यक्ति - गजाधार से कर दिया गया। सुमन के घर के सामने भोला नामक एक वेश्या रहती थी। सुमन ने समझा कि वेश्याओं को जितना आदर घर - समाज में मिलता है उतना उसे नहीं मिल रहा है। पति का अपमान भी उसे असह्य सा लगा। एक बार सुमन गाजाधर के मित्र पदमसिंह के यहाँ किसी उत्सव में गयी हुई थी, वहाँ से उसे घर लौटने में रात को बहुत देर हो गयी। इस पर गजाधर ने उसे घर से निकाल दिया। वह पदमसिंह के घर गयी तो थी अधिक दिन वे उसे नहीं रख सके। अंत में वेश्या भोली का आश्रय प्राप्त होता है और सुमन वेश्या जीवन में शामिल हुई।

सुमन ने वेश्यावृत्ति छोड़कर एक विधवा आश्रम में आश्रय प्राप्त किया। लेकिन वहाँ से भी उसे निकाल दिया गया। वह अपनी छोटी बहन शांता के पास रहकर पवित्र जीवन बिताने लगी, किंतु शांता के परिवार के लोग भी उसे घृणा से देखने थे। अंत में एक रात शांता का घर छोड़ दिया और स्वामी गजानन्द की कुटिया में आश्रय लिया। वे स्वामी गजानन्द सुमन के पति गजाधर ही थे। उन दोनों ने मिलकर सेवासदन की स्थापना की।

प्रेमचन्द के अनुसार परिस्थितियों के दबाव में पड़कर ही कोई वेश्या बन जाती है इसकेलिए समाज कैं उच्चवर्ग भी उत्तरदायी हैं। प्रेमचन्द ने इस यथार्थवादी उपन्यास का अंत आदर्शवादी ढंग से किया है।

(2) प्रेमाश्रम

इस उपन्यास में एकप्रकार से ज़मीन्दार के व्यक्तिगत पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का विस्तार से विवेचन किया है। हृदय परिवर्तन का सिद्धांत भी यहाँ दृष्टव्य है।

उपन्यास का मुख्य पात्र ज्ञानशंकर है, जिसकी जमीन्दारी में लखनपुर गाँव है। वह अपने चाचा प्रभाशंकर के साथ रहता है, क्योंकि अभी उनमें बँटवारा नहीं हुआ था। ज्ञानशंकर के बड़े भाई प्रेमशंकर उच्च शिक्षा केलिए अमेरिका चले गये थे। ज्ञानशंकर के बडे भाई प्रेमशंकर उच्च शिक्षा केलिए अमेरिका चले गये थे। ज्ञानशंकर स्वार्थी, कूटनीतिज्ञ एवं क्रूर व्यक्ति है। वह एक ओर अपने चाचा प्रभाशंकर और अपने बडे भाई प्रेमशंकर की जमीन्दारी का हिस्सा हड़प लेना चाहता है, तो दूसरी ओर अपने किसानों से अन्याय करता है। इतना ही नहीं, अपने ससुराल की जायदाद केलिए भी वह प्रयत्न करता है। अपनी विधवा माली को प्रेम के डोरे डालकर अपने चंगुल में फँसालेता है और उसकी जमीन्दारी को हस्तगत कर लेने का प्रयास करता है।

प्रभाशंकर किसानों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। ज्ञानशंकर अत्याचारी है। प्रेमशंकर अपना सर्वस्व त्याग करके किसानों केलिए 'प्रेमाश्रम' स्थापित करते हैं। वास्तव में यह भी प्रेमचन्दजी की आदर्शवादी कल्पना ही है। उपन्यास का अंत प्रेमचन्द के अपने आदर्श से हुआ है।

(3) रंगभूमि

'रंगभूमि' प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। इसमें त्याग, प्रेम, बलिदान आदि आदर्शों को प्रस्तुत किया है। साथ ही तर्टकालीन युग से प्ररित होकर गाँधीवाद का आश्रय लिया है। बहुत सारी घटनाओं से पूरा उपन्यास भरा पड़ा है।

उपन्यास में एक ईसाई कुटुम्ब है। मिं. जानसेवक पांडेपुर गाँव में एक सिगरेट का कारखाना स्थापित करना चाहते हैं। इसकेलिए सूरदास की जमीन चाहिए, मगर वह देता नहीं। सूरदास भीख माँगकर जीता है। लेकिन वह गाँव में परोपकारी और चरित्रवाला भी है। अपने जमीन को गाँव की सेवा में देना वह चाहता था। जानसेवक बड़े बड़े अधिकारियों की सहायता से सूरदास की जमीन पर अधिकार प्राप्त कर लेने का प्रयत्न करते हैं। सूरदास, अपने अधिकारों केलिए सत्याग्रह एवं संघर्ष करता हुआ आत्म - बलिदान कर देता है।

इसमें जानसेवक की लड़की कुमारी रोफिया से जुड़ी एक कथा भी है। वह नये विचारों की स्वाभिमानिनी लडकी है। एक बार वह कुँवर विनयसिंह को आग से बचाती हुई घायल हो जाती है। इस के बाद विनयसिंह और सोफिया परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। उनकी यह प्रेम कहानी जीवन की अनेक परिस्थितियों को पार करती हुई आगे बढ़ती है। सोफिया के माता - पिता उसका विवाह मजिस्ट्रेट क्लर्क से करना चाहते हैं। फिर भी विनयसिंह की सहायता वह करती रहती है। आखिर विनयसिंह के आत्म - बलिदान के बाद आत्महत्या कर लेती है। सूरदास को प्रेमचन्द ने गाँधीजी के प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत किया है। गाँधीवादी आदर्शों से वह भरपुर है।

(4) कायाकल्प

कथ्य की दृष्टि से यह एक अलग ढंग की रचना है। इसमें सामाजिक समस्यायें हैं, प्रेम की कथा है, हिन्दू - मुस्लिम दंगों का चित्रण है, पुनर्जन्म से संबंधित बाते हैं।

चक्रधर नामक युवक एम.ए.करके बाद में जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवक सिंह की पुत्री मनोरमा के शिक्षक नियुक्त हो जाते हैं। मनोरमा चक्रधर से प्रेम करने लगती है। किसी कार्य पर आगरा गये चक्रधर का अहल्या नामक युवती से आकर्षण हो जाता है। चक्रधर - अहल्या का विवाह भी होता है। मनोरमा की बीमारी का तार पाकर चक्रधर अपने पुत्र शंखधर व पत्नी समेत उसके पास पहुँचते हैं। चक्रधर के आने से मनोरमा स्वास्थ होने लगती है।

चक्रधर की पत्नी अहल्या वास्तव में जगदीशपुर के राजा की ही लडकी थी, जो बचपन में खो गयी थी, इस तथ्य का प्रमाण मिलने पर अहल्या को राज्य का भाग प्राप्त हो गया। किंतु राज्य - प्राप्ति के अनंतर अहल्या अपने पति और पुत्र की उपेक्षा करने लगी। अंत में अहल्या की मृत्यु हो जाती है।

जगदीशपुर की महारानी देवप्रिया का विवाह महेन्द्रसिंह से हुआ था, किंतु प्रथम रात में ही उनकी मृत्यु हो जाती है। अगले जन्म में वे ही विक्रमसिंह के रूप में अवतरित हुए और महारानी देवप्रिय से मिले, किंतु उनका दुबारा देहांत हो जाता। इसके बाद वे शंखधर के रूप में अवतरित हुए और देवप्रिया से मिले। इस प्रकार पूरे उपन्यास में कई चमत्कारपूर्ण घटनाएँ आयी हैं।

(5) गबन

'गबन' में स्त्रियों की अडंबर प्रियता, झूठे अहम व दिखावे का परिणाम दिखाया है। मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ चित्र इसमें अंकित है।

रमानाथ म्युनिसिपल आफिस का कर्मचारी है। उसका विवाह जालपा से हुआ था। अपनी पत्नी की आभूषण प्रियता को संतुष्ट करने से जुडकर रमानाथ को सरकारी रकम घर में ले-आना पड़ता है। पत्नी केलिए चन्द्रहार भी बनवा देता है। मगर गबन के आरोप में, गिरफ्तारी के भय से वह कलकत्ता भाग जाता है, किंतु किसी अन्य कारण से वह गिरफ्तार हो जाता है। अंत में जालपा की सहायता से वह मुक्त हो जाता है। इस यथार्थवादी उपन्यास का अंत एकप्रकार से आदर्शवादी ही है।

(6) निर्मला

'निर्मला' की मुख्य समस्या अनमेल विवाह तथा दहेज प्रथा की है। निर्मला की विधवा माँ दहेज देने में असमर्थ होने की वजह में उसका विवाह अधेड़ अवस्था के एक विधुर तोताराम से करना देती है। तोताराम की पहली पत्नी से तीन संतानें थीं तथा उनका सबसे बड़ा लडका निर्मला की आयु का था। अतः तोताराम अपने इस बड़े पुत्र और निर्मला के संबंध को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। इस के परिणाम से अंत में सारा घर चौपट हो जाता है। निर्मला की मृत्यु के साथ उपन्यास समाप्त होता है। लेखक ने उपन्यास के अंत में कोई आदर्श नहीं रखा है। वह यथार्थवादी ही रह जाता है।

(7) कर्मभूमि

इस उपन्यास में समकालीन समाज का चित्र अंकित है। हिन्दू - मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, किसानों का उत्थान आदि पर प्रेमचन्द ने बल दिया है।

कथा नायक अमरकांत है। वह विवाहित है, मगर सकीना नामक मुस्लिम कन्या से प्रेम करता है। अगे वह देश सेवा में लग जाता है। पीडितों, दलितों, अछूतों के हित में कई यातनाएं भोगता है। किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया तो जेल में जाना पड़ा। उससे प्रभावित जित्र सलीम, जो आई .सी.एस वाला है और जिला अधिकारी भी है, सरकारी सर्विस छोड़कर किसान -सेवा में लग जाता है। किसान आन्दोलन सफल होने पर गवर्नर ने पाँच व्यक्तियों की कमेटी नियुक्त कर दी। अमरकांत और सलीम भी इसमें शमिल थे। इस कमेटी को किसानों की माँगों के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार दे दिया गया। इस उपन्यास में समकालीन समस्याओं का ही चित्र अंकित है।

(8) गोदान

प्रेमचन्द के अंतिम उपन्यास गोदान में भारतीय किसानों की करुण कथा बतायी है। किसान उत्पीडन, शोषण इसमें मुख्य है। शोषण चक्र से उनकी मुक्ति नहीं होती।

होरी इसका नायक है, किसान है। पुत्र गोबर और पत्नी धनिया है। जीवन भर मेहनत करने पर भी भरपेट खाना उसे नहीं मिलता। जमीन्दार, महाजन, पटवारी, पुरोहित, पुलिसवाले सब होरी का शोषण करते रहते हैं। एक गाय को अपना बना लेना होरी के जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी। मगर जीदन भर कोशिश करने पर भी वह नहीं कर पाता। उसकी मृत्यु के बाद भी यह अभिलाषा गोदान - ब्राह्मण को गोदान - के रूप में उपस्थित होती है।

इस उपन्यास में भी प्रेमचन्द ने कोई आदर्श अंत में प्रस्तुत नहीं किया। वैसे ही छोड़ दिया है। इसे प्रेमचन्द की श्रेष्ठ रचना माना जाता है।

संक्षेप में कहें तो प्रेमचन्द की उपन्यास - यात्रा जन जीवन के बीच से होकर ही है। समाज की ज्वलंत समस्याओं का चित्रण उन्होंने किया। वे पहले उपन्यासकार है जिन्होंने एक मामूली किसान को 'हीरो' बना दिया। समाज के गरीब तथा शेषित वर्गों के प्रति प्रेमचन्द की सहानुभूति रही है। वास्तव में उनके लिए उपन्यास 'मानवचरित्र का चित्र' मात्र ही है।

Unit - 2

2. 'गबन' की कथावस्तु

कचहरी में नौकरी करते हुए भी रिश्वत लेना अधर्म समझने वाले मुंशी दयानाथ अपने पुत्र रमानाथ को मैट्रिक से अधिक नहीं पढ़ा पाते। रमानाथ का विवाह जमीन्दार के मुख्तार दीनदयाल की पुत्री जालपा के साथ होता है जिसके पिता का वेतन यद्यपि पाँच रुपये मात्र था किंतु रिश्वत की आय के कारण वह बड़े वैभव में पली थी। जालपा के मन में विवाह के अवसर पर चन्द्रहार आने की मनोग्रंथि पड़ी हुई थी, जो दयानाथ द्वारा ३००० के आभूषण ले जाने पर भी पूरी नहीं हो सकी।

जालपा को ईश्वर प्रदत्त सुंदरता प्राप्त थी, जिससे रमानाथ उसके प्रति अत्यधिक आसक्त हो उठा। जालपा ने यह कहकर अपने सारे आभूषण उतार कर रख दिये थे कि वह उन्हें चन्द्रहार के आने पर ही पहनेगी, जबकि इसके विपरीत सर्रफ के तकाजों के कारण उसके ससुर की स्थिति ऐसी विषम थी कि वे उसके लिये बनवाये हुए आभूषणों में से भी कुछ आभूषण बेच देना चाहते थे। जालपा से आभूषण लेने का दायित्व रमानाथ को सौंपा गया। रमानाथ उससे पहले ही यह डींगें हाँक चुका था कि हमारे पचासों हज़ार रुपये बैंक में जमा हैं, तथा ज़मीन्दारी से भी हमें पर्याप्त आय होती है। अतः वह इस संकोच में ग्रस्त होकर कि आभूषण माँगने पर जालपा मुझे गपोडी समझेगी उसके पूरे ही आभूषणों का डिब्बा चुराकर पिता को सौंप आया।

यहाँ तो जालपा चन्द्रहार की जिद ठाने बैठी थी, जब उसके अन्य आभूषण भी चोरी चले गये तो उसे बड़ा मानसिक आघात पहूँचा। कुछ दिनों तक वह खान - पान त्यागे रोगिणियों की भाँति बिस्तर पकड़े रही तथा अंततः रुठकर मायके जाने को प्रस्तुत हो गयी। उसका हृदय अपने सास - ससुर के प्रति तो घृणा से भरा ही हुआ था कि वे धन होने पर भी उसकेलिए आभूषण नहीं बनवाते, रमानाथ के प्रति भी उसे यह सोचकर कम क्रोध नहीं था कि वह अपने माँ - बाप पर उसकेलिए आभूषण बनवाने केलिए दबाव क्यों नहीं डालता? रमानाथ के समझाने - बुझाने और नौकरी करके अपने वेतन से उसके लिए आभूषण बनवाने का वचन देने पर ही जालपा किसी प्रकार अपने हठ को त्याग सकी।

रमानाथ को रमेश बाबू के सहयोग से म्युनिसिपल बोर्ड में 30 रु. मासिक वेतन की मुहर्रिरी मिल गयी। उसका चुंगी लेने का कार्य ऐसा था कि उसमें ऊपर की आमदनी भी अच्छी हो जाती थी, किंतु शौकीन - मिजाज का होने के कारण रमानाथ के हाथ में पैसा ठहर न पाता था। आभूषण न होने का तर्क देकर जन्माष्टमी का उत्सव देखने न जानेवाली जालपा केलिए वह रमेश बाबू के माध्यम से उधार आभूषण लाने के उद्देश्य से गया भी, किंतु रमेश बाबू ने स्त्रियों की आभूषण प्रियता की इतनी निन्दा की कि रमानाथ निराश लौट आया। किंतु वह अपने मन पर अधिक समय तक संयम न रख सका, क्योंकि जब उसने जालपा द्वारा अपनी सखियों को लिखे पत्र चोरी से पढ़ लिए तो उसे ऐसा

राजेश्वर गुरु के मत में - 'गबन' की करुणा को आलोचक केवल नारी की आभूषण प्रियता के कारण मानते हैं। लेकिन इस ट्रेजडी की जिम्मेदारी मध्यवर्ग की मुल्म्मे चढ़ी सामाजिक स्थिति के आडंबर पर है, जो अपने आत्मीयों के सामने भी अपने पीतल को सोना कहने की जीट उड़ाया करता है। प्रेमचन्द 'गबन' के पूर्वार्द्ध को नारी की आभूषणप्रियता - मात्र की ट्रेजडी नहीं बनाना चाहते, किंतु मध्यवर्ग के खोखलेपन को भी इसका उत्तरदायित्व सौंपना चाहते हैं। यह बात इससे भी जाहिर होती है कि रमानाथ बड़े घरों में मेल - जोल बढ़ाने केलिए अपनी सामर्थ्य से अधिक व्यय करता रहता है और इन सबके सामने अपने आपको रईसजादा घोषित करने में संकोच नहीं करता। राजेश्वर गुरु के अनुसार सामाजिक - आर्थिक दृष्टि से एक सामंतवाद के खंडहर की कहानी है और दूसरी पूँजीवादी व्यवस्था में मध्य वर्ग के नाश के महल की कहानी है।

'गबन' की घटना को रमानाथ नामक किसी व्यक्ति विशेष का चरित्र - दोष नहीं मानता चाहिए, वह जैसे आज के इस कृत्रिम समाज की परिस्थितियों का अनिवार्य परिणामं है। रमानाथ के प्रसंग में घर में चोरी, समाज में रिश्वत और नौकरी में गबन तीनों ही बातें घटित होती हैं।

धन की पूजा की संस्कृति पूँजीवादी व्यवस्था का परिचायक है। अपने को समाज में संभ्रात बनाने की महती साधना में मध्य वर्ग को कितने बडे - बडे त्याग करने पडते हैं, इसका उदाहरण रमानाथ है।

देवीदीन नामक पात्र नेताओं की आलोचना करता है। गबन में प्रेमचन्द नेताओं की कथनी और करनी के असामंजस्य को बड़े मार्मिक शब्दों में प्रकट करते हैं। स्वराज्य से संबंधित कई सच्चाइयों को भी लेखक बेनकाब करते हैं।

रमानाथ के गबन करके भागने के बाद से जालपा के चरित्र का विकास होता है। चाहें तो कह सकते हैं कि पुरुष की छत्रछाया में नारी का चरित्रिक विकास स्वतंत्र रूप से न होकर पुरुष की मनोवृत्तियों के साँचे में ढलता है। रमानाथ ने विलास के रास्ते जालपा का प्रेम पाना चाहा था। इसीलिए वह उसके ऊँचे हृदय को कभी समक्ष नहीं पाया। उसने नारी को आभूषणों की चकाचौंध दिखाकर जीतना चाहा था, लेकिन तृष्णा के रास्ते तृप्ति नहीं होती। इसीलिएं नारी की आभूषण - प्रियता के अलावा और भी कई समस्याएँ उपन्यास में आ जाती हैं।

रमानाथ के भागते ही जालपा आभूषण बेचकर सरकारी रुपये जमा करती है। कुछ से कर्ज चुकाती है। अपने श्रृंगार की सारी सामग्री गंगा में प्रवाहित करती है और इस त्रासदी की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर अपने किये का प्रायश्चित करने में लगा जाती है। जिस जालपा ने तत्परता से रमानाथ को गबन की बदनामी से बचाया, वह रमानाथ को आत्मिक - पतन से बचाने में लगा जाती है। लेकिन रमानाथ पाप के रास्ते पर लग चुका है। वह जालपा के सामने स्वीकार करता है कि इसका दुख मुझे भी है कि मेरे हाथों इतने आदमियों का खून हो रहा है। लेकिन परिस्थिति ने मुझे भी लाचार कर दिया है। पति के पाप के प्रायश्चित्त के रूप में जालपा गरीबों की सेवा करने लगती है।

'गबन' का प्रारंभ शहर की हलचलों के बीच होता है और कथा जैसे - जेसे बढ़ती है वह शहर की और अधिक हलचलों के बीच पहुँच जाती है। कलकत्ते के झूठे जीवन की झाँकी देकर प्रेमचन्द कथा के अंत में उपन्यास के प्रमुख पात्रों को शांति की भूमि में ले जाते हैं। यह भूमि ऐसी है, जिसमें धोखा, छल, प्रपंच नहीं है, अशांति अतृप्ति नहीं है, जहाँ श्रम व धर्म का महत्व है।

ऐसा जाना पड़ता है कि जीवन की घोर प्रवंचनाओं से ऊबकर प्रेमचन्द फिर गाँवकी सादी ज़िन्दगी की ओर जाना चाहते हैं। प्रेमचन्द घटनाओं की अनिवार्य गति के बीच निरंतर रास्ता बनाकर चलते हुए भी इस बात का मोह और सुखद स्वप्न कभी नहीं भूल पाते कि मशीनों के इस युग में मनुष्य खो गया है, उसके सुख शांति खो गये हैं, उसके भीतर की कोमल वृत्तियाँ जड़ हो गयी हैं।

रामप्रकाश कपूर के अनुसार, 'गबन' एक दर्पण सदृश है जिसमें मध्यवर्ग अपनी सजीव प्रतिछवि देख सकता है। हमारी झूठी संस्कृति, फटीचर बाबू वर्ग के लोगों का आडंबर, प्रेम का आर्थिक आधार, देश की मानसिक गुलामी आदि - आदि जीवन के अनेक उजले काले धब्बे कुशल चित्रकार प्रेमचन्द की रंगभरी तूलिका से उभर कर हमारे सामने आते हैं।

परिस्थितियाँ किसप्रकार पात्रों को प्रभावित करती हैं तथा पात्रों पर परिस्थितियों का कैसा स्वाभाविक प्रभाव पड़ता तथा ये दोनों, परिस्थिति एवं पात्र, एक दूसरे से अविच्छिन्न रहकर किसप्रकार विकसित होते हैं, इसका सुंदर स्वाभाविक निरूपण इस उपन्यास में प्राप्त होता है।

Unit - 3

4. जालपा का चरित्र - चित्रण

जालपा के व्यक्तित्व का प्रमुख तत्व है प्रेम। प्रेम गहनों से, प्रेम पति से, प्रेम देश से, प्रेम मानवता से उसके भोले - भाले, अबोध हृदय में प्रेम का जो बीज पड़ा था, एक दिन वह विशाल वृक्ष बनकर लहलहा उठा। ज्यों - ज्यों यह पौधा बढ़ता गया वह अधिक हरा होता गया, उसकी जड़ों में धरती की निस्वार्थ भावना अनुप्राणित होने लगी। वह श्रृंगार को प्यार करती है। भोग विलास को भी घृणा नहीं करती। वह पुरुष का प्रेम भी चाहती है। किंतु उसकी वह प्यार - भावना देश - प्रेम व मानव - प्रेम के बीच कहीं भी अवरोध बनकर खडी नहीं हो पाती। जिन आलोचकों ने गबन को केवल गहनों की ही कहानी कहा है, उन्होंने उपन्यास की समग्रता कि प्रति बडा अन्याय किया है। उपन्यास का प्रथम चरण जालपा के यौवन का प्रथम कदम भी है। इस वय में जालपा को गहनों के प्रति अतिशय आकर्षण दिखाई पड़ता है। उसकी अगड़ाइयाँ चन्द्रहार के स्वप्नों से आलिंगित हैं। वह उसकेलिए जिद करती है रोती है। और अब गहने चोरी हो जाते हैं, तो मूर्च्छित हो जाती है। जालपा को गहनों से जितना प्रेम था उतना कदाचित संसार की और किसी वस्तु से न था। और उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अबोध बालिका थी, उसी वक्त उसके लिए सोने के चूडे बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में खिलाने लगती तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा दुल्हा तेरे लिए बडे सुंदर गहने लायेगा। तब ठुमक - ठुमक कर चलेगी।

किशोरवस्था तथा यौवन के प्रथम पर्व में जालपा के व्यक्तित्व में गहनों के प्रति जो प्रेम था, उसके कारण को प्रेमचन्द ने भली भांती समझ लिया था। और जालपा के चरित्र में उनका यह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पूर्ण निखर के साथ उद्भासित हुआ है।

लेकिन आभूषण - प्रेम ही जालपा के चरित्र का समस्त परिचय नहीं है। यह तो उसके जीवन के एक विशिष्ट समय की चाह मात्र थी। जिसको हम जालपा के चरित्रिक विकास की एक कड़ी भर समझ सकते हैं। और इस कड़ी को हम संपूर्ण जंजीर नहीं समझ सकते। ज्यों - ज्यों उसकी

उम्र् बढ़ती गयी, घटनाएँ बदलती गयीं, उसके कोमल सरस दिल में छिपी महानता विकसित होकर अभिव्यक्त होती गयी। और एक समय वह आया जब जालपा ने सर्पिणी की भाँति फुफकार कर रमानाथ को कहा - "तुम जैसे मोम के पुतले को पुलिसवाले कभी नाराज न करेंगे। तुम्हें कोई जगह मिलेगी और शायद अच्छी जगह मिले। मगर जिस जाल में तुम फँसे हो, उसमें से निकल नहीं सकते। झूठी गवाही, झूठे मुकदमे बनाना और पाप के व्यापार करना ही तुम्हारे भाग्य में लिखा गया है। जाओ शौक से ज़िन्दगी के सुख लूटो। मैं ने तुमसे पहले ही कह दिया था और आज फिर कहती हूँ, कि मेरा तुम से कोई नाता नहीं। मैं ने समझ लिया कि तुम मर गये। तुम भी समझ लो, कि मैं भर गयी। बस जाओ। मैं औरत हूँ - मगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे, तो चाहे उसे न मार सकूँ, अपनी गर्दन पर छुरी चला दूँगी। क्या तुम में औरत के बराबर भी हिम्मत नहीं है"?

गहनों केलिए हठ करनेवाली जालपा के चरित्र में कितना बड़ा गुणात्मक परिवर्तन आ गया। कहाँ तो वहा परंपरागत मान - मर्यादा तथा वातावरण में आबद्ध और कहाँ अपने पति को फटकारनेवाली जालपा का यह स्वरूप! दोनों चरित्रों में एक निश्चित गुणात्मक अंतर है। इस अंतर के दो कार्य - कारण हैं। पहला - सामाजिक - राष्ट्रीय व्यग्र - व्यंजना। दूसरा स्वयं जालपा की व्यक्तिगत मनुष्यता। प्रेमचन्द ने गबन की रचना सन् 1928 - 29 में की थी। राष्ट्रीय पैमाने पर प्रथम असहयोग आन्दोलन के बाद दूसरे आन्दोलन की तैयारी हो रही थी। आंतकवादी क्रांतिकारियों की सरगरमी भी बढ़ रही थी। उन्हीं दिनों मेरठ षड्यंत्र केस भी चल रहा था। राष्ट्रीय आन्दोलन में एक प्रौढ़ता आने लगी थी। कांग्रेस भी पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव को स्वीकार करने की तैयारी में थी। गबन में देवीदीन इसी प्रौढ़ता का प्रतीक है। सामाजिक धरातदल पर जालपा उसका दूसरा प्रतीक है। इसी पृष्ठभूमि पर उसकी मनुष्यता चन्द्रहार के संकीर्ण दायरे से निकल कर मानव जाति तथा देश - प्रेम की विशाल सीमा तक पहूँच गयी। विशालता की तरफ विकास, यही जालपा के चरित्र की सबसे बड़ी विशिष्टता है।

जालपा का यह चरित्रिक रूप प्रेमचन्द के नारी पात्रों के विकास की आशातीत प्रगति है। पति को परमेश्वर, देवता और अपने जीवन का सर्वस्व समझनेवाली हिन्दू स्त्री का यह क्रांतिकारी रूप है! वह सुमित्रा की भाँति पति को धमकियाँ देकर फिर गुडिया नहीं बनती। सुमन की भाँति विद्रोह करके फिर अपने को ईश्वर की कठपुतली नहीं समझती। विद्याकी भाँति अपने पति की चरित्रहीनता से तंग आकर जहर नहीं खाती। निर्मला की भाँति तोताराम के परिवार में घुट - घुट कर नहीं मरती। जालपा इन सब से भिन्न है। अपने पहले के समस्त स्त्री पात्रों के गुण जालपा में मौजूद है। प्रेम की भावना उसमें उदात्त से उदात्ततर होती जाती है। और अपनी महान आत्मा में संपूर्ण विश्व को समाहित कर लेती है।

उसके चरित्र में इतना आत्मबल है कि वह बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना कर सकती है। मन और मस्तिष्क को मिला कर जो मार्ग उसने बना लिया उस पर चलने से उसे कोई न रोक सकता। उसकी बुद्धि रीति - रिवाज़ों, संस्कारों आदि से भ्रष्ट नहीं होती। वह अंध विश्वासों को चीर कर ज्ञान के उदात्त रूप को अनुभूत कर लेती है। अपने इसी बल के कारण वह उठते हुए भारतीय नारीत्व की प्रतिनिधि बन गयी।

उसके चरित्र का यह रूप अकस्मात्त आकाश से नहीं टपकता। उसमें मनुष्यता अंतर्निहित है, जो परिवर्तित वातावरण में परिमार्जित होकर विकसित होती जाती है। गहनों पर प्राण देनेवाली जालपा ने समय पडने पर तत्काल ही उनको आधे दामों पर उठा दिया। उसे जरा भी रंज नहीं हुआ। बल्कि अपने पर गर्व ही हुआ। जब उसे मालूम हूआ कि रमानाथ गायब हो गया तो वह रायी - चिल्लायी नहीं। सोचती है - "वहाँ (कलकत्ते) क्या समझ कर बैठे हैं? इसलिए तो कि वह स्वाधीन है! आज़ाद है! किसी का दिया नहीं खाते। इसी तरह मैं कहीं बिना कहे - सुने चली जाती तो वह मेरे साथ किस तरह पेश आते? शायद तलवार लेकर गर्दन पर सवार हो जाते था ज़िन्दगी भर मुँह न देखे"। यहीं से जालपा के चरित्र में एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का तत्व उभरने लगता है। इसी के कारण वह आगे जाकर रमानाथ की भ्रष्टता, नीचता और कायरता से लोहा ले सकी। इन्ही तत्वों के कारण वह प्रेमचन्द की प्रथम स्वस्थ विद्रोहिणी स्त्री पात्र बन सकी।

वह यह भी सोचती है कि उसके अतिशय आभूषण प्रेम ही ने रमानाथ को गबन करने केलिए प्रोत्साहित किया। किंतु यह भावना उसके व्यक्तित्व को अन्य स्त्री पात्रों की भाँति आत्म दंडनीय नहीं बनाती। यह उसके चरित्र का बहुत बड़ा गुण है। ऐसा होने से वह भी अन्य पात्रों की भाँति डोर से बँधी हवा के झोंकों से ऊपर उठकर कटी हुई पतंग की भाँति नीचे गिर पड़ती। प्रेमचन्द की देश भक्ति ने जालपा के चरित्र को इस पतन से बचा लिया। वह रमानाथ के खिलाफ बोलती ही नहीं बल्कि कोटि में उसके बलानों का पर्दाफाश करने का भी फैसला कर लेती है। वह दिनेश के घर पानी लाती है। उसके घर का सारा काम - काज करती है। रमानाथ को अपने जीवन से निकाल कर वह स्वतंत्र जीविका कमाने का संकल्प सा कर लेती है। इन घटनाओं से उसके व्यक्तित्व में कोई निराशा या अपराध की भावना पैदा नहीं होती। वह रमानाथ को कहती है - "यह में नहीं कहती कि भोग - विलास से मेरा जी भर गया। या गहने - कपड़ों से मैं ऊब गयी। या सैर - तमाशे से मुझे घृणा हो गयी। यह सब अभिलाषाएँ ज्यों की प्यों हैं। पुरुषार्थ से अपने परिश्रम से, अपने सदुपयोग से उन्हें पूरा कर सको तो क्या कहना? लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ, तो मैं ठुकरा दूँगी"।

जालपा का स्वाभाविक श्रृंगार प्रेम परंपरागत रीति रिवाज़ों को तोड़कर स्वतंत्र चिंतन की उसकी क्षमता, उसकी विशाल हृदयता, उसकी देश भक्ति व मानव - प्रेम की भावना प्याग करने की अपार शक्ति, उसका स्वस्थ मन जालपा को भारतीय नारी के नये रूप का प्रतीक बना देते हैं। उसके चरित्र से स्वयं उसकी महानता ही नहीं झलकती बल्कि प्रेमचन्द की दृष्टि का विकास भी हमारे सामने आता है। उनकी देशभक्ति तथा मानव प्रेम के कारण ही जालपा का चरित्र इस सफलता के साथ चित्रित हो सका।

CUP/8647/11/500/SDE—12

5. रमानाथ का चरित्र चित्रण

उपन्यास के आरंभ से ही रमानाथ को प्रेमचन्द ने जिन चरित्रिक गुणों से आभूषित किया है उससे रमानाथ का विकास एक मुखबिर के रूप में ही हो सकता था। वास्तव में रमानाथ का सैर सपाटे का शौक, बढ़िया - बढ़िया सूट और वस्त्र, झूठा अभिमान, सही बात को छिपाने की प्रवृत्ति और जैसे - जैसे अपने जीवन की सुविधा को जुटाने का स्वभाव है - उसके कारण निश्चित रूप से उसे गहने चुराने ही पडते, जालपा से यह सत्य छिपाना ही पड़ता, और अपनी आदतों के कारण गबन की अवस्था तक पहूँचना ही पडता। ऐसे ढिलमिल चरित्रवाले केलिए जब कलकत्ता में सैर - सपाटे, आनंद - विनोद, शरब और जोहरा हाजिर कर दी जाय तो फिर वह मुखबिर क्या, झूठा गवाह क्या, देश का गद्दार ही क्या - पशु तक बन सकता है।

रमानाथ में बचपन से ही एक मध्यम वर्गीय सफेदपोश - परिवार के झूठे दंभ की भावना कूट - कूट कर भर चुकी थी कि वह उससे अपने जन्म भर उबर नहीं सका। जालपा से विवाह के पूर्व वह माँग कर पहिने हुए वस्त्रों से बड़प्पन जँचा लेता था तो विवाह के बाद बैंक में रुपये जमा हैं, जमीन्दारी का बहुत - सा धन आता है, सूद पर रुपये दिये हुए हैं आदि बातें कहकर जालपा के सापने अपने को संपन्न साबित करके रोब जमाना चाहता था। जब उसे म्युनिसिपैलिटी में पचास - साठ रुपयों का नौकरी मिली तो उसे भी जालपा के सामने इसप्रकार बखान किया मानो कमिश्नर से कम की पोस्ट नहीं। जालपा को लगातार कपट और झाँसे के व्यवहार में उलझाये रहा। लेकिन उसके हृदय में बार - बार यह शंका अवश्य उठती थी कि यह सब कुछ वह ठीक नहीं कर रहा है। कितनी ही बार वह साहस करके सही - सही बात जालपा से कहना चाहता था लेकिन अपनी झूठी शान में बट्टा लगना उसे स्वीकार न था। अपने हृदय मे परिवार के ऐश्वर्य संबंधी रहस्य को छिपाये रखना बहुत दिनों तक संभव नहीं था और परिस्थितियां उसे गहरे खड्डे की ओर घसीटती ले जा रही थीं, जिसे वह स्वयं अनुभव कर रहा था। लेकिन उसमे वह साहस, दिलेरी, परिस्थितियों की विजय - कामना ही नहीं थी जो मनुष्य के जीवन का आभूषण है।

मुखबिर बन जाने के पश्चात जब जालपा से मिलता है तो बयान बदलने का निश्चय कर लेता है। लेकिन वही कायर पन और दुर्बलता सामने आ खड़ी होती है। एक बार फिर वह भविष्य के जीवन के सुखद - स्वप्न देखने लगता है। इन स्वप्नों में बिना परिश्रम के सुख प्राप्त कर लेने केलिए वह आत्मा की पवित्रता की चिंता नहीं करता, राष्ट्र की चिंता नहीं करता - यहाँ तक कि शहीदों के खून की भी चिंता नहीं। किसी तरह मेरा अपना जीवन सुखी हो, संपन्न हो, जालपा केलिए गहने हों और वह आनंद - विनोद हो - जो मध्यवर्गीय एक मन चले युवक की कामना होती है। जोहरा के साथ प्रेम का अभिनय उसके निकृष्टतम स्वरूप को स्पष्ट कर देता है। वह अस्थिर - चित्त, अपनी हित साधना, येन केन प्रकारेण अपनी स्वार्थ - लालसा को पूर्ण करना, कायर, दुर्बल, परिस्थितियों का दास और मनुष्य की छाया - मात्र है। वह पेड़ पर लगे हुए निर्बल पीले पत्ते की भाँति है जो हवा के झोंके के साथ कहीं भी उड़ता - उड़ता जा सकता है।

जब डिप्टी साहब की डाँट पड़ती है या खुशामद होती है तो झूठे बयान की चिंता करता है और जब जालपा का क्रोध देखता है तो उसकी बात को मान लेता है। जालपा को पहचानने में जितनी भूल रमानाथ ने की उतनी संभवतः कोई भी समझदार पति नहीं कर सकता। दरोगा साहब के कहने पर जेवर लेकर वह जालपा के पास जाता है कि वह गहने को भावि सुखी जीवन की पहली भेंट के रूप में स्वीकार करे। बेचारा! उसे क्या पता था कि ये जेवर अब जालपा केलिए

CUP/8647/11/500/SDE—12

जेल की कठोर बेड़ियों से भी कितने भयंकर बन गये हैं। किंतु रमानाथ में उस सूझ - बूझ की बहुत कमी है जिसे मनुष्यता, हमदर्दी, राष्ट्र का प्रेम और आत्मिभमान कहते हैं।

रमानाथ एक दुर्बल व्यक्ति है। और इस दुर्बल चरित्र का चित्रण प्रेमचन्द ने बहुत ही सबल कलम और विश्वास के साथ किया है। रमानाथ की प्रत्येक निर्बलता जालपा के चरित्र और उपन्यास की प्रमुख समस्या को गहरे से गहरा रंग देती गयी। रमानाथ यदि सजीव और सक्रिय पात्र होता तो वह गबन की उलझी हुई परिस्थितियों में अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करता, परिस्थितियों की ठोकरों से गबन करके राष्ट्र का दुश्मन तक बनना स्वीकार नहीं करता और अंत में बार - बार जालपा की झिड़कियाँ खाकर बयान बदलने की आवश्यकता नहीं समझता। किंतु रमानाथ इन शक्तिशाली तत्वों से नहीं बना था। प्रेमचन्द उसे ऐसा सशक्त बनाता भी नहीं चाहते थे। वह एक मध्यवर्ग का दुर्बल मनवाला नवयुवक मात्र है जो अपने जीवन के छोटे से सुख की कल्पना केलिए सबकुछ बेचने को तैयार है। बाबू वर्ग के बेचारे रमानाथ की चेतना जालपा की कठोर राष्ट्रीयता से जागृत अवश्य होती है किंतु कितनी टिकेगी - किसी को विश्वास नहीं होता।

6. देवीदीन का चरित्र चित्रण

गबन की कथा में देवीदीन का अविर्भाव बहुत सुदर शैली के साथ हुआ है। रमानाथ गबन करके घर से भागा। उपन्यास के पात्र की ज़िन्दगी में इस समय यदि देवीदीन अपनी सहानुभीति और हँसोड़ प्रकृति लिये न आता तो उपन्यास की धारा किसी दूसरी ही ओर प्रवाहित हो जाती। टिकट के पैसे देने के बाद जब देवीदीन रमानाथ को कलकत्ते में अपने घर ठहरने का निमंत्रण देता है तो उसकी सहानुभूति और मनुष्यतापूर्ण भावना से हमारा परिचय हो जाता है। पर दुख कातरता और हँसी दोनों उसके गुण है।

देवीदीन की सहानुभूति किसी विशेष व्यक्ति की दुखपूर्ण परिस्थिति तक ही नहीं रुक जाती - वह आवश्यकता पड़ने पर समूचे राष्ट्र के दुख को, गुलामी को भी अपने में समाहित कर लेती है। असहयोग आन्दोलन में न केवल उसने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार ही नहीं किया बल्कि अपने दो नवजवान पुत्रों को बलि देकर काफी बडी कीमत भी भारत की आज़ादी केलिए चुकायी। रामनाथ के पास वस्तु नहीं है। लाता है तो बिलायती कपड़े। कहता है - सस्ते हैं। और बात की बात में अत्यंत सभ्यता से, परंतु दृढ निश्चय और आत्मबल के साथ यह भी कहता है कि, दो जवान बेटे इसी सुदर्शा के भेंट कर चुका हूँ, भैया! ऐसे - ऐसे पठ्ठे थे कि तुमसे क्या कहें! दोनों विदेशी कपड़े की दूकान पर तैनात थे। क्या मजाल थी कि कोई ग्राहक दूकान पर आ जाये। ..... गोरों ने दोनों भाइयों से कहा - यहाँ से चले जाओ। आखिर जब इस तरह बस न चला तो गोरों ने डंडों से पीटना शुरू किया। जब बड़ा भाई गिर पडा तो छोटा उसकी जगह आ खडा हुआ। अगर दोनों अपने डंडे संभाल लेते तो उन बीसों गोरों को मार भागते। ..... अस्पताल भेजा। उसी रात सिधार गये। ..... बेटों को गंगा में सौंप मैं सीधे बजाजे पहूँचा और उसी जगह खड़ा हुआ, जहाँ दोनों वीरों की लाश गिरी थी। गहक के नाम पर चिडिया का पूत न दिखाई दिया। ..... तब से विदेशी दिलासलाई तक घर न लाया।

देवीदीन ने अपने अनुभव से गुलामी से घृणा सीखी थी। उसके विरुद्ध लड़ने की घर कोशिश की थी। इसलिए वह रमानाथ के मुखबिर बननें पर हजार कोशिशों से उसे बचाने की तरकीबें ढूँढ रहा था। उसका साधारण बुद्धि चातुर्य, हँसने की प्रवृत्ति और आत्मबल ही उसके जीवित रहने का सबसे बडे सबल था। उसने जहाँ अनुभव से गुलाभी का कड़वापन जाना था उसी प्रकार असहयोग आन्दोलन में 'बडे आदमियों' की रंगाई पुताई भी अनुभव की थी। बडे आदिमयों के पास विलायती चीज़ों की एक ओर भरमार थी और दूसरी तरफ 'दस बीस गाढ़े के कुरते' रखते थे। यह देवीदीन की आलोचनात्मक दृष्टि में छिपा नहीं था। 'हिपोक्रेसी' के जीवन का उसे जितना अनुभव था और उनके जीवन के प्रति वह जितना कटुतापूर्ण आनंद लेता था - वह देवीदीन की प्रकृति से ही संभव था। धर्म हो, चाहे असहयोग आन्दोलन हो, चाहे आदमी हों - वह उनके जीवन की विषमता को उसी समय पहिचान लेता था।

इन्हीं विशेष चारित्रिक गुणों से गबन का देवीदीन आभूषित है। चरित्र का विकास रेलगाड़ी से आरंभ होकर, जब तक जालपा कल्कत्ता पहूँचती है - तब तक भली प्रकार से होता है। जिस क्षण से जालपा का परिचय देवीदीन से होता है - उसी क्षण से देवीदीन के कार्यकलाप और चरित्रिक गुण गौण हो जाते हैं। कथा के इस मुडाव के पश्चात् देवीदीन जालपा की छाया और सहायक बना हुआ घूमता है। उपन्यास में जिस महत्वपूर्ण क्षण पर देवीदीन आया वह उतने ही अमहत्वपूर्ण ढंग से कथा से दूर जा पड़ा - उसका कार्य एक हरकारे से अधिक नहीं रहा। उपन्यास के अंत में तो उसे गाँव में बिठाकर जिस सुखी परिवार के बीच में चित्रित किया है - वह देवीदीन जैसे व्यक्ति केलिए संभव नहीं होना चाहिए था। यों तो देवीदीन उपन्यास का पात्र है और प्रेमचन्द इसलिए उसे जहाँ ले जाना चाहेंगे वहीं वह जायेगा भी - लेकिन उसकी प्रवृत्तियाँ, उसके चरित्रिक गुण उसकी कर्मशीलता, कर्तव्य और पुत्रों के बलिदान - उसे कभी भी गाँव की सुखी सीमा में प्रतिबंधित नहीं रख सकते - यह निश्चित है।

****

Printed at Calicut University Press